रचना-रत्नाकर

—•—

सम्पादक

वेदान्ताचार्य्य श्री० पं० हरिदत्त जी शास्त्री पंचतीर्थ

(भूतपूर्व आचार्य्य गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर)

लेखक

अध्यापक पं० बुद्धिनाथ शर्मा शास्त्री

(सेन्ट जौन्स हाई स्कूल, आगरा)

—:*:—

प्रकाशक

रामनारायण लाल

पब्लिशर और बुकसेलर

इलाहाबाद

१९४१

मूल्य १)

Printed by Ramzan Ali Shah
at the National Press,
Allahabad.

1 M 24.

दो शब्द

आधुनिक युग में हिन्दी के क्षेत्र में शनैः शनैः बड़ा भारी परिवर्तन हो रहा है और भविष्य में इससे भी अधिक परिवर्तन होने की सम्भावना है। हिन्दी की उन्नति में रचना का भी परम उच्च स्थान है। आज कल अँग्रेज़ी और अन्य विदेशीय भाषाओं को उन्नत बनाने के लिए बालकोपयोगी अत्यन्त सुगम अनेक पुस्तकें प्रचलित हैं, जिनसे कोमल बुद्धि छात्रों के मस्तिष्क पर भार नहीं पड़ता और वे बड़ी सरलता से उस विषय का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। हिन्दी में ऐसी पुस्तकों का अभाव-सा है। इसी बात को लक्ष्य में रख कर रचना विषय पर हाई स्कूल की नवीं व दशवीं कक्षा के विद्यार्थियों के लिए 'रचना-रत्नाकर' नामक पुस्तक को लिखा है, 'जिसमें रचना सम्बन्धी सभी आवश्यक बातों का पूर्ण विवरण दिया गया है। पुस्तक को अध्यायों में विभक्त करके अभ्यास के लिए उपयोगी कतिपय चुने हुए प्रश्न भी रखे गये हैं।

पुस्तक की विशेषतायें

१—साहित्य का परिज्ञान तथा वर्गीकरण और कुछ धुरन्धर कवियों की आलोचना आदि।

२—व्याकरण सम्बन्धी आवश्यक बातों की विवेचना।

३—शब्द तथा अर्थों का विवेचन (वाच्यार्थ, भावार्थ, सारांश, अनुलेख, शुद्ध लेख, अनुवाद आदि।

४—अलंकार, रस और छन्दों की सोदाहरण विवेचना।

५—कहानी लेखन, पत्र लेखन, तथा निबन्ध लेखन शैली।

इस पुस्तक में परीक्षा-सम्बन्धी प्रश्नोत्तर लिखने का ढंग, 'जिसके न जानने से परीक्षार्थी छात्र-वृन्द परीक्षा में लिखते समय बहुधा धोखा खा जाते हैं और पूर्ण नम्बर प्राप्त नहीं कर सकते—भली प्रकार सविस्तार लिखा गया है। जहाँ तक हो सका है रचना की सभी शैलियों पर विचार किया गया है। पुस्तक की भाषा सरस और रोचक है। इसके पढ़ने से विद्यार्थी बड़ा लाभ उठा सकते हैं। जो जो रचना-सम्बन्धी त्रुटियां ज्ञात हुई उन सब को मैंने भली भाँति समझा दिया है, जिससे विद्यार्थीगण उनसे सचेत हो जायँ। इस समय में प्रायः रचना की जितनी पुस्तकें प्रचलित हैं उन सब की शैली को हृदयंगम करके पुस्तक की रचना की गई है।

आशा है प्रस्तुत पुस्तक छात्रों को उपयोगी सिद्ध होगी।

(रक्षा बन्धन)
श्रावण शुक्ला
पूर्णिमा
सम्वत् १९९३ वि०

—लेखक

विषय-सूची

विषय **पृष्ठ संख्या**

चौथा अध्याय

विषय पृष्ठ संख्या

पाँचवाँ अध्याय

(काव्य विभाग)

छठा अध्याय

सातवाँ अध्याय

श्रीः

रचना-रत्नाकर

प्रथम अध्याय

साहित्य के भिन्न-भिन्न रूपान्तर

अनादि काल से मानव जाति में विचाराभिव्यक्ति की शक्ति का पता चलता है क्योंकि यदि ऐसा न होता तो उनके सारे कार्य-कलाप एक दम बन्द हो जाते। इससे इस बात का अनुमान किया जा सकता है कि वे बोलते अवश्य थे और जब बोलते थे तो किसी भाषा में अवश्य बोलते होंगे। बहुत सम्भव है कि प्रथमतः यह सांकेतिक भाषा रही हो। परन्तु मानव समाज सभ्यताभिवृद्धि के साथ साथ उसने कालान्तर में लिखित भाषा का रूप धारण किया होगा और फिर धीरे धीरे इसमें गद्य, पद्य, व्याकरण अलङ्कार आदिकों का निर्माण किया गया होगा। समय के साथ इसका संशोधन, परिमार्जन और परिष्करण भी किया गया होगा; और यह भविष्य में भी होता रहेगा; क्योंकि विकास सम्बन्धी सिद्धान्तों पर विश्वास करने वाले महानुभावों के मतानुसार ऐसा होना नितान्त अनिवार्य एवं आवश्यक है। जब परिवर्तनशील विश्व का कोई भी

पौरुषेय अथवा अपौरुषेय निर्माण किसी स्थिर दशा में कदापि नहीं रहता; किन्तु कालक्रमागत परिस्थिति के अनुसार उन्नत एवं अवनत दशा को प्राप्त होता रहता है, तो फिर केवल भाषा ही क्यों अपनी पूर्व अवस्था में किसी संकुचित क्षेत्र में पड़ी रहे। वह भी इस प्रतियोगिता के युग में प्रगतिशील मार्ग पर पदार्पण क्यों न करे।

इस कारण-वश भाषा के प्राचीन रूप से यदि उसके सांप्रतिक रूप में कोई विभिन्नता परिलक्षित होती है, तो इसमें आश्चर्य का कौन सा प्रसंग है ? हाँ, यदि भाषा अब तक अपनी पूर्व अवस्था में ही रहती तो केवल आश्चर्य ही का नहीं, किन्तु लज्जा, खेद, शोक और निराशा का भी प्रसंग होता। इसके अभ्युत्थान की भी कोई आशा न रहती। क्योंकि इस अस्तित्व संग्राम में निर्बल सत्व सदा बलशाली का अहार बनता आया है। अब तक यह हमारी भाषा भी किसी अन्य भाषा के गर्भ में विलीन हो गई होती; परन्तु इसके क्रमिक विकास और प्रगतिशीलता ने इसकी रक्षा की। उपर्युक्त तर्कों और युक्तियों से यह भली भाँति प्रतिपादित होता है कि हमारी भाषा भी वर्तमान रूप धारण करने से पहिले कई रूपान्तरों में रह चुकी होगी। हमें इस निबन्ध में अपनी भाषा के प्राचीन रूप का अन्वेषण करना और फिर उसके क्रमिक विकास पर प्रकाश डालना है।

इस समय भाषा-विज्ञान-विशारद दो दलों में विभक्त हैं। एक दल का मत है कि पाली, शौरसेनी, महाराष्ट्री और मागधी की जननी प्राकृत एवं अन्य अपभ्रंश भाषाओं का जन्म संस्कृत से हुआ और कालान्तर में भिन्न-भिन्न अपभ्रंश भाषाओं से राजपूतानी, व्रजभाषा और खड़ी बोली का आविर्भाव हुआ। दूसरे दल का मत है कि संस्कृत कभी जन साधारण के बोलचाल की भाषा

न रही होगी। यह बात और है कि वह साहित्यिक भाषा रही हो। जनता के नैतिक व्यवहार की भाषा प्राकृत रही होगी; क्योंकि इसका प्रमाण प्राकृत का वाच्यार्थ स्वयं है। संस्कार उसी का होता है जिसका पहिले कोई विकृत रूप भी रहा हो, यदि प्राकृत के रूप में कोई विकार न होता; तो उसके संस्करण की कोई आवश्यकता ही न पड़ती और तब संस्कृत भाषा के भी दर्शन न होते। निष्कर्ष यह है कि यह दल अपने प्रतियोगी के विरुद्ध प्राकृत की प्राचीनता का समर्थक है, और भाषा के समग्र रूपान्तरों को उसी का क्रमिक विकास मानता है। अस्तु, संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं की प्राचीनता के सम्बन्ध में दोनों ओर से बहुत कुछ कहा जा सकता है। परन्तु यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त है कि हिन्दी का जन्म शूरसेन देश व्रजमण्डल में शौरसेनी प्राकृत भाषा से हुआ है।

कुछ विद्वानों का मत है कि प्राचीन हिन्दी का आरम्भ विक्रमीय अष्टम शताब्दी में हुआ था। ऐसा मत स्थिर करने के लिये विद्वान कतिपय तत्कालीन ग्रन्थों का उल्लेख करते हैं। परन्तु उन ग्रन्थों के नाम मात्र के अतिरिक्त और कुछ पता नहीं चलता। ये ग्रन्थ पद्यबद्ध बतलाये जाते हैं। इससे यह अनुमान करना कुछ कठिन नहीं, कि इससे पहिले गद्य रहा होगा और गद्य से कहीं पहिले भाषा बोलचाल के रूप में रही होगी; क्योंकि किसी भी भाषा के क्रमिक विकास का यही सिद्धान्त है। इस तर्क के अनुसार यह सिद्ध होता है कि अष्टम शताब्दी से बहुत पहिले लोग अपने विचारों की अभिव्यक्ति हिन्दी भाषा के द्वारा करने लगे होंगे। हिन्दी भाषा का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ भी पद्यबद्ध है। इससे यदि कोई तर्क विशारद इस बात का अनुमान करने लगे, कि उस समय लोगों की व्यावहारिक भाषा

छन्दबद्ध होगी तो ऐसी कल्पना नितान्त भ्रमात्मक होगी। केवल भारत ही की नहीं, विश्व की समग्र भाषाओं के प्रारम्भिक उदाहरण पद्यबद्ध रूप में ही उपलब्ध हैं। ऊपर के तर्क के अनुसार हिन्दी भाषा के जन्म के सम्बन्ध में विद्वानों के दो मुख्य मत हैं। कुछ लोग भाषा का जन्म सप्तम शताब्दी बतलाते हैं और कुछ लोग अष्टम शताब्दी। यहाँ पर हम इस सम्बन्ध में कतिपय भाषाओं के तत्ववेत्ताओं के मत उद्धृत करेंगे।

सर जार्ज ग्रियर्सन का वर्गीकरण इस प्रकार है:—

(१) ७०० ई० से १३०० ई० तक चारण काल।

(२) १५४० ई० से १७०० ई० तक महान् काल

(३) १७०० ई० से १८०० ई० तक शुष्क काल

(४) १८०० ई० से अब तक पुनर्जाग्रति काल

रेवेरेण्ड एडविन ग्रीव्स तथा एफ० ई० के० महोदय भी इसी मत के समर्थक हैं। परन्तु इस काल के निर्णय में कहाँ तक इनका मत मान्य है। इस विषय में कुछ दृढ़तापूर्वक नहीं कहा जा सकता।

आचार्य प्रवर पं० रामचन्द्र जी शुक्ल हिन्दी भाषा का आरम्भ काल विक्रमीय ११ शताब्दी मानते हैं और उनका वर्गीकरण इस प्रकार है:—

(१) आदि-काल (वीर-गाथा-काल) संवत् १०५०—१३७५ वि० तक

(२) पूर्व मध्य-काल (भक्ति-काल) संवत् १३७५—१७०० वि० तक

(३) उत्तर मध्य-काल (रीति-काल) संवत् १७००—१६०० वि० तक

(४) आधुनिक-काल (गद्य-काल) संवत् १६००—अब तक

रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दर दास जी भी इसी वर्गीकरण के समर्थक हैं। पं० रामशंकर ' रसाल ' ने युगों के नामकरण में एक विचित्रता रखी है। उनके द्वारा निर्देश की हुई युगावधि विवेचनीय है। यहाँ पर यह बात स्मरण रखना चाहिये हिन्दी साहित्य के इतिहास कालों का वर्गीकरण किसी देश के ऐतिहासिक काल के समान नहीं होता है। इसे दूसरे शब्दों में यों कह लीजिये कि जैसे जहाँगीर का काल १६०५—१६२७ तक माना जाता है। इससे वह कुछ घट बढ़ कर नहीं है। इस प्रकार साहित्य के इतिहास के काल नहीं हैं। इस के कालों का नाम तत्कालीन कवियों की कृतियों के आधार पर रखे गये हैं। जिस काल में लोक प्रवृति जिस प्रकार के काव्यों की ओर रही उसी के अनुकूल उनका नाम रख दिया गया। यहाँ पर एक बात और ध्यान रखनी चाहिये कि यद्यपि साहित्य के ऐतिहासिक कालों का नाम करण तत्कालीन लोक प्रवृति रचना के अनुसार ही हुआ था तथापि उस युग में केवल वैसी ही रचनाएँ नहीं होती थीं। जिस समय कविवर मतिराम तथा उनके अन्य समकक्ष सरस्वती पुत्र नायिका भेद के अगाध समुद्र में डूबे हुए थे, उसी समय राष्ट्र कवि भूषण रणक्षेत्रों में विचरण कर रहे थे। इस लिये रचनाओं को नितान्त उनके अनुसार समझना भी उचित नहीं है।

आलोचक प्रवर मिश्रबन्धुओं का मत है कि सब से प्रथम हिन्दी पद्य रचना किसी 'मुख्य' नामी कवि की है। परन्तु इसके सम्बन्ध में कोई पता नहीं। कुछ लोगों के मतानुसार 'खुमान रासो' सर्व प्रथम पद्य ग्रन्थ है। इसका निर्माण विक्रमीय नवम शताब्दी के लगभग हुआ था। आजतक जितने अनुसन्धान किये

गये हैं, उनमें इससे पहिले की कोई कृति नहीं मिलती। तथापि भाषा के विकास सिद्धान्त पर विचार करने से यह प्रतीत होता है कि इससे पहिले व्यावहारिक भाषा का जन्म हो चुका होगा ; क्योंकि कोई भी रचना हो उसमें गद्य-पद्य से पहिले होता है। इसके अनन्तर हिन्दी भाषा के चारण कविवर चन्दबरदाई ने दिल्लीपति पृथ्वीराज के यश को अमर करने के लिये 'पृथ्वीराज रासो' का निर्माण किया। इसका उत्तरार्द्ध उसके पुत्र जल्हन का लिखा हुआ है। अपभ्रंश शब्दों की जैसी भरमार 'खुमान रासो' में है, वैसी इसमें नहीं। कारण यह है कि तीन सौ वर्षों में भाषा में भी यथेष्ट परिवर्त्तन हुआ होगा। धीरे धीरे यह परिवर्त्तन यहाँ तक हुआ कि हिन्दी भाषा प्रान्तिक भाषाओं के रूप में दृष्टि-गोचर होने लगी अर्थात् व्रजमण्डल के निवासियों की भाषा व्रजभाषा, अवध निवासियों की अवधी और दिल्ली तथा मेरठ प्रान्तों में बोली जानेवाली भाषा 'खड़ी बोली' कहलाने लगी। अब भी राजपूताना और बुन्देलखंडी भाषा में अपभ्रंश शब्दों का बाहुल्य है और राजपूताना की डिंगल काव्य में आज भी बहुत से शब्द अपभ्रंश हैं।

हमारे पाठकों को हिन्दी गद्य और पद्य के विकास की ओर ध्यान देना चाहिये। आदिकाल अथवा चारणकाल के जीवन को समाप्त करके हिन्दी भाषा ने प्रौढ़ावस्था में पदार्पण किया। इस समय उसमें नैसर्गिक लालित्य और माधुर्य आ गया। इस काल में साहित्य-गगन-मण्डल के सूर्य, चन्द्र, उडुगण 'सूर' 'तुलसी' और 'केशव' उत्पन्न हुए; जिन्होंने भगवद्भक्ति के काव्य से अपनी सुधास्पन्दिनी वाणी द्वारा अत्याचार पीड़ित जनता के हृदय में भक्ति और उत्साह सागर को लहरा दिया। इसीलिये इस काल को लोग भक्ति-काल कहते हैं। गद्य भी इस समय

धीरे धीरे चल रहा था। महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ का ध्यान इस समय गद्य की ओर आकर्षित हुआ और उन्होंने ८४ वैष्णवों की वार्त्ता और २५२ वैष्णवों की वार्त्ता गद्य ही में लिखी।

इसका कारण यह है कि गोस्वामी लोग व्रजमण्डल में ही उत्पन्न हुए हैं। भगवान् कृष्ण का नैतिक सम्बन्ध होने के कारण ये गोस्वामी लोग प्रायः व्रजभाषा में ही संभाषण करते हैं और पूजा सम्बन्धी सारी बात-चीत व्रजभाषा में होती है। इसीलिये उपर्युक्त दोनों रचनाएँ व्रजभाषा में हैं। पद्य में तो इस समय रचना अधिक होती थी, परन्तु गद्य में कम। धीरे-धीरे हिन्दी का सौभाग्य बढ़ गया, अब गद्य ने बाहर पदार्पण किया और संवत् १७०७ के लगभग कुछ उन्नति के पथ पर आ गया। अब तो इसमें अनुवाद भी होने लगे, टीकायें भी लिखी जाने लगीं। बिहारी सतसई तक की भी 'अमर चन्द्रिका' नाम की टीका इसी काल में हुई।

कालान्तर में भारत का शासन सूत्र पाश्चात्य प्रभु अँगरेज़ों के हाथों में आया। उन्हें भारतीय भाषा के जानने के लिये व्यावहारिक भाषा में पुस्तकों की रचना की अधिक आवश्यकता हुई। इसी समय से गद्य रचना को अधिक प्रोत्साहन मिला। यद्यपि इससे पहिले मुंशी सदासुखलाल ने गद्य रचना आरम्भ कर दी थी। पंडित लल्लूलालजी इसी समय फोर्ट विलियम कालेज में नियुक्त हुए। इन्हीं से जान गिलक्रिस्ट ने नवागत अँगरेज़ों को हिन्दी पढ़ने के लिये गद्य रचनाएँ कराई थीं। जिनमें प्रेमसागर प्रमुख है। गद्यात्मक होते हुए भी इस रचना में व्रजभाषा का प्रचुर पुट है। इसका कारण यह है कि इसके प्रणेता पं० लल्लूलालजी आगरा निवासी होने के कारण व्रज-

भाषा की गोद में पले थे। इसलिये उनकी लेखनी से व्रजभाषा का निकलना स्वाभाविक ही था।

लल्लूलालजी के नाम के साथ ही साथ आगरा निवासी पंडित सदलमिश्र का स्मरण होने लगता है। इन्होंने भी 'जान गिलक्रिस्ट' के प्रोत्साहन से 'नासिकेतोपाख्यान' की गद्य रचना की थी। दोनों पंडितों की गद्य रचनाओं में पर्याप्त विभिन्नता है। प्रेमसागर में व्रजभाषा की लटक के साथ-साथ 'कादम्बरी' 'दश कुमार' के समान सानुप्रास पद्यमय गद्य है। परन्तु 'नासिकेतोपाख्यान में व्यावहारिक खड़ी बोली के साथ-साथ मुहावरे और उर्दू के कुछ पद भी आ गये हैं। कहीं-कहीं इसमें व्रजभाषा और अवधी की लटक है, परन्तु इसकी भाषा परिमार्जित नहीं है।

कालान्तर में 'लार्ड मेकाले' की शिक्षा पद्धति के अनुसार शिक्षा का माध्यम आँग्ल भाषा रखी गई, जिससे देशी भाषाओं की गति पर घोर आघात हुआ। सौभाग्य-वश मिशनरियों ने जनता में अपने धर्म के प्रचारार्थ हिन्दी का आश्रय ग्रहण किया और बाईबिल का सरल सुलभ एवं सुगम अनुवाद हिन्दी भाषा में करवाया। इसका अभिप्राय यह था कि वे लोग अपने धार्मिक भावों को सामान्यतम ग्रामीण जनता के हृदय तक पहुँचा सकें। इसी उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये इन लोगों ने कलकत्ता, मिर्जापुर, आदि स्थानों में मुद्रण यन्त्रालयों की स्थापना की, जिनमें धार्मिक ग्रन्थों के अतिरिक्त बालोपयोगी पाठ्य पुस्तकें भी छपने लगी थीं।

धर्म प्रचार के लिये यद्यपि अँगरेज़ों ने हिन्दी भाषा का आश्रय लिया था, परन्तु राजनैतिक चालों पर दृष्टि रखकर उन्होंने न्यायालयों में एवं सरकार संचारित कार्यालयों में उर्दू एवं फारसी

को प्रधानता दी थी—इसका फल यह हुआ कि व्यावहारिक भाषा होते हुए भी हिन्दी को साहित्यिक भाषा का रूप धारण करने में बड़ी कठिनाई उठानी पड़ी और इसीलिये उन्नति की प्रतियोगिता में उर्दू को सफलता प्राप्त हुई।

संवत् १९१४ में सिपाही विद्रोह के अनन्तर राजराजेश्वरी विक्टारिया ने भारत का राजदण्ड ग्रहण किया। उसी समय से इस बात की आवश्यकता प्रतीत हुई कि हिन्दी गद्य को ऐसा निश्चित रूप दिया जाय जिसके द्वारा शिक्षित जनता परस्पर अपने विचारों का परिवर्त्तन कर सके। भाग्यवश बाबू हरिश्चन्द्र ने कार्यक्षेत्र में पदार्पण किया। इन्होंने अपनी पैंतीस वर्ष की अवस्था में गद्य के इतिहास में युगान्तर उपस्थित कर दिया। बाबू साहब के पिता बाबू गोपालचन्द्र स्वयं कवि थे। उन्होंने नहुष नाटक भी लिखा था। कहा जाता है कि यह 'नहुष' नाटक ही सर्व प्रथम हिन्दी नाटक है। इन्हीं कारणों वश कविता बाबू हरिश्चन्द्र की पैतृक सम्पत्ति थी। उनके सफल नाटककार होने का भी यही कारण था।

बाबू साहब गद्य-पद्य दोनों ही बड़ी सफलता से लिखते थे। आपने अपनी सरस मौलिक रचनाओं एवं अनुवादों से भारती के भंडार को पूर्ण कर दिया। भारतेन्दु जी ने अपने प्रोत्साहन से कवियों और लेखकों का मंडल तैय्यार कर दिया। इन में पं० बद्रीनारायण चौधरी, प्रतापनारायण मिश्र, पं० बालकृष्ण भट्ट और पं० राधाकृष्ण गोस्वामी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन लोगों ने गद्य की उन्नति में बहुत कुछ हाथ बटाया था।

कालान्तर में हिन्दी में नवयुग का आरम्भ हुआ। इस समय संवत् १९२१ में रायबरेली मंडलान्तर्गत दौलतपुर ग्राम में हमारे

लब्ध प्रतिष्ठ साहित्य महारथी पं० महावीर प्रसाद 'द्विवेदी' जी का जन्म हुआ। आपने जी० आई० पी० रेलवे में क्लर्क का कार्य करते हुए भी साहित्य की अपूर्व सेवा की। सरस्वती मासिक पत्रिका के द्वारा आपने आलोचना का मार्ग प्रशस्त किया। आपने बाबू मैथिलीशरण गुप्त जैसे कवि और श्रद्धेय गणेशशंकर 'विद्यार्थी' जैसे राजनीतिज्ञ पत्रकार पैदा किये और असंख्य हिन्दी अनुरागी जनता में साहित्याभिरुचि उत्पन्न की।

कालान्तर में हिन्दी के पाठकों और लेखकों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी। इसी अनुपात से विषयों की परिधि भी बढ़ गई। अब भाँति भाँति की लेखनशैलियों का भी जन्म हुआ। विषय प्राचुर्य्य के कारण भाषा की भावाभिव्यंजन शक्ति की वृद्धि हुई। अन्य प्रान्तीय भाषाओं के समान इसमें आगे चलकर विराम चिह्न लगाये जाने लगे। इधर मुद्रण यन्त्रों ने भी इसके प्रचार और उन्नति में विशेष सहायता दी। इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दी का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया।

अब इसमें नाटक, उपन्यास, निबन्ध, समालोचनाओं के साथ-साथ इतिहास, विज्ञान, अर्थशास्त्र, राजनीति, समाजशास्त्र, देशाटन, जीवन चरित्र, शिक्षा इत्यादि भिन्न-भिन्न विषयों पर सारगर्भित लेख मालायें प्रकाशित होने लगीं। इस थोड़े समय में हिन्दी गद्य साहित्य ने जैसी आशातीत उन्नति की है, उससे उसके उज्ज्वल भविष्य का अनुमान किया जा सकता है। सौभाग्य की बात है कि लोग गद्य साहित्य की राष्ट्रीय महत्ता स्वीकार करने लगे हैं। गद्य में यद्यपि अब तक कोई पद्य ऐसा प्रमाणित स्थायी एवं रोचक साहित्य नहीं तैयार हुआ है; परन्तु उसकी प्रगतिशीलता को देखकर इस बात का अनुमान किया जा सकता है कि निकट भविष्य में प्रौढ़ साहित्य की रचना

इसमें होगी और वह समय बहुत पास है जब कि हिन्दी का गद्य साहित्य, पद्य साहित्य के बराबर ही उन्नत होगा।

गद्य के सर्वतोन्मुखी विकासों के कारण अब इसमें व्याकरण, निबन्ध रचना प्रभृति भिन्न-भिन्न विषयों पर स्वतंत्र रूप से पुस्तकें लिखने की आवश्यकता प्रतीत हुई और इसी उद्देश्य को लेकर इस (रचना को) पुस्तक का जन्म हुआ। इसमें हम रचना सम्बन्धी विषयों का निरूपण करेंगे।

कालक्रम के अनुसार गद्य का युग होने के कारण आजकल खड़ी बोली का बोलबाला है। सारे सामयिक पत्रों में उसी की भरमार रहती है। यहाँ तक कि कविता भी खड़ी बोली में लिखी जाती है। इसका कारण केवल यही नहीं है कि जनता की रुचि व्रजभाषा से हट कर अब बिलकुल खड़ी बोली की ओर गई है। प्रत्युत बड़े बड़े लब्ध प्रतिष्ठ मासिक पत्र खड़ी बोली की कविता को ही अपने पृष्ठों में स्थान देते हैं। इतना ही नहीं, पंडित देवीदत्त शुक्ल जैसे सम्पादक पुङ्गव भी व्रजभाषा की कविता को अपनी पत्रिका में नहीं छापते हैं। इससे यदि व्रजभाषा का दुर्भाग्य कहें तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी। एक वह भी समय था जब खड़ी बोली में सबसे प्रथम काव्य-रचना करने वाले श्री 'अमीर खुसरो' को अपने विफल प्रयास पर परिताप करना पड़ा था। क्योंकि उस समय व्रजभाषा के माधुर्य के सामने इनकी कविता जची ही न थी। उस समय खड़ी बोली का क्षेत्र मेरठ, देहली के निकटवर्ती भूमि ही थी, परन्तु आजकल भारत के कोने-कोने में इसका स्वच्छन्द प्रचार हो रहा है।

गद्य का युग होने के कारण कविता भले ही खड़ी बोली में की जाय, परन्तु उसमें व्रजभाषा ऐसा माधुर्य नहीं आ सकता।

कारण यह है कि वह इतनी परिष्कृत और परिमार्जित अभी नहीं हुई है। यहाँ पर यह प्रश्न उपस्थित किया जा सकता है कि खड़ी बोली में माधुर्य क्यों नहीं आ सकता? क्या 'पन्तजी', 'निरालाजी', 'सुभद्राकुमारी चौहान' तथा 'महादेवी वर्मा' की कविता में माधुर्य नहीं है। भाई है और अवश्य है। इसे कौन अस्वीकार करता है, परन्तु विचार करके देखिये जितना माधुर्य उनके कोकिलकण्ठ में है उतना उनकी कविता में नहीं। और उससे भी अधिक माधुर्य होता है जनता की श्रद्धा में, जिसके साथ वह उसे सुनने के लिये उत्कंठित रहती है। अन्यथा हमारे तुच्छ विचार के अनुसार उनकी कविता में उन नियमों तक की अवहेलना की गई है जिन्हें अलङ्कार-शास्त्रियों ने कोमलावृत्ति और माधुर्य्य गुण का बीजक बतलाया है।

परन्तु नये कवि पुराने पचड़े में कब पड़ने वाले हैं। वे इस स्वतन्त्रता के युग में किसी प्रकार के बन्धन में पड़ने को तैयार नहीं। इसी लिये उन्होंने अन्त्यानुप्रास का बन्धन तोड़ कर भिन्न तुकान्त छन्दों की रचना की है। समय का भी तो कोई प्रभाव होता है। आज कल अंगरेज़ी का दौर दौरा है। मनुष्य अनुकरण प्रिय पुरुष हैं। फिर यदि अंगरेज़ी की ब्लैंक वर्स का अनुकरण कर के भिन्न तुकान्त कविता लिखी जाने लगे तो कौन से आश्चर्य की बात है? सादगी अंगरेज़ी का भूषण है। उर्दू वाले भी इसे पसन्द करते हैं, उन्हीं को देखादेखी खड़ी बोली के कवि भी सादगी पर उतारू हो गये हैं। इनका मत है कि अलंकार शास्त्र का अनुशासन ही कविता के लिये एक व्यर्थ का ढकोसला है। प्रकृति सौंदर्य्य को अलंकारों की आवश्यकता नहीं रहती। परन्तु सोचने की बात तो यह है कि विश्व की रुचि कभी एकसी नहीं रहती और न कभी रहेगी। आप लोग ऐसा ही मानते रहें।

सुन्दरता की भी तो कोई सीमा नहीं है जिसे आप सुन्दर मानते हैं किसी दूसरे को वही वस्तु असुन्दर लग सकती है। उदाहरण के लिये मोटे होंठ ले लीजिये। हबसियों के लिये यही सुन्दरता का अङ्ग माना जाता है, परन्तु भारतीय रमणियाँ इसे कुरूपा समझती हैं। चायना (चीन) में छोटे पैर सुन्दरता के लक्षण माने जाते हैं, परन्तु बहुत लोग इसे अवगुण समझते हैं।

अब रही बात माधुर्य्य की, इसकी भी तो कोई सीमा नहीं हो सकती है। यह भी व्यक्तिगत बात होती है। संसार में ऐसी भी जातियाँ हैं जिन्हें वीणा की झङ्कार की अपेक्षा मरुभूमि की नौका ऊँट की बलबलाहट में अधिक माधुर्य्य प्रतीत होता है। और वह इसी लिये अपनी ज़बान को अधिक शीरी बतलाती हैं। होंगी और अवश्य शीरी होंगी ? परन्तु वह क्यों शीरी लगती हैं और कैसे शीरी लगती हैं ? इस सम्बन्ध में किसी को प्रश्न करने का अधिकार नहीं क्योंकि 'तद्वद् स्थान वाले अहिले ज़ुबान' ही इसका आनन्द लूट सकते हैं और कोई क्या जाने ? अस्तु।

हमारे कहने का यह तात्पर्य नहीं है कि खड़ी बोली में कविता हो ही नहीं सकती या उसमें माधुर्य्य आ ही नहीं सकता। खड़ी बोली में कविता हुई हैं और सुन्दर हुई हैं। इसका प्रमाण श्रीयुत पंडित अयोध्या सिंह 'उपाध्याय' जी का 'प्रियप्रवास' है, परन्तु इसमें व्रजभाषा का पुट है। वास्तव में कविता के लिये सुन्दर भावों की आवश्यकता है। भाषा की इतनी नहीं, यदि ऐसा न होता तो अँगरेज़ी, फ़ारसी आदि अन्य भाषाओं में कविता हो ही नहीं सकती, परन्तु वास्तव में यह बात नहीं है। अँगरेज़ी में सुन्दर-सुन्दर भावों की कविताएँ उपलब्ध हैं और

फ़ारसी में भी ऐसा ही है। इससे सिद्ध होता है कि काव्य का सौंदर्य्य भाषा की अपेक्षा भावों पर अधिक निर्भर है।

कुछ लोगों का मत है कि कविता के लिये सब से उपयुक्त भाषा व्रजभाषा ही है; क्योंकि इसमें ग्राहिका शक्ति है जिसके कारण यह अन्य भाषाओं के शब्दों का संस्कार करके उन पर ऐसा रंग चढ़ाती है कि उनका वास्तविक रूप पहिचानना कठिन हो जाता है उदाहरण के लिये एक अँगुरी शब्द को ले लीजिये और देखिये कि कवियों ने उसे कितने रूप से ग्रहण किया है।

दिन औधि के कैसे गिनूँ सजनी,
अँगुरिनि के पोरिनि छाले परे।

—कवि ठाकुर।

दास जू कौल कलीन खिली,
कहूँ मोरी गई लगि **आँगुरियाँ** हैं।

—कवि दास।

सींक सों काजर दैरी गँवारिनि,
आँगुरी तेरी कटैगी कटाछिनि।

—कवि मुबारिक़।

कजरा दृग सींक सों दीजे अली,
अँगुरी कटि जइहै कटाछ की कोरनि।

—कवि कमलापति।

लरिका लैबेके मिसहिं लंगर मो ढिग आय।
गयो अचानक **आँगुरी** छाती छैल छुआय॥

—कविवर बिहारीलाल।

उपर्युक्त प्रयोगों से सिद्ध होता है कि व्रजभाषा में कवि अपनी सुविधानुसार एक ही शब्द का कई तरह से प्रयोग कर सकता है। जिससे काव्य की रचना में सुविधा पड़ती है और इसीलिये आचार्यों ने इस बूढ़ी व्रजभाषा को ही कविता की भाषा मानी है।

यह विचार बहुत लोगों को न जचेगा। वे इसका विरोध करते हुए संस्कृत का उदाहरण देंगे। और कहेंगे कि यह तो बड़ी नपी तुली भाषा है, उसमें तो व्याकरण के कठिन अनुशासन के कारण एक मात्रा तक का भी फेर नहीं हो सकता। व्याकरण के कठिन अनुशासन के परिहारार्थ उसमें यह नियम कर दिया है कि—

"अपिमाषं मषं कुर्यात्, छन्दो भंग न कारयेत्"

अर्थात् जहाँ पर काव्य रचना में अर्थ की संकीर्णता से कवि छन्द की विशेषता के लिये दीर्घ का ह्रस्व और ह्रस्व का दीर्घ भले ही कर दें, परन्तु छन्दों का भंग न होने दें। इसके अतिरिक्त संस्कृत साहित्य में शब्दकोष पर्याप्त विस्तीर्ण है। एक-एक शब्द के न मालूम कितने कितने पर्यायवाचक शब्द होते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्यय प्रत्यान्त एवं व्याकरण के बल से एक शब्द से न जाने कितने शब्द बना लिये जाते हैं। इसीलिये संस्कृत की काव्य रचना में अधिक कठिनाई प्रतीत नहीं होती।

इसके विरुद्ध व्रजभाषा का शब्द कोष इतना वृहत् नहीं है उसमें लंबे लंबे समास नहीं होते, परन्तु उसके अन्दर वह शक्ति है जिसके द्वारा अन्य भाषा के शब्दों को वह अपने में बड़ी सुन्दरता से मिला लेती है और इसी लिये इसमें कविता करना अभ्यासी के लिये तो सरल है परन्तु जो लोग व्रजभाषा के

कवियों का अनुकरण करके बिना कुछ अध्ययन किये हुए लिखने का प्रयास करते हैं वह वास्तव में अनधिकार चेष्टा करते हैं और उन्हीं को व्रजभाषा में रचना करने में बड़ी असुविधा पड़ती है।

आज कल हिन्दी तीन भिन्न भिन्न रूपों में दिखलाई पड़ती है। खड़ी बोली हिन्दुस्तानी और व्रज भाषा तथा अवधी। अवधी भी व्रज भाषा की भाँति कविता की भाषा है। गोस्वामी 'तुलसी-दास जी' एवं नवाब 'अब्दुल रहीम खानखाना' ने इसे बहुत महत्व प्रदान किया है। हिन्दी साहित्य का अमर काव्य 'राम चरित मानस' इसी भाषा में रचा गया है। परन्तु अब इसमें और कोई साहित्य ग्रन्थ देखने में नहीं आता।

खड़ी बोली एक ऐसी भाषा है जिस पर प्रान्तिकता की मुद्रा अंकित नहीं है। और इसी लिये निकट भविष्य में इससे ही भारत की राष्ट्र भाषा होने का सौभाग्य प्राप्त होगा। परमात्मा वह समय शीघ्र लावें जिस समय इसका प्रचार 'पामीर' से 'कन्या कुमारी' तक हो जाय, क्योंकि राष्ट्रीयता और जातीयता की उन्नति के लिये समग्र भारत में एक राष्ट्र भाषा होने की भी आवश्यकता है।

हिन्दुस्तानी खड़ी बोली का सरल रूप है। यदि संस्कृत-गर्भित खड़ी बोली से कठिन पदावली निकाल दी जाय और उसके स्थान पर भिन्न-भिन्न भाषाओं के तद्भव शब्द रख दिये जायँ तो वह हिन्दुस्तानी भाषा बन जायगी। कहते हैं कि सम्राट् शाहजहाँ के राजत्व काल में ऐसी ही भाषा थी। परन्तु उस समय अरबी और फ़ारसी के प्रकाण्ड पंडितों ने अनुकूल परि-स्थिति पाकर इसमें असंख्य शब्द अपनी-अपनी भाषा में से लेकर भर दिये और अरबी, फ़ारसी परिधान होने के कारण

यह अपने वास्तविक रूप को छोड़ कर उर्दू भाषा बन गई। भला हमारा पंडित समुदाय मौलवियों की इस धृष्टता को कैसे चुपचाप सहन कर लेता, उन्होंने उस पर संस्कृत का रंग चढ़ाया और उसे वह रूप दिया जिसे हम आजकल अपने समक्ष देखते हैं। तभी से हिन्दी और उर्दू दो भिन्न-भिन्न रूपों में विभक्त हो गई। भाषा का रूप स्थिर हो जाने पर उसके शुद्ध परिज्ञान के लिये व्याकरण की आवश्यकता पड़ी। प्रायः सभी भाषाओं में व्याकरण होते हैं क्योंकि यदि व्याकरण न हों तो उनके शुद्धाशुद्ध प्रयोगों का निर्णय कौन करे। संस्कृत का व्याकरण बहुत भारी है और इस पर आलोचनाएँ और प्रत्यालोचनाएँ इतनी अधिक हैं कि इसके अध्ययन में पंडितों की सारी आयु व्यतीत हो जाती है और फिर भी कोई वैयाकरण शब्द-वारिधि के पार जाने का दृढ़ता पूर्वक साहस नहीं कर सकता। और करे भी तो कैसे करे, जबकि सुना जाता है कि इन्द्र को वृहस्पति ने कितने ही वर्षों तक व्याकरण पढ़ाया था। परन्तु वह उसके पारंगत न हो सके थे। यहाँ पर हम इस अत्युक्ति से सुरेश्वर की मूढ़ता एवं वृहस्पति की अध्ययन अक्षमता की ओर संकेत नहीं करना चाहते। तथापि हमें यह कहने में संकोच नहीं कि संस्कृत का व्याकरण बहुत भीमकाय है। दैनिक जीवन में इसकी कितनी उपयोगिता है, यह तो हमारे महामहोपाध्याय व्याकरणाचार्य जानें, परन्तु यदि इसके सूक्ष्म रूप से काम चलाया जा सकता तो उसका प्रयोग नितान्त समीचीन होता।

इस वृहद् व्याकरण ने संस्कृत साहित्य का कहाँ तक हित साधन किया इसका भी निर्णय करना कठिन है। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं, कि व्याकरण के विकट शकट व्यूह में आबद्ध होने के कारण इस प्राचीनतम देववाणी का सर्वतन्त्र प्रचार न हो

सका। कुछ लोगों का तो यहाँ तक अनुमान है कि यह कभी भी व्यावहारिक भाषा न रही होगी। हाँ, इसके साहित्यिक भाषा होने में कोई सन्देह नहीं।

संस्कृत व्याकरण के समान हिन्दी में भी वृहत्काय व्याकरण की आवश्यकता है या नहीं। इसके उत्तर में हम नम्रता पूर्वक इतना ही निवेदन करेंगे कि यह हिन्दी देव भाषा न होकर हमारी मातृभाषा है। इसके जानने के लिये हमें व्याकरण पर धूनी रमाने की आवश्यकता नहीं। बिना व्याकरण पढ़े हम संस्कृत में अवश्य शुद्ध नहीं बोल सकते क्योंकि यह देववाणी है। हमारी वाणी नहीं। परन्तु हिन्दी में व्याकरण के परिज्ञान की इतनी आवश्यकता नहीं, क्योंकि देखा गया है कि जब बालक अक्षर आरम्भ करता है तब भी वह अपने व्यावहारिक भाषा में जिन शब्दों का प्रयोग करता है, वह प्रायः व्याकरण विहित ही होते हैं। उदाहरण के लिये बच्चों की उस बात को ले लीजिये कि 'सूरज सदा पूर्व को निकलता है।' आपने किसी बच्चे को यह कहते न सुना होगा कि 'यह है निकलता सूरज पूर्व में सदा' अबोध बालक ऐसा क्यों नहीं बोलता? उसने कौन सा व्याकरण पढ़ा है? जिसके अनुसार वह ठीक बोलता है। कहना न होगा कि व्याकरण का इतना ज्ञान उसे प्रकृति से मिलता है। मातृभाषा में भी व्याकरण की इतनी ही आवश्यकता है कि प्रयोगों के शुद्धाशुद्ध का ज्ञान हो सके। अनवरत अभ्यास के कारण हमें शुद्धाशुद्ध प्रयोग का ज्ञान बिना व्याकरण के पढ़े भी हो जाता है। यदि हम संस्कृत व्याकरण के समान हिन्दी व्याकरण पर अवलम्बित हो जायँ तो पद-पद पर हमें कठिनाइयाँ प्रतीत होने लगें। कुछ लोगों का मत है कि संस्कृत लेटिन के समान मृत भाषा है और मृत भाषाओं पर ही व्याकरण का विकट शासन

रहता है। यहाँ पर हम संस्कृत को मृत भाषा बतलाने वालों की आलोचना नहीं करते, परन्तु इतना अवश्य कहेंगे कि हिन्दी तो मृत भाषा नहीं है। इसमें ग्राहिका शक्ति भी है। इसलिये इस को व्याकरण की विकट बेड़ी में बाँधना मानो इसकी गति पर आघात करना है।

हमारी प्रस्तुत पुस्तक का विषय रचना है। इसलिये आगामी परिच्छेदों में हम केवल रचना के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करेंगे। यहाँ पर प्रसंग वश हमने कविता की भाषा और हिन्दी व्याकरण के सम्बन्धों में अपने विचार प्रकट कर दिये हैं।

प्रश्न

(१) आदि काल में लोग अपने विचारों को कैसे व्यक्त करते थे?

(२) उस समय लोगों की कौन सी भाषा थी?

(३) भाषा-विज्ञान-विशारदों का प्राचीन हिन्दी के विषय में क्या मत है?

(४) हिन्दी भाषा की उत्पत्ति पर एक छोटा सा लेख लिखो।

(५) संस्कृत और प्राकृत में कौन सी प्राचीन भाषा है स्पष्ट समझाओ।

(६) भाषा के तत्ववेत्ताओं ने साहित्य के इतिहास काल का कैसे वर्गीकरण किया है और किस आधार पर ऐसा किया है स्पष्ट समझाओ!

(७) सब से प्राचीन काल कौन सा है?

(८) 'पृथ्वीराज रासो' के रचयिता के विषय में तुम क्या जानते हो?

(९) ब्रजमण्डल के कवियों ने गद्य साहित्य में कौन कौन सी रचनायें कीं?

(१०) 'लार्ड मिकाले' की शिक्षा नीति का देशी भाषाओं पर क्या प्रभाव पड़ा?

(११) बाबू हरिश्चन्द्र के विषय में तुम क्या जानते हो?

(१२) कविता के लिये ब्रज भाषा उपयोगी है या खड़ी बोली और क्यों ? इसको एक लेख लिख कर स्पष्ट समझाओ ?

(१३) संस्कृत भाषा का भारत में सर्वत्र प्रचार क्यों न हो सका ?

(१४) हिन्दी के लिये संस्कृत के समान बृहत् व्याकरण की आवश्यकता है या नहीं ?

(१५) हिन्दी गद्य के क्रमिक विकास पर छोटा सा लेख लिखो।

(१६) 'रामचरितमानस' का संसार में इतना आदर क्यों है ?

(१७) 'भाषा पहिले बनी या व्याकरण' इस पर अपने विचार प्रकट करो।

(१८) आज कल के किन-किन कवियों की कविताओं में माधुर्य्य नहीं पाया जाता और उनका समाज में क्या स्थान है ?

(१९) 'भूषण' कवि को वीर रस में क्यों कविता करनी पड़ी ? यदि भूषण ऐसा न करता तो देश की क्या दशा होती ? स्पष्ट समझाओ।

(२०) पंडित 'महावीर प्रसाद द्विवेदी' के विषय में क्या जानते हो ? इन्होंने किन-किन कवियों को विख्यात किया ? स्पष्ट समझाओ।

द्वितीय अध्याय

शब्द

शब्द—व्याकरण शास्त्र शब्दों पर ही अवलम्बित है। शब्द रचना का सर्वस्व है। रचना ही का क्यों? विधाता के प्रपंच में जहाँ तक भावाभिव्यक्त करने का सम्बन्ध है वहाँ तक शब्दों का अखण्ड राज्य है। वाक्य की सुन्दरता शब्दों के प्रयोग पर निर्भर है। अतएव पहले हम शब्दों पर ही विचार करेंगे।

शब्द क्या है? जो कान से सुनाई पड़े उसे शब्द कहते हैं। यह तो शब्द का विस्तृत अर्थ हुआ। प्राचीनतम काल में जब लिखित भाषा का निर्माण नहीं हुआ था उस समय शब्दों का ध्वनि के आधार पर संकेत नियत किए गये थे। ज्यों-ज्यों मनुष्य की सभ्यता और आवश्यकता की वृद्धि होती गई, त्यों-त्यों सही संकेत अक्षरों के रूप में परिणत होते गये और कालान्तर में वह वर्णमाला के रूप में आ गये।

शब्द दो प्रकार के होते हैं (१) सार्थक, (२) निरर्थक

१—सार्थक—वह शब्द हैं, जिनका कुछ अर्थ भी हो। जैसे किसी ने कहा कि 'आपने भोजन कर लिया' इस कथन से हमने यह जान लिया कि कहने वाले का क्या अभिप्राय है और क्या पूछ रहा है।

२—निरर्थक—वह शब्द हैं, जिनका कोई अर्थ न हो। जैसे बादलों के गरजने का शब्द अथवा पशु-पक्षी का बोलना आदि,

परन्तु मनुष्यों ने आवश्यकता के अनुसार उनका कोई अर्थ नियत कर लिया है। इनका यद्यपि कोई अर्थ नहीं है परन्तु सांकेतिक अर्थ तो हो ही सकता है।

हम ऊपर कह आये हैं कि जो कान में सुनाई पड़े उसे शब्द कहते हैं। इसके अनुसार मृदंग और भेरी आदि के शब्द भी इसी परिधि के अन्तर्गत आ जाते हैं। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि मृदंग के शब्द का कोई अर्थ होता है या नहीं। यहाँ पर यही कहना पड़ेगा कि भले ही सर्व साधारण को उसका अर्थ ज्ञात न हो परन्तु संगीत विद्या-विशारदों को उसका अर्थ अवश्य ज्ञात रहता है क्योंकि उसके शब्दों का सांकेतिक अर्थ नियत कर रक्खा गया है। इसी प्रकार तार की खटखटाहट का भी एक सांकेतिक अर्थ है। अतएव हम एक प्रकार से किसी शब्द को निरर्थक नहीं कर सकते. क्योंकि जो शब्द लोगों को निरर्थक ज्ञात होते हैं उनका भी कुछ न कुछ सांकेतिक अर्थ हो सकता है। इसके अतिरिक्त पशुओं की बोली की सार्थकता अथवा निरर्थकता के विषय में प्रश्न उपस्थित होता है। इस सम्बन्ध में यह कहना पड़ेगा कि पशुओं की बोली का अर्थ मनुष्यों को मालूम हो या न हो यह दूसरी बात है, परन्तु उनकी बोली में भावाभिव्यंजन करने की शक्ति है।

जिस समय पिञ्जर-बद्ध-कीर पर मार्जारी (बिल्ली) आक्रमण करती है, तो उस समय वह सर्वथा सुरक्षित रहने पर भी कायरता पूर्वक शब्द करके अपने प्राणों को संकट में पड़ जाने की व्यंजना करता है। जिस समय किसी निरीह पशु का वध किया जाता है उस समय वह अपने करुण क्रन्दना के द्वारा अपने घोर संकट की व्यंजना करता है। उसका वह अति नाद

अन्य समय की बोली से सर्वथा भिन्न होता है। इसी से हम अनुमान कर सकते हैं कि पशुओं की बोली का भी कोई न कोई अर्थ अवश्य होता है। गाय जिस समय अपने बछड़े के लिये रँभाती है उस समय वह तुरन्त समझ जाता है। इतना ही क्यों? चूहे चाहे बिल्ली के प्रत्यक्ष दर्शन न करें, परन्तु उसके म्याऊँ शब्द का अर्थ समझते हैं। इतना ही नहीं, सिंह का दहाड़ का अर्थ जंगल के सारे पशु समझते हैं इत्यादि।

शब्द की सार्थकता और निरर्थकता पर प्रकाश डालने के लिये इतना ही पर्याप्त होगा। यहाँ पर हमें पशुओं की बोली पर विचार करना इष्ट नहीं। हम यहाँ केवल मनुष्यों के द्वारा उत्पत्ति किये हुए सार्थक शब्दों पर ही विचार करेंगे।

व्युत्पत्ति की दृष्टि से शब्द तीन प्रकार के होते हैं। (१) रूढ़ि। (२) यौगिक। (३) योग रूढ़ि।

१—रूढ़ि शब्द—जिस शब्द का जो विशेष अर्थ प्रसिद्ध हो या यों कहिये कि अवयवार्थ के बिना केवल अवयवों की समुदाय शक्ति के द्वारा जिस शब्द के अर्थ का बोध कराया जा सके, उसे रूढ़ि शब्द कहते हैं। शब्द कल्पद्रुमकार का मत है कि "प्रकृति प्रत्यार्थमनपेक्ष्य शब्दबोधजनकः" अर्थात् प्रकृति और प्रत्यय के अर्थ की अपेक्षा न रखते हुए जिस शब्द का जो अर्थ हो उसे रूढ़ि कहते हैं। जैसेः—हाथी, घोड़ा इत्यादि। इन शब्दों से प्रकृति प्रतयय आदि की अपेक्षा न करके भी अर्थ का बोध होता है। अतएव इनकी संज्ञा रूढ़ि है। इस प्रकार शब्द सागर में रूढ़ि शब्द अनन्त हैं। इनकी सूची देना असम्भव है।

२—यौगिक शब्द—जिन शब्दों के अर्थ का बोध अवयवार्थ से होता है उन्हें यौगिक कहते हैं। अर्थात् जो शब्द दो या अधिक शब्दों के योग से बने होते हैं वे यौगिक कहलाते हैं। जैसे :—

निशाकर, भूपाल । यहाँ पर निशाकर शब्द निशा+कर शब्दों के योग से बना है जिसका अर्थ है रात्रि के करने वाला अर्थात् चन्द्रमा । इसी प्रकार भूपाल भी दो शब्द भू+पाल के योग से बना है जिसका अर्थ है पृथ्वी की रक्षा करने वाला अर्थात् राजा ।

सारांश यह है कि यौगिक शब्द दो या अधिक शब्दों के योग से बनते हैं । यदि उनके खण्डों के अर्थ किये जायें तो उनसे अभीष्ट अर्थ न निकल सकेगा ।

३—योगरूढ़ि—उन शब्दों को कहते हैं जिनमें योग और रूढ़ि दोनों ही शक्तियाँ हों अथवा यों कह लीजिये कि जिसका शब्दार्थ तो और हो और वह पूरा शब्द किसी विलक्षण अर्थ का बोध करावें । जैसेः—पंकज—यहाँ पंकज का अर्थ हुआ (पंक+ज) अर्थात् जो वस्तु कीचड़ से उत्पन्न हो । कीचड़ से कमल, घोंघे, कुमुदिनी आदि सभी उत्पन्न होती हैं । परन्तु उन सब की पंकज संज्ञा नहीं होती । पंकज संज्ञा कमल ही की है । इसका कारण यह है कि पंकज के अर्थ में कमल रूढ़ि है । इसीलिए यहाँ रूढ़ि शक्ति अन्य अर्थों का बोध करती है । इसी प्रकार पीताम्बर शब्द ले लीजिये, इसका अर्थ हुआ (पीत+अम्बर) पीला कपड़ा या पीला कपड़ा पहनने वाला । परन्तु पीताम्बर शब्द प्रत्येक पीत वस्त्र धारण करने वाले का अर्थ बोध नहीं करता । वह केवल भगवान् कृष्ण का अर्थ बोध करता है, क्योंकि पीताम्बर भगवान् कृष्ण के लिये ही है । इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी समझना चाहिये ।

पूर्व परिच्छेद में हिन्दी भाषा के सम्बन्ध में कहा गया था कि हिन्दी भाषा संस्कृत अथवा प्राकृत की दुहिता है । इसलिये इसमें उन भाषा के शब्दों का सन्निवेश अनिवार्य है । भाषा के

लक्षण बतलाते हुए साहित्याचार्य श्रीयुत बाबू जमुनादास 'भानु' ने अपने काव्य प्रभाकर में इसी प्रकार कहा है :—

संस्कृतं प्राकृतं चैव शौरसेनी च मागधी।
पारसी च अपभ्रंश भाषा षट्कं च लक्षणम् ॥

अर्थात् भाषा के छः लक्षण हैं, संस्कृत, प्राकृत, शौरसेनी, मागधी, पारसी और अपभ्रंश।

१—संस्कृत

जिस संस्कृत शब्द का विशुद्ध रूप अर्थात् जैसे का तैसा रूप भाषा में ग्रहण कर लिया गया हो। उसे तत्सम कहते हैं, जैसे:— प्रवाल, मराल, अरुण, विहंग आदि।

२—प्राकृत

जो शब्द संस्कृत अथवा प्राकृत से बिगड़ कर हिन्दी में ग्रहण किये गये हों उन्हें तद्भव अथवा देशज् कहते हैं। जैसे :—हाथ, पाँव, आग, लोटा, पगड़ी आदि।

तद्भव शब्दों का प्रयोग गद्य में यथेष्ट किया जाता है, परन्तु पद्य में इनके अतिरिक्त अन्य उपभाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग पाया जाता है। पाठकों के ज्ञान के लिये प्राकृत के अन्तर्गत उन भाषाओं के शब्दों के भी उदाहरण दे रहे हैं जिनका प्रयोग बोलने में और विशेषतः पद्य में किया जाता है।

मारवाड़ी—चालो, चाला, रावले, आणद, जायो, छै, घणो आदि।

बुंदेलखण्डी—नैमा, लुगाई, आदि।

गुजराती—कंमके, सारू, धाम, अग, करीने आदि।

महाराष्ट्री—जाऊंद, मला, आता, फार, बेल, भाली, मेतो, लोकर आदि।

वैसवाड़ी—भा, ढीठ, मिलाषति आदि।

अवध निकट मध्य प्रदेश—कस, पियावा, जियरा, विरहिनिया।

नाग भाषा— अले, अज्जन, दुज्जन, घुम्म, कम्म, अनथ्य, सनथ्य आदि।

३—शौरसेनी (व्रज देश की बोली)

एरी, वीर, धीर, भट अथवा मायरी, माय, मग, सांकरी पायन कांकरी गड़तु है।

४—मागधी (मगध देश की बोली)

रोरे, दे दिया, हमराके, मुसकनिमा, कैल।

हिन्दी भाषा के इतिहासकार और आलोचक प्रवर मिश्र बन्धुओं का मत है कि हिन्दी भाषा का जन्म सप्तम शताब्दी के लगभग हुआ था। उसके कुछ ही काल के अनन्तर यवनों की शनि दृष्टि भारत पर आ पड़ी और इस पर आये दिन विदेशिओं के आक्रमण होने लगे। देश के दुर्भाग्य से यवनों की विजय हुई और भारत का शासन सूत्र संचालन यवनों के हाथ में आ गया।

विजेता चाहे जिस जाति का क्यों न हो वह विजित जातियों पर अपना आतंक स्थापित करने के लिये अपनी भाषा और अपने संस्कारों का प्रचार अवश्य करता है। फिर यवन किसी एक जाति के नहीं थे। जिन लोगों को इतिहास का ज्ञान है उन्हें यह भली भाँति मालूम है कि जब इन पार्वत्य प्रदेश निवासियों को अपने देश में पर्याप्त भोजन वस्त्र की सुविधा नहीं मिली तब इन्होंने विवश होकर अन्य सम्पन्न देशों की ओर अपनी बाग मोड़ी। यही देश था अभागा भारत जहाँ के पारस्परिक वैमनस्य ने इन आक्रमणकारियों को यथेष्ट सहायता दी। परिणाम यह हुआ कि महाराज अनंगपाल के मरते-मरते ही यवन

अप्रतिहत गति से भारत में आकर निवास करने लगे। ये लोग कई जातियों के थे और ये अपने संस्कार और भाषा अपने साथ भारत में लाये। इन विजेताओं में विशेषतः अरब, फ़ारस और तुर्क देश के निवासी सैनिक थे। इनकी भाषा के शब्द हिन्दी में मिलने लगे और तब से हिन्दी एक प्रकार की खिचड़ी हो गई।

अरबी—रद्दी, औरत, मुकद्दमा, अदालत, असबाब, हकीम, गुस्सा, फुरसत, कसर, मालूम, क़रीब आदि।

फ़ारसी—दुकान, चाकू, दुश्मन, जहान, कमर, दोस्त, सौदा, लाल, होश, बाग़ आदि।

तुर्की—तोप, लाश, कुली, तमाशा, काबू, कालीन, बावर्ची आदि।

सोलहवीं शताब्दी के अन्त में पाश्चात्य जातियों ने भारत से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित किया। कालान्तर में यहाँ जातियाँ राजशक्ति सम्पन्न हो गईं। इसलिये इनकी भाषा का भी प्रभाव हिन्दी भाषा पर पड़ा। भारत सदा से अपने अतिथि अथवा अभ्यागत का पूजन करता चला आया है और अन्य अन्य भाषाओं का हृदय से स्वागत करता आया है। इसी का प्रमाण आजकल अँग्रेज़ी भाषा और पाश्चात्य सभ्यता का प्रचार है। पाश्चात्य भाषाओं के शब्द इस प्रकार ग्रहण किये गये हैं जैसे :—

अँग्रेज़ी—बटन, स्टेशन, बक्स, कमीशन, रेल, प्रेस, अरदली, थेटर, मास्टर आदि।

पुर्तगीज़ भाषा—कमरा, गोदाम, गिरजाघर, पादरी आदि।

इस प्रकार आजकल हिन्दी भाषा विविध भाषाओं के शब्दों

से परिपूर्ण है। जो लोग हिन्दुस्तानी प्रचार के पक्ष में हैं; उनका मत है कि यह भाषा के विकास का समय है। अन्य भाषाओं के शब्दों को ग्रहण करके हिन्दी भाषा ने अपनी ग्राहिका शक्ति का परिचय दिया है। भाषा में ग्राहिका शक्ति का रहना उसकी सजीवता का प्रमाण है। परन्तु जो लोग अपनी भाषाओं का शुद्ध रूप बनाये रखने के पक्षपाती हैं उनका मत है कि अन्य भाषाओं के शब्दों को अपना कर हिन्दी भाषा के गौरव को मिट्टी में मिलाना है। कोई भी भाषा अन्य भाषाओं के शब्दों को अपनाने से नहीं बढ़ सकती। संस्कृत ने किन किन भाषाओं के शब्दों का अपहरण किया है? और उसका साहित्य भारत की किस भाषा के साहित्य से कम है। यह विचारने की बात है, क्या जो शब्द और भाषाओं के लिये गये हैं उनके पर्य्यायवाची शब्द संस्कृत अथवा प्राकृत में नहीं हैं, यदि नहीं है तब तो दूसरी बात है और यदि हैं तो हेर-फेर करके वह क्यों नहीं हिन्दी में ग्रहण किये जाते क्या वास्तव में हिन्दी और संस्कृत का शब्द कोष इतना तुच्छ है? क्या जो शब्द पश्चात्य अथवा यवन भाषाओं से ग्रहण किये गये हैं, क्या उनके अर्थ बोधक अन्य शब्द संस्कृत भाषा में थे ही नहीं। यदि नहीं थे तो फिर पहले कैसे काम चलता था? उन शब्दों के स्थान पर क्या बोला जाता था?

हिन्दी भाषा का कौन सा रूप होना चाहिये, इसके विषय में हम कुछ कहना नहीं चाहते क्योंकि इस समय हिन्दुस्तानी और संस्कृत गर्भित भाषा इन दोनों ही के समर्थक दल भारती की सेवा कर रहे हैं। देखें किसकी विजय होती है, परन्तु व्यक्तिगत रूप से हम स्वयं विशुद्ध भाषा के पक्षपाती हैं और चाहते हैं कि यदि बिना अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किये हुए हिन्दी

भाषा अपना काम चला सके तो चलाये अन्यथा जैसा चाहे वैसा करे।

प्रश्न

१ - शब्द किसे कहते हैं ?

२—रचना में शब्दों का क्या महत्व है ?

३ —शब्द के कितने भेद हैं ?

४ - निरर्थक शब्दों से क्या समझते हो !

५—सार्थक शब्दों के दो उदाहरण दो।

६—यौगिक और योग रूढ़ि में क्या अन्तर है ?

७—हिन्दी भाषा में भाँति-भाँति के शब्द पाये जाते हैं स्पष्ट पुष्टि करो।

८—पाठशाला, अश्व, गौ, देश सेवा, लम्बोदर, दशानन किस प्रकार के शब्द हैं।

उपसर्ग और प्रत्यय

पहले कहा जा चुका है कि हिन्दी भाषा का घनिष्ठ सम्बन्ध संस्कृत और प्राकृत से है। अतः इस पर उन्हीं दोनों का अविरल प्रतिबिम्ब पड़ा है। हिन्दी भाषा में भी संस्कृत के समान उपसर्ग और प्रत्यय होते हैं। उपसर्ग बहुधा क्रिया के पूर्व में लगता है और क्रिया के अर्थ में परिवर्तन कर देता है और कभी नहीं भी करता। वृत्तिकार का मत है कि—

उपसर्गेण धात्वर्थोबलादन्यत्र नीयते।
बिहाराहार संहार प्रहार परिहारवत्॥

उपसर्ग २२ होते हैं, जो निम्न लिखित हैं—

प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, निस्, निर्, दुस्, दुर्, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, उत्, सु, उप, अभि, प्रति, परि।

उपसर्ग धातु में लगकर के अर्थ में किस प्रकार परिवर्तन कर देते हैं उनके उदाहरण निम्नलिखित हैं।

उदाहरण

हृ धातु (मुख्य अर्थ चुराना)

वि	+	हृ	+	घञ्	=	विहार	=	घूमना।
आ	+	,,	+	,,	=	आहार	=	भोजन।
सं	+	,,	+	,,	=	संहार	=	मारना।
प्र	+	,,	+	,,	=	प्रहार	=	पीटना।
परि	+	,,	+	,,	=	परिहार	=	छोड़ देना
उप	+	,,	+	,,	=	उपहार	=	भेंट।
प्रति	+	,,	+	,,	=	प्रतिहार	=	द्वारपाल।
प्रति	+	आ + हृ	+	घञ्	=	प्रत्याहार	=	हटना
अप	+	हृ	+	घञ्	=	अपहार	=	चुराना।

इत्यादि।

कृ धातु (मुख्य अर्थ करना)

प्र	+	कृ	+	घञ्	=	प्रकार	=	तरह
आ	+	,,	+	,,	=	आकार	=	सूरत।
उप	+	,,	+	,,	=	उपकार	=	भलाई।
वि	+	,,	+	,,	=	विकार	=	बुराई।
अधि	+	,,	+	,,	=	अधिकार	=	स्वामित्व।
प्र	+	,,	+	ल्युट्	=	प्रकरण	=	परिच्छेद।
अनु	+	,,	+	,,	=	अनुकरण	=	नकल।
उप	+	,,	+	,,	=	उपकरण	=	सामान।
दुस् (दुः)		,,	+	अच्	=	दुस्कर	=	कठिन।
सु	+	,,	+	,,	=	सुकर	=	सरल।

भू धातु (मुख्य अर्थ होना)

प्र	+	भू	+	ल्युट्	= प्रभु	=	स्वामी।
प्र	+	भू	+	घञ्	= प्रभाव	=	असर।
सं	+	भू	+	अच्	= सम्भव	=	मुमकिन।
उत्	+	भू	+	,,	= उद्भव	=	उत्पत्ति।
वि	+	भू	+	अच्	= विभव	=	ऐश्वर्य।

इत्यादि इत्यादि

उपर्युक्त जो उदाहरण दिये गये हैं उन के अतिरिक्त भी बहुत से उदाहरण हो सकते हैं शेष व्यवहार से जानने चाहिएँ।

प्रत्यय

धातु (क्रिया) के अन्त में प्रत्यय लगाने से जो पद (शब्द) बनते हैं उन्हें कृदन्त कहते हैं।

जो शब्द संज्ञा, सर्वनाम विशेषण के योग से बनते हैं वे तद्धित कहलाते हैं।

उदाहरण क्रमशः देखो :—

कृदन्त प्रत्यय व शब्द

धातु	प्रत्यय	पद		अर्थ
कृ	तव्य	कर्तव्य	=	करने योग्य।
कृ	अनीय	करणीय	=	करने योग्य।
कृ	ण्यत्	कार्य्य	=	करने योग्य।
चिन्त्	अनीय	चिन्तनीय		विचारने योग्य।
गम्	क्त	गत	=	गया हुआ।
श्रम्	,,	श्रान्त	=	थका हुआ।
भञ्ज्	,,	भग्न	=	नष्ट हुआ।
रुज्	,,	मुग्ध	=	मोह को प्राप्त हुआ।

धातु	प्रत्यय	पद		अर्थ
भ्रस्ज्	क्त	भ्रष्ट	=	गिरा हुआ।
रुज्	,,	रुग्ण	=	रोगी, रोग से युक्त।
लू	,,	लून	=	कटा हुआ।
पच्	,,	पक्व	=	पका हुआ।
वद्	,,	ऊदित	=	कहा हुआ।
वच्	,,	उक्त	=	कहा हुआ।
रञ्ज्	,,	रक्त	=	खून।
छिद्	,,	छिन्न	=	कटा हुआ।
गम्	क्ति	गति	=	चाल इत्यादि।
श्रम	,,	श्रान्ति	=	थकावट, थकान।
वच्	,,	उक्ति	=	कथन।
भ्रम	,,	भ्रान्ति	=	संदेह।
भज्	,,	भक्ति	=	सेवा, पूजा।
मुच्	,,	मुक्ति	=	मोक्ष।
ख्या	,,	ख्याति	=	प्रसिद्धि।
स्था	,,	स्थिति	=	हालत, दशा।
दा	तृच्	दाता	=	देने वाला।
श्रु	,,	श्रोता	=	सुनने वाला।
हन्	,,	हन्ता	=	मारने वाला।
कृ	,,	कर्ता	=	करने वाला।
युध्	,,	योद्धा	=	लड़ने वाला।
नी	ण्वुल्	नायक	=	नेता।
पू	,,	पावक	=	पवित्र करने वाला।
दा	,,	दायक	=	देने वाला।

धातु	प्रत्यय	शब्द		अर्थ
कृ	ण्वुल	कारक	=	करने वाला।
पच्	,,	पाचक	=	पकाने वाला।

णिन् प्रत्यय

वद्	णिन्	वादी	=	बोलने वाला।
वस्	,,	वासी	=	रहने वाला।
द्रुह्	,,	द्रोही	=	वैर करने वाला।
मंत्र्	,,	मंत्री	=	सलाह देने वाला।

अण् प्रत्यय

कुंभ् + कृ + अण् =कुम्भकार= कुम्हार।
टीका + कृ + ,, =टीकाकार= टीका करने वाला, कठिन बातों को सरल करने वाला।

अच् प्रत्यय

प्रभा + कृ + अच् = प्रभाकर = सूर्य।
जल + चर + अच् = जलचर = जल के रहनेवाले।
अग्र + सृ + अच् = अग्रसर = आगे चलने वाला।
सं + गम् + अच् = संगम = मिलाप।
सं + भू + ,, = संभव = शायद।
भी + ,, = भय = डर।
सृप् + अ = सर्प = चाल या साँप।
चर् + ,, = चर = चरना या खाना।

घञ् प्रत्यय

पठ् + घञ् = पाठ = सबक़।
भू + ,, = भाव = विचार, सारांश।
त्यज् + ,, = त्याग = छोड़ना।
रंज + ,, = राग = प्रेम।

ल्युट् प्रत्यय

धातु		प्रत्यय		शब्द		अर्थ
गम्	+	ल्युट्	=	गमन	=	जाना।
श्रु	+	,,	=	श्रवण	=	सुनना।
कृ	+	,,	=	करण	=	करना।
तृ	+	,,	=	तरण	=	पार होना।

तद्धित् प्रत्यय व तद्धितान्त पद

त, त्व, अण् प्रत्यय

गुरु	+	त	=	गुरुता	=	भारीपन।
लघु	+	,,	=	लघुता	=	छोटापन।
गुरु	+	त्व	=	गुरुत्व	=	भारीपन।
लघु	+	,,	=	लघुत्व	=	छोटी।
गुरु	+	अण	=	गौरव	=	बड़प्पन।
लघु	+	,,	=	लाघव	=	छोटी।

मत्, वत्, प्रत्यय

बुद्धि	+	मत्	=	बुद्धिमान्	=	अक्लमन्द।
मति	+	,,	=	मतिमान्	=	,,
ज्ञान	+	वत्	=	ज्ञानवान्	=	,,
दया	+	,,	=	दयावान्	=	दया करने वाला।

वतिच् प्रत्यय

गुरु	+	वतिच्	=	गुरुवत्	=	गुरु की तरह।
चन्द्र	+	,,	=	चन्द्रवत्	=	चन्द्रमा की तरह।

इन्, विन्, प्रत्यय

गुण	+	इन्	=	गुणी	=	गुणवान्।
दान्	+	,,	=	दानी	=	दान करने वाला।

धातु		प्रत्यय		शब्द		अर्थ
यशस्	+	विन्	=	यशस्वी	=	कीर्ति वाला।
तेजस्	+	,,	=	तेजस्वी	=	प्रतापी, तेजवाला।

इतच् प्रत्यय

फल्	+	इतच्	=	फलित	=	परिणाम, नतीजा।
उत्कंठा	+	,,	=	उत्कण्ठित	=	प्रसन्न, उत्सुक।

तर्, तम्, ईयस्, इष्ठ प्रत्यय

गुरु	+	तर्	=	गुरुतर	=	बहुत भारी
गुरु	+	तम	=	गुरुतम	=	,, ,,
गुरु	+	ईयस्	=	गरीयान्	=	बड़ा।
गुरु	+	इष्ठ	=	गरिष्ठ	=	कठोर।

इमन् प्रत्यय

नीला	+	इमन्	=	नीलिमा	=	नीलापन।
लघु	+	,,	=	लघिमा	=	छोटापन।
महन्	+	,,	=	महिमा	=	गौरव।

मय प्रत्यय

स्वर्ण	+	मय	=	स्वर्णमय	=	सोने से युक्त।

था, धा, त्र प्रत्यय

अन्य	+	था	=	अन्यथा	=	नहीं तो।
शत	+	धा	=	शतधा	=	सौ प्रकार।
सर्व	+	त्र	=	सर्वत्र	=	सब जगह।

डिम, तन, म प्रत्यय

अग्र	+	डिम	=	अग्रिम	=	आगे।
पुरा	+	तन	=	पुरातन	=	पुराना।
आदि	+	म	=	आदिम	=	प्रारम्भ।

ल, इल प्रत्यय

धातु		प्रत्यय		शब्द		अर्थ
मांस	+	ल	=	मांसल	=	मोटा।
मृदु	+	ल	=	मृदुल	=	कोमल।
पिच्छा	+	इल	=	पिच्छिल	=	चित्र विचित्र।

र, उर प्रत्यय

मधु	+	र	=	मधुर	=	मीठा।
कुंज	+	र	=	कुंजर	=	हाथी।
दन्त	+	उर	=	दन्तुर	=	ऊँचा, नीचा।

आमिन् आकिन प्रत्यय

स्वयम्	+	आमिन्	=	स्वामी	=	मालिक।
एक	+	आकिन्	=	एकाकी	=	अकेला।

हमने उपर्युक्त जो उपसर्ग और प्रत्यय प्रदर्शित किये हैं इनसे भिन्न और भी बहुत से होते हैं। उनका विस्तार करना यहाँ हमारा ध्येय नहीं है वे सब व्यवहार से जानने चाहिएँ।

प्रश्न

१—प्रत्यय किसे कहते हैं ?

२—प्रत्यय के कितने भेद हैं ?

३—उपसर्ग कितने होते हैं ?

४—'भू' धातु में 'प्र' और 'परा' उपसर्ग लगने पर कैसा शब्द होगा और क्या अर्थ होगा ?

५—उपसर्ग की परिभाषा करो।

६—पाँच कृत् प्रत्यय वाले शब्द बताओ।

७—जिन शब्दों में 'आकिन्' और 'आमिन्' प्रत्यय लगे—ऐसे चार शब्द बनाओ।

समास

'रचना' की सुन्दरता बढ़ाने के लिये उपसर्ग और प्रत्यय की तरह सामासिक शब्दों का होना भी आवश्यक है। बिना सामासिक पदों के रचना में सुन्दरता की कमी रह जाती है।

जिस प्रकार किसी शब्द में उपसर्ग और प्रत्यय लगकर नया शब्द बन जाता है इसी प्रकार दो या अधिक शब्द मिलकर जो शब्द बनते हैं, उन्हें समास कहते हैं। यथा :—

१—राज-मंदिर = राजा का मंदिर।
२—दिन-रात = दिन और रात।

उपर्युक्त उदाहरण नं० १ में 'का' विभक्ति का लोप होकर 'राज-मंदिर' एक स्वतन्त्र सामासिक पद बना है। उदाहरण नं० २ में 'और' शब्द का लोप होकर 'दिन-रात' सामासिक पद बनाया गया है।

विग्रह

सामासिक पदों को जब अलग अलग किया जाता है तो उनके बीच में जो-जो विभक्ति सम्बन्ध स्पष्ट करती है, उसको विग्रह कहते हैं। यथा :—

समस्त पद	विग्रह
राम-लक्ष्मण	राम और लक्ष्मण
देवकी-नन्दन	देवकी का नन्दन

समास छः प्रकार के होते हैं :—

१—अव्ययीभाव
२—तत्पुरुष

३—कर्मधारय
४—द्विगु
५—बहुव्रीहि
६—द्वन्द्व

१—अव्ययीभाव

यदि अव्यय और संज्ञा शब्द मिलकर एक ऐसा शब्द बन जाय जो अव्यय की भाँति प्रयुक्त हो तो उसे अव्ययीभाव समास कहते हैं और जिन शब्दों में अव्ययीभाव समास होता है वे सामासिक शब्द प्रायः क्रिया विशेषण होते हैं। यथा :—

प्रतिदिन = वह प्रतिदिन इस कार्य को करता है।
निर्भय = राम बड़ा निर्भय है।
अनुकूल = तुम मेरे ही अनुकूल रहना।
यथाशक्ति = तुम यथाशक्ति प्रयत्न करना।

यहाँ पूर्व पद में अव्यय शब्द हैं और दूसरे शब्दों से उनका योग है, अतः इन शब्दों में अव्ययीभाव समास हुआ। अव्ययी भाव समास में विग्रह स्पष्ट करने के लिए केवल उस अव्ययीभाव सामासिक पद का अर्थ आगे लिख देते हैं क्योंकि अव्यय शब्दों के आगे विभक्ति न आने से विभक्ति का चिह्न नहीं आ सकता।

नोट—हिन्दी में एक शब्द का जहाँ पर दो बार उच्चारण किया जाय वहाँ भी अव्ययीभाव समास होता है यथा:—

हाथों हाथ = वह मेरी किताब को हाथोंहाथ ले गये।
घर घर = वह घर-घर डोलता है।
बीचों बीच = वह गेंद बिलकुल बीचों-बीच में है।
धीरे धीरे = श्याम धीरे-धीरे क्यों चलता है ?

२—तत्पुरुष

जिस सामासिक पद का उत्तर पद प्रधान हो उसे तत्पुरुष समास कहते हैं। इस समास में पहला पद बहुधा संज्ञा अथवा विशेषण होता है। यथा :—

राज-मन्दिर = राजा का मन्दिर।

कार्य-निपुण = कार्य में निपुण।

उपर्युक्त उदाहरणों में 'मंदिर' तथा 'निपुण उत्तर पद हैं और ये ही प्रधान हैं। अतः दोनों में तत्पुरुष समास है।

तत्पुरुष समास का पहला 'कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध और अधिकरण कारकों में से किसी एक कारक को विभक्ति से युक्त रहना है और समास होने पर उस विभक्ति का लोप हो जाता है जैसा कि ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है कि 'का' और 'में' विभक्ति का समास होने पर लोप हो गया।

तत्पुरुष समास कर्ता और कर्म इत्यादि कारकों के अनुसार छः प्रकार का होता है। यथा :—

	सामासिक पद	विग्रह	कारक के चिन्ह	समास का नाम
१—	दिलचोर	दिल को चुराने वाला	'को' कर्म	कर्म तत्पुरुष
२—	गुणभरा	गुण से भरा	'से' करण	करण तत्पुरुष
३—	पाठशाला	पढ़ने के लिये शाला	'केलिये' सम्प्रदान	सम्प्रदान तत्पुरुष
४—	पदच्युत	पद से च्युत	'से' अपादान	अपादान तत्पुरुष
५—	राजपूत	राजा का पूत	'का' सम्बन्ध	सम्बन्ध तत्पुरुष
६—	स्वर्गवासी	स्वर्ग में वसने वाला	'में' अधिकरण	अधिकरण तत्पुरुष

नोट—जिन शब्दों के अन्त में 'गत' होता है वे तत्पुरुष भी कर्म होते हैं। यथा :-करतलगत = (विग्रह) करतल में आया हुआ।

यहाँ विभक्ति का चिह्न तो 'में' अधिकरण कारक का है किन्तु 'गत' शब्द गम् धातु से बनता है और 'गम्' धातु के योग में जो शब्द होते हैं उनमें प्रायः कर्म तत्पुरुष समास ही माना जाता है।

जहाँ अभाव अथवा निषेध शब्द में शब्द के पहिले (अ' या अन्) लगा देते हैं। ऐसे समास को नञ् तत्पुरुष कहते हैं। यथा :—

असीम = न + सीमा।
अनीश = न + ईश।
अयोग्य = न + योग्य। इत्यादि।

३—कर्मधारय

जिस समास में पूर्व पद विशेषण और उत्तरपद उसी विशेषण का विशेष्य हो अथवा दोनों पद विशेषण हों, उसे कर्मधारय समास कहते हैं। विशेषण शब्द कभी विशेष्य के पूर्व और कभी विशेष्य के पश्चात् आता है। यथा :—

पूर्व पद विशेषण—पीताम्बर—पीत है जो अम्बर (वस्त्र)।
,, ,, —नील गाय—नीली है जो गाय।
उत्तर पद विशेषण—नराधम—अधम है जो नर (मनुष्य)।
दोनों पद विशेषण—नीलपीत—नीला ही पीला है जो।
,, ,, —श्वेत रक्त—श्वेत ही रक्त (लाल) है जो।

कभी कभी दो विशेष्य पदों के योग में भी कर्मधारय समास हो जाता है, वहाँ सामासिक शब्द में विग्रह स्पष्ट करने के लिये

प्रायः 'ही' वत् समान और रूपी शब्दों का प्रयोग कर देते हैं। यथा :—

समस्तपद		विग्रह
मुखकमल	(ही)	मुख ही कमल।
चन्द्रवदन	(वत्)	चन्द्रवत् बदन।
वज्रदेह	(समान)	वज्रसमान देह।
चरण कमल	(रूपी)	कमल रूपी चरण।

जिन शब्दों में 'सु' 'दु' 'कु' आते हैं, वे भी कर्मधारय समास होते हैं। यथा :—

कु — कुपुरुष अर्थ = बुरा ही पुरुष।
सु — सुपुरुष अर्थ = अच्छा ही पुरुष।
दु — दुर्जन अर्थ = दुष्ट ही पुरुष। इत्यादि

४—द्विगु

जिस समास में उत्तर पद मुख्य और पूर्व पद संख्या वाचक हो, उसे द्विगु समास कहते हैं। यह समास समाहार (समूह) अर्थ में होता है। यथा :—

त्रिभुवन = तीन भुवनों का समाहार।
त्रिलोकी = तीन लोकों का समाहार।
षट्पदी = छः पदों का समूह।
नवग्रह = नौ ग्रहों का समूह।

हिन्दी उदाहरण—पंसेरी, चौबोला, चौमासा, दुअन्नी, चवन्नी इत्यादि।

नोट :—एक मध्यमपदलोपी भी समास होता है अर्थात् जिस समास में पहले पद का दूसरे पद से सम्बन्ध बताने वाला शब्द समास में

अध्याहृत रहता है उस शब्द का लोप होने पर वह पद मध्यमपदलोपी समास अथवा लुप्तपद समास कहलाता है। यथा :—

शाक पार्थिवः (शाक प्रिय पार्थिवः)
पर्ण शाला (पर्ण निर्मित शाला)
दही बड़ा (दही में डूबा बड़ा)
गुडम्बा (गुड़ में डूबा आम) इत्यादि।

उपर्युक्त उदाहरणों में क्रमशः 'प्रिय' निर्मित और डूबा का लोप होने पर मध्यमपदलोपी समास हुआ है।

५—बहुव्रीहि

जिस समास में कोई शब्द प्रधान न हो और जो स्वयं किसी दूसरे संज्ञा शब्द का विशेषण होकर सांकेतिक अर्थ बतलावे, उसे बहुव्रीहि समास कहते हैं। यथा:—

समस्तपद — विग्रह
पीताम्बर — पीत है अम्बर (वस्त्र) जिसका (कृष्ण)।
लम्बोदर — लम्बा है उदर (पेट) जिसका (गणेशजी)
अनन्त — नहीं है अन्त जिसका (ईश्वर)

संज्ञाओं से बने हुए बहुव्रीहि सामासिक पद भी तत्पुरुष के समान भिन्न-भिन्न कारकों के विचार से भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। यथा:—

करण बहुव्रीहि—जितेन्द्रिय—(जीति गई हैं इन्द्रियाँ जिससे)।
कृतकार्य—(किया है कार्य जिसके द्वारा)।
सम्प्रदान बहुव्रीहि—उपहृतपशु—(उपहृत (भेंट) में दिया गया है पशु जिसके लिए)।
अपादान बहुव्रीहि—प्रपतितपर्ण—(गिरे हैं पत्ते जिससे)
सम्बन्ध बहुव्रीहि—दशानन—(दश हैं मुख जिसके)।

सहस्रबाहु—(सहस्र हैं बाहु जिसके)।
अधिकरण बहुव्रीहि—प्रफुल्ल कमल—(प्रफुल्ल 'खिले' हैं कमल जिसमें)।

नोट—समास का भेद प्रायः कर्ता की इच्छा के ऊपर भी निर्भर होता है। समस्तपद के देखने से भेद प्रतीत नहीं होता। अधिकतर तो अर्थ की संगति के ऊपर समास होता है। यथा:—

बहुव्रीहि में समस्त पद	विग्रह
१—नष्ट मति	नष्ट है मति जिसकी।
२—पीताम्बर	पीत है अम्बर (वस्त्र जिसका)।
३—महाशय	महद् है आशय जिसका।
४—अल्प बुद्धि	अल्प (कम) है बुद्धि जिसकी।
कर्मधारय में समस्त पद	**विग्रह**
१—नष्ट मति	नष्ट है जो मति।
२—पीताम्बर	पीत ही अम्बर।
३—महाशय	महद् ही आशय।
४—अल्प बुद्धि	अल्प (कम) ही बुद्धि।

उपर्युक्त पदों में दोनों समास हो सकते हैं, केवल इतना अन्तर है कि बहुव्रीहि में समस्त पद विशेषण होता है।

६—द्वन्द्व

जिस समास में पूर्व और उत्तर दोनों पद प्रधान होते हैं और शब्दों के बीच में समुच्चयबोधक 'और' शब्द का लोप हो जाता है। यथा :—

समस्तपद	विग्रह
लैन-दैन	लैन (और) दैन।

रात-दिन	रात (और) दिन।
माता-पिता	माता (और) पिता।
भाई-बहिन	भाई (और) बहिन।
दाल-रोटी	दाल (और) रोटी।

विचारणीय बात—यदि कहीं पर एक ही सामासिक पदों में कई समास हों तो जो अन्तिम समास होगा वही मुख्य समझा जायेगा। यथा :—

नील-पीत-जलजात-शरीरा

नील+पीत=द्वन्द्व समास

नीलपीत ही जलजात (कमल)=नील-पीत+जलजात=कर्म धारय समास।

नीलपीत जलजात है शरीर जिसका=नीलपीत जलजात+शरीरा (बहुव्रीहि समास)।

यद्यपि यहाँ पर कई पदों में कई समास हैं परन्तु अन्तिम समास बहुव्रीहि समास ही मुख्य माना जायेगा।

प्रश्न

१—समास की रचना में क्या उपयोगिता है ?

२—समास कितने प्रकार के होते हैं ? उनके नाम बताओ।

३—जहाँ पर एक सामासिक शब्द में बहुत से समास हों, वहाँ कौन समास मुख्य माना जायगा।

४—कर्मधारय और बहुव्रीहि समास का भेद स्पष्ट करो।

५—विग्रह किसे कहते हैं ?

६—नीचे के शब्दों में विग्रह कर समास करो :—

कामधेनु कविकुल शिरोमणि, तरणितनुजा, अशेष तीर्थ, सीतान्वेषण-तत्पर, दम्पती, चक्रपाणि और पंचतीर्थ।

तृतीय अध्याय

अर्थ

शब्दों में तीन प्रकार की शक्ति है, उन्हीं शक्तियों के द्वारा पद या वाक्य आदि का अर्थ जाना जाता है। ये शक्तियाँ (१) अभिधा (२) लक्षणा (३) व्यञ्जना हैं।

(१) अभिधा—शब्द की वह शक्ति है जिसके द्वारा शब्द अपने ठीक-ठीक अर्थों का बोध करते हैं।

(२) लक्षणा—शब्द की वह शक्ति है जो शब्दार्थ से सम्बन्ध रखने वाली होती है।

(३) व्यञ्जना—शब्द की वह शक्ति है जिससे अर्थों का बोध होता है।

अभिधा

यह शब्दों का मुख्य अर्थ प्रकट करती है। इससे जो अर्थ विदित होता है उसे वाच्यार्थ कहते हैं।

वाच्यार्थ के सहकारी अङ्ग—(१) पर्य्याय या प्रति शब्द।
(२) शब्द-व्युत्पत्ति।

(१) पर्य्याय या प्रति शब्द—एक शब्द के पलटाव में अन्य शब्द का प्रयोग करना 'प्रतिशब्द' कहलाता है। इसके द्वारा किसी शब्द का अर्थ करना बड़ा सरल है, किन्तु जिस शब्द का पर्य्याय शब्द लिखना हो उससे सरल शब्द लिखना चाहिये; जैसे :—

मयंक के लिये चन्द्रमा और केहरि के लिये सिंह।

(२) शब्द व्युत्पत्ति—इसमें धातु के साथ प्रत्यय के योग में, अथवा रूढ़ि-रूप धातु के अर्थ में तथा समासों में आये हुए शब्दों में जो अर्थ होता है, उसे व्युत्पत्त्यार्थ कहते हैं। यौगिक और योगरूढ़ पदों के व्युत्पत्यार्थ का बहुत शीघ्र बोध होता है, जैसे :—

उदाहरण :—(१) दश हैं आनन जिसके, वह दशानन।
(२) राजा का कुमार है जो, वह राजकुमार।
(३) शर फेंके जायँ जिसके द्वारा, वह शरासन
(४) शिव हैं इष्टदेव जिसके, वह शैव।

लक्षणा

जिन शब्दों से उनके सीधे-साधे अर्थ या कोई निश्चित अर्थ न लिया जाकर उनसे सम्बन्ध रखने वाला कोई भिन्न अर्थ समझा जाये। इसके द्वारा जो अर्थ प्रकट होता है उसे 'लक्ष्यार्थ' कहते हैं।

जैसे उदाहरण :—(१) आज बाज़ार में लाल साफ़े दिखाई दे रहे थे।
(२) मेरी भुजाओं को देखकर शत्रु डर गया।
(३) मेरी तलवार ने मुग़लों को भगा दिया।
(४) यह मनुष्य सोने में सुगन्ध है।

उपर्युक्त वाक्यों में लाल साफ़े से 'पुलिस', भुजाओं से 'बल', तलवार से 'तलवार का प्रहार', सोने में सुगन्ध से 'बहुत अच्छा' अर्थ समझना चाहिये। इन शब्दों से वास्तविक अर्थ न लेकर उनके सम्बन्ध से अन्य अर्थ लगाये गये हैं। यही लक्षणा है।

जिस लक्षणा द्वारा वाच्यार्थ का विपरीत अर्थ समझा जाय उसे 'विपरीत लक्षणा कहेंगे; जैसे—किसी अत्यन्त दीन व्यक्ति को देखकर कहा जाय कि कितना 'धनाढ्य आदमी है ?

व्यञ्जना

वाच्यार्थ या लक्ष्यार्थ को छोड़कर जिसके द्वारा एक और अर्थ प्रकट हो जाय। इसके द्वारा जो अर्थ घटित होता है वह 'व्यंग्यार्थ' कहलाता है। जैसे कि :—

युद्ध लड़ने वालों में किसी योद्धा ने कहा 'अब तो रुधिर की नदी बड़ी चढ़ रही है।' इसका अर्थ यह है कि बहुत से योद्धा मारे जा रहे हैं।

इसी प्रकार—

(१) "स्वारथ सुकृतु न श्रमु वृथा; देखि विहंगु विचारि।
बाज पराए पानि परि, तू पच्छीनि न मारि॥"

इस दोहे से व्यङ्ग्यार्थ निकलता है कविवर बिहारीलाल ने 'बिहंगु' सम्बोधन करके बादशाह को और पच्छीनि सम्बोधन मनुष्यों को करके युद्ध बन्द करा दिया था। इसमें दोहे का अर्थ व्यंग्य में और ही हो गया है।

(२) "को न छुट्यौ इहि जाल परि; कत, कुरंग, अकुलात।
ज्यौं ज्यौं सुरझि भज्यौ चहत, त्यौं त्यौं उरझत जात॥"

इसका व्यंग्यार्थ में यह अर्थ होगा। हे मनुष्य! तू ही क्यों घबड़ा रहा है इस संसारी माया में कौन नहीं फँसा। तू ज्यों-ज्यों वैराग्य में होना चाहता है त्यों-त्यों तू दूना दूना संसारी माया में लिप्त होता है इससे स्पष्ट प्रतीत है कि दोहे का साधारण अर्थ कुछ और ही है, परन्तु कवि ने मनुष्य को 'कुरंग' सम्बोधन करके चेतावनी दी है।

समानार्थक या पर्यायवाची शब्द

वाचक शब्दों के अर्थ, समान-अर्थ-रखने वाले दूसरे शब्दों से बताये जा सकते हैं; जैसे—

यह **मनुष्य** बड़ा **दीन** है। यहाँ 'मनुष्य' और 'दीन' शब्दों का अर्थ 'आदमी' और 'ग़रीब' शब्दों से समझा जा सकता है। इसी को दूसरे शब्दों में कह सकते हैं, यह आदमी बड़ा ग़रीब है। इसी प्रकार 'किन्तु' के स्थान पर परन्तु, मगर, लेकिन आदि की आवश्यकता पड़ने पर प्रयोग किये जा सकते हैं। ऐसे शब्दों को समानार्थक शब्द कहा जाता है।

इनके जानने से रचना में बड़ी सहायता मिलती है। ऐसे शब्दों को पर्यायवाची शब्द भी कहते हैं। एक ही शब्द बार-बार लिखने से कानों को अप्रिय लगता है। उस समय पर्य्यायवाची शब्द जानने की अत्यन्त आवश्यकता है। इनसे रचना में सौन्दर्य बढ़ जाता है।

पर्यायवाची या प्रति शब्द

आकाश—व्योम, गगन, अन्तरिक्ष, नभ, अभ्र, खं, शून्य, अम्बर, दिव, पुस्कर, वियत।

आग—अग्नि, अनल, पावक, वह्नि, ज्वलन, कृशानु, दहन, वैश्वानर, दव।

नेत्र—आँख, लोचन, दृग, नयन, चक्षु, अक्षि, चख, अम्बक, दीदा।

कमल—अम्भोज, अम्बुज, अब्ज, अम्भोरुह, इन्दीवर, उत्पल (महोत्पल), कुवलय, कंज, कोकनद, पुण्डरीक, पुष्कर, पङ्कज, पङ्करुह, पाथोरुह, तामरस, राजीव, वारिज,

शतपत्र, सारस, सरोज, सरसीरुह, सहस्रपत्र, सरसिज, पद्म, नलिन, अरबिन्द।

अश्व—वाजि, हय, घोटक, घोड़ा, बाह, सैन्धव, तुरंग, गन्धर्व, रविपुत्र।

आनन्द—मोद, प्रमोद, प्रमद, हर्ष, आमोद, सुख, विहार, चैन।

ईश्वर—परमात्मा, प्रभु, ब्रह्म, परब्रह्म, ईश, विश्वनाथ, हरि।

इच्छा—स्पृहा, ईहा, वाञ्छा, कांक्षा, लिप्सा, मनोरथ, काम, अभिलाषा, लालसा, कामना।

कामदेव—कुशमेश, काम, कबंध, पञ्चशर, पुहुपचाप, मदन, मनोभव, अनङ्ग, अतनु, आत्मज, आत्मभू, कुसुमवाण, मार, मीनकेतु, रतिपति, बारिजकेतु, स्मर, विश्वकेतु, मन्मथ, मनोज, मयन, कन्दर्प।

किरण—मरीचि, मयूख, अंशु, कर, रश्मि।

चन्द्रमा—हिमांशु, इन्दु, विधु, निशापति, सोम, मृगांक, कला, निधि, चन्द्र, सुधांशु, निशाकर, शशि, औषधेश, मयंक, शशांक, राकेश, सुधाधर।

क्रोध—कोप, अमर्ष, रोष, गुस्सा।

गंगा—जाह्नवी, गंगा, विष्णुपदी, सुरसरि, भागीरथी, देवनदी।

गणेश—विघ्नराज, गजानन, विनायक, एकदंत, गणाधिप, गिरिजानन्दन।

घर—गृह, गेह, वेश्म, सद्म, निकेतन, भवन, सदन, आगार, मन्दिर, अयन, आयतन।

गदहा—रासभ, गर्दभ, खर, वैसाखनन्दन।

पानी—जल, पय, अम्बु, अमृत, घनरस, मेघपुष्प, सर्वमुख, कबंध, सलिल, रस, तोय, उदक, पाथ, शम्बर, अप, सारङ्ग, वारि, नीर, जीवन, वन, पानीय।

घी—घृत, आज्य, सर्पि, हव्य।

चरण—पाद, अंघ्रि, पाँव, पैर।

सर—तालाब, सरोवर, सरवर, ह्रद, तड़ाग, पद्माकर, पुष्कर।

दिन—दिवस, वासर, अहन्, रोज़।

दुग्ध—दूध, क्षीर, पय।

पार्वती—दुर्गा, उमा, गौरी, शिवा, भवानी, गिरिजा।

देवता—अमर, देव, त्रिदश, विबुध, सुर, आदित्य, गीर्वाण।

बाण—तीर, शर, विशिख ,आशुग, शिलीमुख, नाराच, इषु।

पुष्प—फूल, कुसुम, मञ्जरी, फलपिता, प्रसून, लतान्त, सुमन, सुमनस।

मेघ—जलधर, बादल, जलद, जीमूत, जगजीवन, तड़ितपति, धराधर, अभ्र, वारिद, नीरद।

सूर्य—सूरज, रवि, दिवाकर, पतंग, दिनेश, ग्रहपति, भानु, प्रभाकर, आदित्य, भास्कर, सहस्रांशु, मार्तण्ड, दिनकर, सूर, अर्क, तरणि।

बिजली—चंचला, चपला, विद्युत्, सौदामिनी, दामिन, घनादाम, तड़ित्, छटा, बीजुरी, क्षणप्रभा।

देह—वपु, कलेवर, विग्रह, शरीर, तनु, काय, मूर्ति।

असुर—राक्षस, दैत्य, दनुज, दानव, रजनीचर।

नदी—सरिता, नद, तरङ्गिणी, निम्नगा, आपगा, तरिनी।

पक्षी—शकुन्त, शकुनि, द्विज, पतङ्ग, अंडज, परंद, विहंग।

पंडित—सुधी, विद्वान्, कोविद, बुध, धीर, मनीषी, प्राज्ञ, विचक्षण।

पहाड़—पर्वत, अद्रि, गिरि, अचल, नग, शैल ।

पात्र—भाण्ड, भाजन, बर्तन ।

पत्थर—प्रस्तर, पाषाण, उपल, अश्म, पाहन ।

भूमि—भू, पृथ्वी, अचला, धरा, धरित्री, धरणी, क्षोणी, क्षिति, वसुमती, वसुधा, वसुन्धरा, उर्वी, अवनि, मेदिनी, मही, धात्री, जगती ।

ब्रह्मा—विधि, विधाता, विरञ्चि, चतुरानन, पितामह, स्वयम्भू ।

भौंरा—मधुकर, भ्रमर, भृंग, षट्पद, अलि, द्विरेफ, भंवर, मधुप ।

ब्राह्मण—भूदेव, महिसुर, द्विज, विप्र, अग्रजन्मा ।

मनुष्य—मनुज, मानुष, मानव, नर, पुरुष, मर्त्य, लोग, आदमी ।

मदिरा—सुरा, वारुणी, शराब, मद ।

मस्तक—शीर्ष, शिर, उत्तमाङ्ग, माथा, ललाट, भाल, कपाल, भाग्य, प्रारब्ध ।

मार्ग—राह, रास्ता, पंथ, अध्व, पथ, सरणि, वर्त्म ।

मित्र—सखा, सुहृद्, वयस्क, स्वजन, अभिन्न हृदय ।

मुँह—बदन, मुख, वक्त्र, आनन ।

राजा—पार्थिव, नृप, भूप, महीप, नरपति, भूपति राव, नरेश ।

मूर्ख—मूढ़, अज्ञ, बालिश, अनभिज्ञ, अबोध, अज्ञानी ।

अबला—नारी, स्त्री, वनिता, महिला, अंगना, कामिनी, प्रमदा ।

हाथ—हस्त, कर, पाणि, करतल ।

हाथी—हस्ती, द्विप, दन्ती, द्विरद, गज, मतङ्ग, नाग, कुञ्जर, करी, गयंद, वारण ।

हनूमान्—पवनपुत्र, मारुतिसुत, अञ्जनीसुत, बजरंगबली ।

बन्दर—कपि, किन्नर, शाखामृग, बाँदरा ।

रुधिर—रक्त, लोहित, शोणित, ख़ून।
रात्रि—निशा, राति, रजनी, शर्वरी, तमसा।
वस्त्र—अंशुक, पट, बसन, चैल, आच्छादन।
लक्ष्मी—श्री, रमा, इन्दिरा, कमला, पद्मा, मा।
वर्ष—वत्सर, अब्द, हायन।
हवा—वायु, अनिल, समीर, मारुत, समीरण, वात, पवन, बयार।
बैल—वृषभ, वृष, बलीवर्द।
विष्णु—गरुड़ध्वज, अच्युत, जनार्दन, चक्रपाणि, विश्वंभर, मुकुन्द, नारायण, हृषीकेश, दामोदर केशव, माधव, गोविन्द, लक्ष्मीपति।
शिव—ईश, शम्भु, पशुपति, शर्व; ईशान, शंकर, चन्द्रशेखर, मृड, गिरीश, मृत्युंजय, महादेव, मदनारि, त्रिलोचन, हर, शैव।
बैरी—शत्रु, रिपु, अरि, विपक्षी, अमित्र, परिपन्थी।
समय—काल, बेला।
सर्प—अहि, भुजंग, विषधर, व्याल, फणी, उरग, पन्नग, नाग, साँप।
सिंह—नाहर, केसरि, मृगेन्द्र, पञ्चमुख, हरि, केहरि, वनपति।
सागर—समुद्र, अब्धि, पारावार, उदधि, नीरधि सिन्धु अर्णव, वारीश, पयोधि।
सोना—सुवर्ण, स्वर्ण, कंचन, कनक, हिरण्य, हेम, हाटक।
चतुर—विज्ञ, प्रवीण, नागर, निपुण, दक्ष, कुशल, बुद्धिमान्, सयाना।
श्रीकृष्ण—जसोदानन्दन, कंसारि, मेघवपु, घनस्याम, माधव, पूतनारि, द्वारिकाधीश।

यमुना—कालिन्दी, रविसुता, रवितनया, रविनन्दिनी।
वन—कानन, जंगल, विपिन, अरण्य।
वक्षःस्थल—छाती, हृदय, उर, उरस्थल, कलेजा, सीना।
वक्र—टेढ़ा, बाँका, तिरछा, कुटिल।
वन्दना—स्तुति, नमस्कार, प्रणाम, विनती।
पत्ता—पत्र, दल, पात, वरह, किशलय।
रमणीक—सुन्दर, वल्गु, मनोहर, ललित, कलित, अच्छा, श्रेष्ठ, मञ्जु, मंजुल, ललाम, उत्तम, भूषण, मनोज्ञ, मनभावन, सुहावना।
ढाक—किंशुक, पलास, टेसू, छिउल।
किङ्कर—दास, भृत्यु, नौकर, सेवक, चाकर, भक्त।
वृक्ष—पादप, पेड़, द्रुम।
पाती—चिट्ठी, पत्री, पत्र।
पिक—कोइल, कोकिल, परभृत, श्यामा।
पिता—जनक, बाप, तात, पितृ, पित्र।
पीतम—प्रियतम, स्वामी, धव, प्रिय, प्यारा, प्राणनाथ, प्रिय वल्लभ।
सुत—बेटा, पुत्र, अपत्य, तनुज।
माता—जननी, माँ, अम्मा, मैया, अम्बा।
समूह—दल, झुँड, मण्डली, यूथ, टोली, समाज, जत्था।
मुर्गा—अरुणशिखा, ताम्रचूड़, तमचुर।
प्रातःकाल—सबेरा, विहान, भोर, तड़के, प्रातहि।
व्याध—अहेरिया, शिकारी, बहेलिया।
व्यर्थ—वृथा, निरर्थक, निकम्मा, निष्फल।
चोटी—शिखर, शृङ्ग, शिखा।

एकार्थक शब्दों का सूक्ष्म-भेद

(१) लज्जा और ग्लानि

लज्जा—कोई अयोग्य कार्य हो जाने से दूसरों को मुँह दिखाने की इच्छा न होना, जैसे :—उसे बेटी का धन खाने में बड़ी लज्जा आती है।

ग्लानि—अकेले रहने पर भी यदि वह बात चित्त में खटकती रहे ; जैसे :—वह मुझसे बड़ी ग्लानि मानता है।

(२) खेद, दुःख, शोक, क्षोभ, विषाद, शोच।

खेद—निराशा में या पछतावे में होता है ; जैसे :—स्त्री के मर जाने का मुझे खेद है।

दुःख—साधारण वस्तु है। यह मन का विषय है; जैसे :—मुझे दीनता का बड़ा दुःख है।

शोक—उस व्याकुलता का नाम है जो किसी के मर जाने या उसी के समान दुःख से होती है; जैसे :—मुझे रामधन के मरने का शोक है।

क्षोभ—इच्छित वस्तु न मिलने पर होता है तथा कोई अनिष्ट हो जाने पर होता है; जैसे :—मुझे वहाँ ठेका न मिलने का क्षोभ है।

विषाद—उस बड़े दुःख का नाम है जिसमें कर्त्तव्य-ज्ञान नहीं रहता; जैसे :—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के परलोक वास से देश को बड़ा विषाद हुआ।

शोच—वह दुःख जिसमें आगे की चिन्ता भी हो ; जैसे :—मुझे शोच है कि घर की दशा कैसे सुधरेगी ?

(३) दया, कृपा।

दया—किसी को दुःखी देखकर हृदय भर आना; जैसे :—मुझे उस बीमार मनुष्य पर दया आती है।

कृपा—छोटों के लिये सहायता करने की इच्छा; जैसे :—आपकी कृपा से मेरा भला ही होगा।

(४) श्रम, आयास, परिश्रम।

श्रम—शरीर से मेहनत करना; जैसे :—तुमने आज पैदल चलने का क्यों श्रम किया !

आयास—मन लगा कर मेहनत करना; जैसे :—पुस्तक याद केवल आयास से ही हो सकती है।

परिश्रम—विशेष श्रम; जैसे :—मेरा यह परिश्रम सफल होगा।

(५) उद्योग, उत्साह, उद्यम, प्रयास, चेष्टा।

उद्योग—कार्य में लग पड़ने का नाम उद्योग है; जैसे:—मैं लिखने का उद्योग कर रहा हूँ।

उत्साह—काम करने की उमंग होना उत्साह है; जैसे :—आज सेना में उत्साह आया हुआ है।

उद्यम—उद्योग की स्थिरता को कहते हैं; जैसे :—मनुष्य को कुछ-न कुछ उद्यम करना चाहिये।

प्रयास—सफलता के समीप उद्यम का नाम प्रयास है; जैसे :—परमात्मा के भजन से मनुष्य बिना प्रयास ही संसार से तर जाता है।

चेष्टा—किसी कार्य का बाहिरी प्रयत्न चेष्टा है ; जैसे :—मुझे उसके मिलने की चेष्टा थी।

(६) बुद्धि, मन, अन्तःकरण, हृदय, चित्त।

बुद्धि—जिसका कार्य्य विवेक या निश्चय करना है; जैसे :—मेरी बुद्धि से तो यह काम ठीक ही है।

मन—अन्तःकरण का कार्य भेद से एक विभाग है जिससे संकल्प-विकल्प होता है; जैसे :—मेरा मन चाहता है कि देश की सेवा करूँ।

अन्तःकरण—वह भीतरी इन्द्रियाँ जो संकल्प-विकल्प, निश्चय, स्मरण तथा सुख-दुःखादि का प्रज्ञान करती है ; जैसे :— मेरा अन्तःकरण बिल्कुल शुद्ध है।

हृदय—ज्ञान करने वाली ज्ञानेन्द्रिय का नाम है ; जैसे :—मेरा हृदय बड़ा कोमल है।

चित्त—जिससे बातों का स्मरण होता है; जैसे :—यह बात मेरे चित्त से उतर गई है।

(७) पुत्र, बालक।

पुत्र—अपना लड़का पुत्र है; जैसे :—मेरा पुत्र अँग्रेज़ी पढ़ता है।

बालक—कोई भी लड़का बालक है ; जैसे :—यह किसका बालक है।

(८) पत्नी, स्त्री।

पत्नी—अपनी स्त्री पत्नी है; जैसे:—आज मेरी पत्नी नैहर गई है।

स्त्री—कोई भी स्त्री स्त्री है; जैसे :—यह स्त्री बड़ी चंचल है।

(९) ह्रास, त्रुटि।

ह्रास—बने बनाये काम का कोई अङ्ग बिगड़ जाय तो वह ह्रास होता है; जैसे :—मेरी धोती किनारी पर से जल गई इससे मुझे बड़ा ह्रास है।

त्रुटि—किसी काम में कोई कमी रह जाय तो वह त्रुटि है; जैसे:— इस पत्र के लिखने में कुछ त्रुटि रह गई है।

(१०) अवस्था, वय।

अवस्था—उम्र ; जैसे :—वह लड़का दस साल की अवस्था का है।

वय—पूर्ण हुई उम्र ; जैसे :—श्री तुलसीदास जी की वय क्या थी ?

(११) अस्त्र, शस्त्र ।

अस्त्र—वह हथियार; जो फेंक कर मारा जाय, या जिससे कोई वस्तु फेंक कर मारी जाए; जैसे—बम, बाण, और बन्दूक आदि युद्ध में चल रहे थे ।

शस्त्र—वह हथियार, जिसे हाथ में लिए हुए आघात किया जाए; जैसे भाला एक उत्तम शस्त्र है ।

(१२) भ्रम, प्रमाद ।

भ्रम—सचेत न रहने से जो चूक हो जाय वह भ्रम है ; जैसे :—मुझे आज भ्रम हो रहा है ।

प्रमाद—मूर्खता से या जान बूझकर परवाह न करने से जो चूक हो जाय वह प्रमाद है, जैसे :—रावण श्रीरामचन्द्र जी से प्रमाद-वश मारा गया ।

(१३) श्रद्धा, भक्ति ।

श्रद्धा—बड़ों के गुण विशेष के कारण जो प्रेम उत्पन्न हो; जैसे:—मुझे गुरुजी से श्रद्धा है ।

भक्ति—देवता या गुरुजनों में जो प्रेम हो वह भक्ति है; जैसे :—वह कृष्ण की भक्ति करता है ।

(१४) तर्क, वाद, वितण्डा, युक्ति, गल्प ।

तर्क—युक्ति की कसौटी तर्क है; जैसे :—मैंने उससे तर्क की थी ।

वाद—किसी निर्णय पर पहुँचने के हेतु युक्ति-प्रयुक्ति वाद है; जैसे :—आज विद्वानों में वाद हो रहा है ।

वितण्डा—स्वपक्ष स्थापना और परपक्ष निराकरण कथा विशेष वितण्डा है । जैसे :—मेरा मित्र मोहन बलहीन था तो भी सोहन जो बड़ा बलवान है, उससे हार गया ।

युक्ति—कार्य का हेतु दिखलाना युक्ति है; जैसे :—मैं उसके मारने की युक्ति कर रहा हूँ।

गल्प—निःस्वार्थ किसी की झूठी बात कहना; जैसे :—यह मनुष्य सौ मन रुई को ले गया।

(१५) अलौकिक, अस्वाभाविक।

अलौकिक—जो कुछ लोक या समाज में प्रायः न देखा जाता हो; जैसे :—श्रीरामचन्द्र जी की पितृ-भक्ति अलौकिक थी।

अस्वाभाविक—जो कुछ स्वभाव या प्रकृति या सृष्टि नियम के विरुद्ध हो; जैसे :—अपने लिये दुखः पैदा करने की चेष्टा मनुष्य के लिये अस्वाभाविक होगी।

(१६) ईर्ष्या, द्वेष।

ईर्ष्या—दूसरों की उन्नति देखकर अकारण बुरा मानना; जैसे :—वह मुझे सम्पत्तिशाली देखकर ईर्ष्या करता है।

द्वेष—यदि दूसरों से घृणा या शत्रुता किसी कारण की जाय तो वह द्वेष है; जैसेः—रावण विभीषण से द्वेष रखता था।

(१७) अनभिज्ञ, मूर्ख, अज्ञान, मूढ़।

अनभिज्ञ—किसी बात से अपरिचित या अनजान; जैसेः—वह दर्शनशास्त्र से सर्वथ से अनभिज्ञ है।

मूर्ख—जिसे अनुभव कराने पर भी अनुभव न हो; जैसेः—यह प्रश्न तेरी समझ में न आयेगा क्योंकि तू बड़ा मूर्ख है।

अज्ञान—जिसे समझने या अनुभव करने का अवसर ही न मिला हो; जैसे :—लड़के बड़े अज्ञान होते हैं।

मूढ़—जिसमें समझने की शक्ति ही न हो; जैसेः—यह मनुष्य बड़ा मूढ़ है कि जिस डाल पर बैठा है उसी को काट रहा है।

(१८) प्रेम, स्नेह, प्रणय, वात्सल्य, प्रीति।

प्रेम—प्रेम साधारण वस्तु है ; जैसेः—मुझे सबसे प्रेम है !

स्नेह—छोटों के प्रति जो प्रेम है; जैसेः—मैं अपनी भगिनी से स्नेह करता हूँ।

प्रणय—स्त्री में जो प्रेम हो; जैसेः—तू अपनी स्त्री से बहुत प्रणय करता है।

वात्सल्य—अपने पुत्र, शिष्य; आदि के लिये जो प्रेम हो; जैसेः—सूरदास जी ने वात्सल्य रस बड़ा ही उच्च-कोटि का लिखा है।

प्रीति—पर स्त्री प्रेम होना है; जैसेः—उसकी वार-वधू से बड़ी प्रीति है।

(१९) प्रणाम, नमस्कार, अभिवादन, राम-राम।

प्रणाम—अपने से बड़ों के लिये ; जैसेः—गुरु जी को पाठशाला में घुसते ही प्रणाम करो।

नमस्कार—बड़ों और बराबर वालों के लिये : जैसेः—पिताजी ने गुरु जी को नमस्कार किया।

अभिवादन—अपना परिचय देकर प्रणाम करना ; जैसेः—सुग्रीव ने वन में रामचन्द्र को देखते ही अभिवादन किया (अर्थात् अपना परिचय देकर प्रणाम किया)।

राम-राम—प्रत्येक मनुष्य प्रत्येक मनुष्य से कर सकता है; जैसेः—मैंने उससे राम-राम की।

(२०) आधि, व्याधि

आधि—मन से सम्बन्ध रखने वाले कष्ट; जैसेः—चिन्ता एक आधि है।

व्याधि—शरीर से सम्बन्ध रखने वाले कष्ट ; जैसेः—ताप एक व्याधि है ।

(२१) दम्भ, पाखण्ड ।

दम्भ—गौरव दिखाने या स्वार्थ सिद्ध करने के लिए झूठा आडम्बर; जैसेः—वह पंडित कुछ नहीं जानता वह तो दम्भ फैलाये हुए है ।

पाखण्ड—वह भक्ति और उपासना जो बिना निष्ठा के केवल दूसरे के दिखाने के लिए की जाय ; जैसेः—आज कल के साधु-संत पाखण्डी होते हैं ।

(२२) लोभ, लालसा

लोभ—दूसरे की वस्तु लेने की इच्छा ; जैसे वह बड़ा लोभी है ।

लालसा—किसी वस्तु को प्राप्त करने की बहुत अधिक इच्छा; जैसे :—मुझे एक बार अपनी बहिन को देखने की लालसा है ।

(२३) सेवा, शुश्रूषा

सेवा—बड़ों की परिचर्य्या; जैसे अपने माता-पिता की सेवा करना हमारा परम धर्म है ।

शुश्रूषा—रोगी या दुःखी की परिचर्य्या; जैसेः—सुशीला ने अपने पति की बीमारी में बड़ी शुश्रूषा की ।

(२४) उपादान, उपकरण

उपादान—वह पदार्थ जिससे कोई वस्तु बने; जैसे खांड बूरे का उपादान है ।

उपकरण—वह सामग्री जिसकी सहायता से काम पूरा हो; जैसे :—पत्ते, सींकें पत्तल बनाने के उपकरण हैं ।

(२५) अहंकार, गौरव, अभिमान, घमंड ।

अहंकार—अपने को योग्य से बहुत अधिक समझना; जैसे :—

केवल मिडिल पास ही किया है तो भी उसे अपने गणित की योग्यता का अहंकार है।

गौरव—अपने बड़प्पन का यथार्थ ज्ञान : जैसे :—यूनानी अपना गौरव भूल गये।

अभिमान—अपने को किसी बात में दूसरे से बड़ा समझना और दूसरे को छोटा : जैसे:—अपने बल का उसे बड़ा अभिमान है।

घमंड—अपने सामने किसी को कुछ न समझना : जैसे:—रावण को अपनी वीरता का बड़ा घमंड था।

(२६) धन, सम्पत्ति

धन—स्वार्थ की वस्तुओं के संग्रह का नाम धन है ; जैसे:— उसके पास बहुत गोधन है।

सम्पत्ति—रुपये पैसे आदि को कहते हैं। जैसे:—उसका बाप बड़ी सम्पत्ति छोड़ मरा।

अनेकार्थ शब्द

ऐसे भी शब्द हैं, जिनके एक-एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। वे किस स्थान पर किन अर्थों में प्रयोग किये जाते हैं, इसका अनुभव केवल प्रसंग के अनुसार हो सकता है। जैसे १—'पानी' इस शब्द के तीन अर्थ हैं—(१) चमक, (२) प्रतिष्ठा, (३) जल। तीनों स्थानों पर यह भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयोग किया जा सकता है।

उदाहरण (१)—'रहिमन' पानी राखिये, बिन पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरें, मोती, मानुष, चून॥
—कविवर रहीम

प्रयोग :—(१) मोती पक्ष में पानी का अर्थ चमक का है।
(२) मनुष्य पक्ष में पानी का अर्थ प्रतिष्ठा का है।
(३) चून (चूने के) पक्ष में पानी का अर्थ जल का है।

उदाहरण (२)—'कनक कनक ते सौगुनी, मादकता अधिकाय।
वह खाये बौरात है, वह पाये बौराय ॥'
—कविवर बिहारी लाल।

अर्थात् सोने में धतूरे से सौ गुना अधिक नशा होता है। इस (धतूरे) के खाने से आदमी पागल होता है किन्तु उस (सोने) के पाने ही से आदमी पागल हो जाता है। इसमें 'कनक' शब्द के दो अर्थ हैं-(१) सोना (२) धतूरा।

उदाहरण (३)-सारंग ने सारंग लख्यो, सारंग बोल्यो आइ।
जो मुख से सारंग कहूँ, तो मुख सारंग जाइ ॥
—अज्ञात कवि

अर्थात् सारंग (मोर) ने सारंग (सर्प) को देखा तो इतने में ही सारंग (बादल) गर्जने लगा। तो मोर सोचता है कि मैं) यदि मुंह से सारंग (शब्द) कहूँ तो मेरे मुँह में जो सारंग (सर्प) है वह गिर जायगा।

इसमें 'सारंग' शब्द के चार अर्थ हैं-(१) मोर, (२) सर्प (३) बादल (४) शब्द।

उदाहरण (४)-'पर कारज देह को धारे फिरौ,
परजन्य! यथारथ ह्वै दरसौ।
निधिनीर सुधा के समान करौ,
सब ही बिधि सज्जनता सरसौ ॥
घन आनँद, जीवन दायक हौ,

कबौं मेरिश्रौ पीर हिए परसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मों,
अँसुधान को लै बरसौ ॥—घनानंद।

इसमें 'जीवन दायक' शब्द के दो अर्थ हैं—(१) जल देने वाले (२) जीवन देने वाले।

इसी प्रकार के अन्य शब्द कुछ निम्नलिखित हैं जिनके कई अर्थ हो सकते हैं:—

१—अंक—(१) चिह्न (२) गोद (३) १, २, ३, ४ गिनती आदि।
२—आत्मज—पुत्र, कामदेव।
३—पुष्कर—आकाश, जल, तालाब, कमल।
४—अज—ब्रह्मा, दशरथ के पिता, बकरा।
५—अपवाद—कलंक, वह नियम जो व्यापक नियम से विरुद्ध हो।
६—अम्बर—वस्त्र, आकाश।
७—अर्क—सूर्य्य, आक वृक्ष, ताम्र, इन्द्र, विष्णु, ज्येष्ठ भ्राता।
८—अर्थ—धन, स्वार्थ, प्रयोजन।
९—आली—पंक्ति, सखी।
१०—ईश्वर—महादेव, समर्थ।
११—उत्तर—जवाब, उत्तर दिशा, पीछे।
१२—कर—हाथ, किरण, सूँड़, टैक्स।
१३—कला—सोलहवाँ हिस्सा, ६४ कलाएँ।
१४—कोटि—करोड़, गोशा।
१५—कवन्ध—जल, कामदेव, सिर कट जाने पर युद्ध स्थल में लड़ने वाला व्यक्ति।
१६—गन्धर्व—मृग, घोड़ा, देवताओं का एक भेद, प्रेत, विधवा का दूसरा पति।
१७—छटा—शोभा, दीप्ति, बिजली।

१८—पतंग—कीट, कागज की पतंग, सूर्य्य ।

१९—शशांक—चन्द्रमा, मोर ।

२०—सावित्री—यमुना नदी, कश्यपऋषि की पत्नी, आँवला ।

२१—हिरण्य,—सोना, ज्योति, अमृत ।

२२—ह्रद—सरोवर, ध्वनि, नाद ।

२३—हेम—सोना, घोड़ा ।

२४—कोष—खजाना, शब्दों का कोष ।

२५—गुण—सत्व, रज, तम, हुनर, रस्सी, गुना ।

२६—गुरू—गुरू, बड़ा भारी ।

२७—ग्रहण—सूर्य्य, चन्द्र का उपराग, लेना, पकड़ना ।

२८—घन—घना, बादल, गणित में किसी संख्या को उसी से दो बार गुणा करना ।

२९—चित्र—तसवीर, विचित्र ।

३०—प्रान्त—सूबा, किनारा ।

३१—फल—परिणाम, वृक्ष का फल, तलवार आदि का फल ।

३२—बल—ताक़त, सेना, बलराम ।

३३—बलि—राजा बलि, बलिदान, उपहार, कर (टैक्स) ।

३४—भूत—प्राणी, प्रेत, पृथ्वी आदि पंचभूत, बीता हुआ ।

३५—मधु—शहद, शराब ।

३६—मंत्र—सलाह, देवता का मंत्र ।

३७—मान—सम्मान, अभिमान, तौल, नाप ।

३८—माला—फूलों आदि की माला, समूह ।

३९—मित्र—दोस्त, सूर्य्य ।

४०—मुद्रा—रुपया-पैसा, मोहर, शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों को विशेष रीति से रखना ।

४१—तनु—देह, छोटा ।

४२—तात—पिता, भाई, चचा आदि।

४३—दंड—डंडा, सज़ा।

४४—दल—समूह, पत्ता, पत्त।

४५—द्रव्य—धन, वस्तु।

४६—द्विज—ब्राह्मण, ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य, पक्षी, दाँत, चन्द्रमा।

४७—धर्म—स्वभाव, जैसे हिन्दू धर्म।

४८—धात्री—माता, आँवला, पृथ्वी, उपमाता।

४९—नाग हाथी, सर्प।

५०—निमित्त—हेतु, हीला, शकुन।

५१—पक्ष—महीने का आधा, तरफ़, पंख।

५२—पतंग—पक्षी, सूर्य, पतिंगा, चंग।

५३—यम—यमराज, योग का एक अंग।

५४—योग—योग शास्त्र, मिलना।

५५—रश्मि—किरण, रस्सी।

५६—रस—नवरस, षट्रस, दवा, प्रेम, आनन्द, पारा।

५७—पत्र—पत्ता, पंख, चिट्ठी।

५८—पद—अधिकार, ओहदा, पाँव।

५९—पात्र—स्थान, बरतन।

६०—पय—दुग्ध, जल।

६१—पोत—नाव, लड़का, नम्बर।

६२—पृष्ठ—पीठ, पीछे, सफ़ा।

६३—राग—प्रेम, रंग, गाने का राग।

६४—वन—जंगल, जल।

६५—वयस्—उमर, पक्षी।

६६—वर—श्रेष्ठ, वरदान, दुलहा।

६७—वर्ण—ब्राह्मण आदि ४ वर्ण, रंग, अक्षर।

६८—विग्रह—लड़ाई, शरीर।

६९—विधि—रीति, ब्रह्मा।

७०—शक्ति—बल, सांग (अस्त्र) दुर्गा आदि शक्तियाँ।

७१—शिव—कल्याण, महादेव।

७२—सत्व—एक गुण, जीव।

७३—हरि—सूर्य, विष्णु, इन्द्र, सिंह, वानर।

७४—सर्ग—अध्याय, सृष्टि।

७५—सन्धि—मिलाना, सुलह।

७६—सन्तति—सिलसिला, लड़के वाले।

७७—अचल—गतिहीन, दृढ़, स्थिर, अविचलित, क्रियाहीन, पर्वत, अचला (पृथ्वी)।

७८—उदय—उदयाचल पहाड़, उत्पत्ति, उद्भव, उत्थान, फलसिद्धि।

७९—आत्मा—स्वरूप, ब्रह्म, परमात्मा, सूर्य, अग्नि।

८०—अरुण—सूर्य, सूर्य का सारथी, रक्त वर्ण।

८१—अनन्त—विष्णु, सर्पों का राजा, ब्रह्म, आकाश, अविनाशी, अंतहीन।

८२—अन्तर—आकाश, मध्य, छिद्र, अवसर, अवधि, अंतर्द्धान, व्यवधान।

८३—छन्द—इच्छा, पद्य।

८४—बेला—कटोरा, एक बाजा, समय, फूल विशेष।

८५—अक्षर—ब्रह्मा, तपस्या, मोक्ष, नित्य, अकार इत्यादि वर्ण।

८६—अमृत—जल, पारा, दूध, अन्न, स्वर्ण, अमृता (गिलोय)।

'श्रुति सम-भिन्न वाच्यार्थवादी' शब्द

कुछ ऐसे शब्द भी हैं, जिनके उच्चारण लगभग एक से ही होते हैं, किन्तु उनके अर्थों में बड़ा भेद होता है। ऐसे शब्दों

को " श्रुतिसम-भिन्न वाच्यार्थवादी " शब्द कहते हैं।

निम्नलिखित ऐसे ही कुछ शब्द अर्थ सहित दिये जाते हैं।

(१) ग्रह (सूर्य चन्द्र आदि), गृह (घर)।
(२) स्वपच (स्वयम्पाकी), श्वपच (चांडाल)।
(३) सर्ग (सृष्टि), स्वर्ग (देवताओं का लोक)।
(४) सकल (पूरा), शकल (खंड)।
(५) मूल (जड़), मूल्य (दाम, क़ीमत)
(६) लक्ष (लाख), लक्ष्य (निशाना), लक्ष्य (इष्ट)
(७) वसन (कपड़ा), व्यसन (बुरी आदत)
(८) वाक्य (शब्द समूह), वाच्य (अर्थ)
(९) शंकर (महादेव), संकर (मिला हुआ)
(१०) शर (बाण), सर (तालाब)
(११) सूर (सूर्य), सूर (अंधा), शूर (वीर)
(१२) द्वीप (टापू) द्विप (हाथी)
(१३) नीड़ (घोंसला), नीर (पानी)
(१४) पाणि (हाथ), पानी (जल)
(१५) ह्रद (सरोवर), हृद (हृदय)
(१६) परिणाम (फल या नतीजा), परिमाण (अन्दाज़, मिक़दार)
(१७) सुत (पुत्र) सूत (सारथि)
(१८) शम (शान्ति) सम (बराबर)
(१९) मनोज (कामदेव) मनोज्ञ (सुन्दर)
(२०) परुष (कठोर) पुरुष (आदमी)
(२१) प्रसाद (कृपा) प्रासाद (महल)
(२२) प्रवाद (बातचीत), परिवाद (निन्दा)
(२३) प्रहार (मारना), परिहार (त्यागना)

(२४) विना (बगै़र), वीणा (बाजा)
(२५) भुवन (संसार) भवन (घर)
(२६) दारा (स्त्री), द्वारा (ज़रिये)
(२७) चिर (दीर्घ), चीर (वस्त्र)
(२८) कुल (वंश), कूल (किनारा)
(२९) अपभोग (बुरा व्यवहार ; अपव्यवहार) उपयोग (व्यवहार)
(३०) अनभिज्ञ (अनजान), अभिज्ञ (जानने वाला)
(३१) अपेक्षा (प्रतीक्षा करना), उपेक्षा (तुच्छ जानना)
(३२) अपनीत (निकाला हुआ), उपनीति (उपस्थित)
(३३) अंस (कन्धा), अंश (हिस्सा)
(३४) अशक्त (जिसमें शक्ति न हो). आसक्त (लगा हुआ) आसक्त (मोहित)
(३५) आकर (खान), आकार (सूरत, शकल)
(३६) छत्र (छतरी), क्षत्र (क्षत्रिय), सत्र (यज्ञ, अन्न आदि बाँटना)
(३७) छात्र (विद्यार्थी). क्षात्र (क्षत्रिय)
(३८) तरणी (नौका तरुणी (युवती)
(३९) प्रकार (रीति), प्राकार (क़िले आदि का एक अंग)
(४०) प्रथा (रीति), पृथा (अर्जुन की माता)

कई रूप वाले शब्द, जिनका कि अर्थ एक ही होता है

(१) अवनि, अवनी (पृथ्वी)
(२) आलि, आली (सखी)
(३) कटि, कटी (कमर)
(४) तरणि, तरणी (नाव)
(५) धरणि, धरणी (पृथ्वी)

(६) धूलि, धूली (रेत)
(७) भ्रकुटि, भ्रूकुटी (भौंह)
(८) महि, मही (पृथ्वी)
(९) श्रेणि, श्रेणी (क़तार)
(१०) प्रतिकार, प्रतीकार (उपाय)
(११) प्रतिहार, प्रतीहार (द्वारपाल)
(१२) परिहार, परीहार (निवारन)
(१३) परिहास, परीहास (हँसी)
(१४) कलश, कलस (गगरा)
(१५) शायक, सायक (बाण)
(१६) वशिष्ठ, वसिष्ठ (मुनि विशेष)
(१७) शूकर, सूकर (सुअर)
(१८) श्वसुर, ससुर (सम्बन्धी)
(१९) कोष, कोश (ख़ज़ाना)
(२०) किशलय, किसलय (पत्ते)

भिन्न रूप वाले शब्द

(१) मूसक, मूषिक (चूहा)
(२) भ्रुकुटि, भ्रूकुटि (भौंह)
(३) विहग, विहंग, विहंगम (पक्षी)
(४) तुरग, तुरंग, तुरंगम (घोड़ा)
(५) भुजग, भुजंग, भुजंगम (साँप)
(६) अपिधान, पिधान (आवरण, ढकन)
(७) दम्पति, दम्पती (स्त्री-पुरुष)
(८) पृथिवी, पृथ्वी (धरती)
(९) अमावास्या, अमावस्या (तिथि विशेष)

(१०) पूर्णिमा, पूर्णमासी (तिथि विशेष)

(११) तेल, तैल (स्नेह)

विशेष रूढ़ि वाले शब्द

(१) अर्धचन्द्र—आधा चन्द्रमा; यह शब्द गरदनिया देने (हाथ से गर्दन का पिछला भाग पकड़ कर ढकेल देने) के अर्थ में आता है।

(२) देवानांप्रिय—देवताओं का प्रिय, यह शब्द बलिदान के पशु के लिए आता है।

(३) बादशाह का मेहमान—असहयोग आन्दोलन के समय जो लोग कारागार भेजे जाते थे वे अपने को इसी नाम से पुकारते थे।

(४) कल्याणभार्या—जिसकी स्त्री कल्याण वाली हो, इस का प्रयोग ऐसे पुरुष के लिए करते हैं, जिसकी स्त्री मर गई हो।

(५) प्रज्ञाचक्षु—बुद्धि ही है आंख जिसकी, अर्थात् बुद्धिमान; परन्तु अन्धे ही को प्रज्ञाचक्षु कहते हैं।

विशेष आदर वाची शब्द (विशिष्ट आदरार्थक शब्द)

पण्डित, शर्मा—प्रायः ब्राह्मणों के लिये।

ठाकुर, वर्मा—प्रायः क्षत्रियों के लिये।

लाला, गुप्ता—प्रायः वैश्यों के लिये।

मुंशी—प्रायः कायस्थों के लिये।

साहु—(नाम के पीछे) प्रायः व्यापारियों के लिये।

सरदार—सिक्खों के लिये।

मौलवी—मुसलमानों के लिये।

बाबू—बंगालियों के लिए या दफ़्तर के कर्मचारियों के लिये, या ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्य जातियों के लिये।

चौधरी—अहीर, ढाकरों आदि के लिये।

राय—भाटों के लिये या जिनको पदवी प्राप्त है।

महन्त—गुसाइयों के लिये।

स्वामी—सन्यासियों के लिये।

श्रीयुत—हर किसी के लिये।

श्रीमान्—आदरणीय पुरुषों के लिये।

मिस्टर—अँग्रेज़ों के लिये, परन्तु अँग्रेज़ी पढ़े लिखे हिन्दुस्तानियों के नाम के पूर्व में भी व्यवहार में लगाया जाता है।

विशेष: १—यदि नाम लेना न हो और इन आदरार्थक शब्दों ही से सम्बोधन करना हो तो पंडित, लाला, मुंशी, साह, बाबू, चौधरी, राय (चारण के अर्थ में), महन्त, स्वामी शब्दों के पीछे 'जी' शब्द जोड़ा जाता है। ठाकुर, सरदार, मौलवी, राय (पदवी के अर्थ में) शब्दों के अन्त में 'साहेब' शब्द ही अच्छा लगता है। कभी-कभी पंडित, लाला, मुंशी, बाबू, चौधरी शब्दों के अन्त में भी 'साहेब' शब्द जोड़ा जाता है।

२—स्त्रियों के लिये ठाकुराइन, ललाइन, मुंशिआइन, सौहाइन या साहुन, बबुआइन, चौधराइन, श्रीयुता, श्रीमती, मिसेज़ आदि शब्दों का प्रयोग होता है।

नोट—कुछ अन्य शब्द भी हैं, जो, बिना नाम के, आदारार्थ में व्यवहृत होते हैं :—

(१) बरेठा—धोबी के लिये।

(२) रैदास, जाटव—चमारों के लिये।

(३) महरा—कहारों के लिये।

(४) मियाँ—मुसलमानों के लिये, जब कि मुंशी या मौलवी आदि शब्दों का प्रयोग नहीं होता।

(५) मिस्त्री—लोहार, बढ़ई आदि कारीगरों के लिये।

वस्तुओं तथा विशेष जीवधारियों के शब्द

यद्यपि सभी जीवधारी कुछ न कुछ शब्द बोलते हैं, तथापि उनमें भेद करने की दृष्टि से उनके बोली के लिये भिन्न-भिन्न शब्द प्रख्यात हैं।

वस्तुओं के शब्द

(१) घड़ी खट खट करती है।
(२) तेल छनछनाता है।
(३) दाँत कटकटाते हैं।
(४) पंख फरफराते हैं।
(५) बादल गरजता है।
(६) दिल धड़कता है।
(७) साँस चलती है।
(८) गाड़ी घड़घड़ाती है।
(९) चारपाई चरचराती है।
(१०) पत्ता खड़कता है।

जीवधारियों के शब्द

(१) गीदड़ 'हुवा हुवा' करता है।
(२) सुअर 'घुर घुर' करता है तथा सुअर घुरघुराता है।
(३) शेर 'हूँऊँ' करके गरजता है।
(४) मेढक 'टर्र-टर्र' करता है।
(५) मैना पढ़ती है।
(६) तोता पढ़ता है।

(७) साँप फुँसकारता है।

(८) भौंरा गुञ्जारता है।

(९) पपीहा 'पीकहाँ' कहता है।

(१०) कोयल 'कुहू कुहू' करती है।

(११) मक्खी भनभनाती है।

(१२) चिड़िया चहचहाती है।

(१३) कबूतर गटरगों करता है।

(१४) मुर्ग़ा 'कुकुड़ू कूँ' करता है।

(१५) हाथी चिग्घाड़ता है।

(१६) ऊँट बलबलाता है।

(१७) घोड़ा हिनहिनाता है।

(१८) गाय रँभाती है।

(१९) भैंस चुकड़ती है।

(२०) कुत्ता भौंकता है।

(२१) गधा रेंकता है।

(२२) बिल्ली म्याऊँ म्याऊँ करती है।

(२३) बकरी मिमियाती है।

(२४) बर्र 'बूँ बूँ' करती है।

(२५) मोर कुहकता है।

(२६) झींगुर झिंकारता है।

वस्तुओं के चलने के या हिलने के लिये उपयुक्त शब्द

(१) नाव डगमगाती है।

(२) आँसू डबडबाते हैं।

(३) आँखें चौंधियाती हैं।

(४) मन डाँवाडोल होता है।

(५) झंडा फहराता है।

(६) चील मडलाती है।
(७) बिजली चमकती है।
(८) बन्दर खसियाता है।
(९) साँप रेंगता है।

कुछ संख्यावाचक शब्दों से तात्पर्य अन्य होता है।

एक—१ ईश्वर।

दो—२ फल (पाप, पुण्य)।

तीन—३ काल, ३ गुण, ३ दोष, ३ देव, ३ लोक, ३ अग्नि, ३ ऋण, ३ ताप, ३ काण्ड, ३ राम, ३ वायु के गुण, ३ शिव के नेत्र।

चार—४ वर्ण, ४ युग, ४ आश्रम, ४ फल, ४ वेद, ४ अवस्थाएँ, ४ दिशाएँ, ४ सेना के अङ्ग, ब्रह्म के अंग, ४ मस्तक, ४ धाम।

पाँच—५ प्राण, ५ तत्व, ५ ज्ञान इन्द्रिया, ५ कर्म इन्द्रियाँ, ५ यज्ञ, पञ्चामृत, ५ काम के बाण, या शिव के ५ मस्तक, ५ देवता।

छ—६ ऋतु, शास्त्र, ६ रस, ६ वेदाङ्ग, ६ ईतियाँ, ६ स्कन्द ६ मुख।

सात—७ ऋषि, ७ लोक, ७ वार, ७ सागर ७ द्वीप, ७ तल, ७ पर्वत।

आठ—८ वसु, ८ सिद्धियाँ, ८ पहर, ८ भोग के अंग।

नौ—९ ग्रह, ९ निधियाँ, ९ रस, ९ दुर्गा, ९ प्रकार की भक्ति, ९ नन्द, ९ अङ्क।

दश—१० दिशाएँ, १० इन्द्रियाँ, १० विष्णु के अवतार, रावण के १० मुख।

ग्यारह—११ इन्द्रियाँ, ११ रुद्र।

बारह—१२ महीने, १२ राशियाँ, १२ आदित्य, दर्जन में बारह चीज़ें।

तेरह—मरे आदमी की तेरह दिन पीछे तेरई की जाती है।

चौदह—१४ लोक, १४ विद्याएँ, १४ मनु, १४ रत्न।

पन्द्रह—१५ तिथियाँ,

सोलह—१६ कलाएँ, १६ शृङ्गार, १६ संस्कार, रुपये में १६ आने।

अठारह—१८ पुराण, १८ उपपुराण, १८ विद्याएँ, १८ स्मृतियाँ, १८ नरक।

बीस—२० नख, रावण के २० हाथ, एक कोड़ी में २० चीज़ें, बीघे में २० बिस्वे।

चौबीस—२४ तत्त्व।

पच्चीस—२५ तत्त्व, विष्णु के २५ अवतार।

सत्ताईस—२७ नक्षत्र, २७ भोग।

तीस—राशि या लग्न में ३० अंश, महीने में ३० दिन।

तेंतीस—३३ देवता।

चालीस—मन में चालीस सेर।

उनचास—४९ पवन।

चौंसठ—६४ कलाएँ।

चौहत्तर—७४ चतुर्युगी।

अस्सी—८० वात विकार।

चौरासी—८४ लक्ष योनियाँ, ८४ आसन।

छयानवे—९६ यज्ञोपवीत में चौबों की संख्या।

सौ—१०० वर्ष की मनुष्यायु।

एक सौ आठ—माला में १०८ दाने।

एक सौ बीस—१२० वर्ष की परमायु।

सहस्र—शेष के १००० फण, इन्द्र की १००० आँखें।

* एक से अर्थ वाले दोहरे शब्द *

आमोद-प्रमोद	रीति-नीति।
हरा-भरा	बन्धु-बांधव।
हृष्ट-पुष्ट	चोर-डाकू।
देख-रेख	आहार-विहार।
श्रद्धा-भक्ति	सेवा-सुश्रूषा।
चहल-पहल	धन-धान्य।
दान-दक्षिणा	ऋद्धि-सिद्धि।
दौड़-धूप	घर-दुवार।
बोल-चाल	पोथी-पन्ना।
घर-द्वार	खाना-पीना।
अनुनय-विनय	नहाना-धोना।
जीव-जन्तु	चलना-फिरना।
हाट-बाज़ार	झाड़ना-पोछना।
डाँटना-फटकारना	काट-छाँट
सँवार-सिंगार	बज़ा-कृता
मार-पीट	छान-बीन
पढ़ाई-लिखाई	दाना-पानी
कपड़े-लत्ते	चमक-दमक
नाच-कूद	हरा-भरा
खेल-कूद	आहार-विहार
गाना-बजाना	बाल-बच्चे
घात-पात	चित्र-विचित्र
डील-डौल	किस्से-कहानी
खेत-खलियान	जाँच-परताल
नदी-नाला	दूध-दही

जली-भुनी	आचार-विचार
सभा-समाज	चाल-चलन
छल-बल	संगी-साथी
हाथ-पैर	लूट-मार
गली-घाट	जल-वायु

* एक ही शब्द की पुनरुक्ति *

बार-बार	सोच-सोच कर
पुनः पुनः	पानी ही पानी
दिन-दिन	राह-राह
दिनों-दिन	नीचे-नीचे
मोटा-मोटा	कौड़ी-कौड़ी
आगे-आगे	कुछ-कुछ
हाथों-हाथ	बात-बात में

* कुछ शब्दों में निरर्थक जुड़े हुए शब्द *

खोदना-खादना	आमने-सामने
जोड़ना-जाड़ना	जोड़-तोड़
धोना-धाना	नोक-झोंक
खेत-वेत	मेला-ठेला
अदल-बदल	चुप-चाप
दौड़-धूप	दाना-दनका
सवारी-अवारी	चैन चान
गोल-माल	सौदा-सट्टा

* विपरीतार्थक शब्द *

जड़-चेतन	नूतन-पुरातन
जीवन-मरण	ह्रस्व-दीर्घ

जेष्ठ-कनिष्ठ
श्रद्धा-घृणा
स्थूल-सूक्ष्म
शीत-उष्ण
आदि-अन्त
शत्रु-मित्र
विष-अमृत
आतुर-अनातुर
ऐश्वर्य-अनैश्वर्य
कुटिल-अकुटिल
नियमित-अनियमित
पंडित-मूर्ख
स्वर्ग नर्क
पाप-पुण्य
उच्च-नीच
एक-अनेक
दिन-रात्रि
सृष्टि-प्रलय
धनी-दरिद्र
निन्दा-स्तुति
चर-अचर
आदर-अनादर
धर्म-अधर्म
सम-विषम
क्रय-विक्रय
मान-अपमान

उदार-कृपण
सत्य-मिथ्या
लाभ-हानि
कोमल-कठोर
सत्-असत्
आतप-अनातप
न्याय-अन्याय
स्थावर-जंगम
आकाश-पाताल
अर्वाचीन-प्राचीन
अर्थ-अनर्थ
शुभ-अशुभ
ईश-अनीश
स्वस्थ-अस्वस्थ
उचित-अनुचित
कल्याण-अकल्याण
नियम-अनियम
ऋत-अनृत
धीर-अधीर
आगे-पीछे
दाहिने-बाँयें
भला-बुरा
यहाँ-वहाँ
सरस-नीरस
अनुकूल-प्रतिकूल
उन्मीलन-निमीलन

संयोग-वियोग	उन्मज्जन-निमज्जन
श्वास-उच्छ्वास	सज्जन-दुर्जन
जय-पराजय	सुलभ-दुर्लभ
सुगम-दुर्गम	उपकार-अपकार
उत्कृष्ट-निकृष्ट	निग्रह-अनुग्रह
स्वतन्त्र-परतन्त्र	सधवा-विधवा
आदान-प्रदान	दुर्गन्ध-सुगन्ध
अतिवृष्टि-अनावृष्टि	अनुराग-विराग
उन्नति-अवनति	गुण-दोष
उदय-अस्त	उत्थान पतन
धूप-छाँह	सुबह-शाम
रात-दिन	थोड़ा-बहुत
देन-लेन	जमा-खर्च
नीचे-ऊपर	सम्पत्ति-विपत्ति
पूर्व-पश्चिम	उत्तर-दक्षिण
आविर्भाव-तिरोभाव	साधु-असाधु
जस-अपजस	भूचर-खेचर
भलाई-बुराई	नेकी-बदी

शब्दों के लिंग

(१) जिन जीवधारियों का जोड़ा होता है वे प्रकृति ही से या तो नर होते हैं या मादा। रचना में उन्हीं के अनुकूल विशेषण सर्वनाम, तथा क्रिया का प्रयोग होता है। इनके भी अपवाद हैं, जैसे दीमक शब्द को सदा स्त्री लिङ्ग मानते हैं, परन्तु दीमकों में नर और मादा अवश्य होते हैं। इसी प्रकार कीड़ा, मकोड़ा, चींटा, बिच्छू, कौवा आदि शब्द पुल्लिङ्ग में और चिड़िया, चींटी, छिपकली, गोह, आदि शब्द स्त्रीलिंग में व्यवहृत होते हैं।

(२) निर्जीव वस्तुओं के नाम से भी लिङ्ग भेद होता है जैसे—पुंलिंग शब्द 'घर' गृह, मकान, महल, प्रासाद होते हैं और इन्हीं वस्तुओं के नाम से स्त्रीलिंग शब्द हवेली, बखरी, शाला आदि होते हैं।

(३) बहुत से ऐसे शब्द हैं जिनके लिये हिन्दी में संस्कृत से उल्टा प्रयोग होता है, जैसे शपथ, धातु, जय, मृत्यु, संतान, अंजलि, तान, यत्न, प्रलय, ऋतु, समाज, पीतल, कुशल, पुस्तक, श्वास, अग्नि, वायु, व्याधि, संधि, समाधि, आत्मा, महिमा, निधि, देह आदि संस्कृत के पुंलिंग शब्द हिन्दी में स्त्रीलिंग माने जाते हैं, और देवता आदि संस्कृत के स्त्रीलिंग शब्द हिन्दी में पुंलिंग माने जाते हैं।

४—कुछ शब्द ऐसे हैं जिनका लिंग एक स्थान में एक और दूसरे स्थान में दूसरा माना जाता है। तूती, ढोल, फ़िकर आदि शब्द इसी प्रकार के हैं। यही नहीं, एक ही शब्द का प्रयोग भिन्न-भिन्न प्रकार से करते हैं। जैसे कुंज, गेंद, झंझट, तकिया, खोज, डुलिया, सन्दूक, गड़बड़, क़लम आदि शब्द इसी प्रकार के हैं। कभी-कभी देश-भेद से शब्द में लिंग-भेद हो जाता है। ऐसे कुछ शब्दों का उल्लेख पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी ने किया है जैसे कि :—

(क) बिहार में 'हाथी' विहार करती है।
(ख) पंजाब में 'तारे' आती हैं।
(ग) काशी, इलाहाबाद में लोग 'अच्छी शिकारें' मारकर 'लम्बी सलामें' करते हैं।
(घ) बिहार में दही 'खट्टी' होती है।
(ङ) मारवाड़ में बुख़ार 'चढ़ती' है, जनेऊ उतरती है।

(च) कानपुर के मैदान में बूँद गिरता और, रामायण पढ़ा जाता ' है ।

(छ) बिहार में, ' हवा ' चलता है ।

(ज) झालरापाटन में , ' नाक कटता ' है ।

(झ) मुरादाबाद में , ' गोल माल मचती ' है ।

(ञ) आगरा में, 'गेहूँ अच्छो, होतो' है ।

नोट :—विद्वानों के मतानुसार छात्रों को दिल्ली, आगरा, मथुरा की भूमि को हिन्दी की जन्म भूमि समझना चाहिये । इन्हीं स्थानों की बोलियों का अनुकरण सब को करना चाहिये और लखनऊ प्रान्त की बोली भी टकसाली समझी जाती है । दिल्ली और लखनऊ में उर्दू में सदैव नोंक-झोंक रहा करती है, परन्तु लिंग के विषय में आगरा तथा लखनऊ की बोलियों में अन्तर नहीं है, इससे स्पष्ट विदित है कि संयुक्त प्रान्त के अवधमण्डल तक लिंग के विषय में विशेष अड़चन नहीं है । पूर्वी ज़िलों में बिहार के सम्पर्क के कारण आगरा और लखनऊ के प्रतिकूल लिंगों का व्यवहार होता है । यह अड़चन छात्रों को कवियों की रचनाएँ पढ़ने से भली-भाँति दूर हो सकती है । यह असम्भव है कि दोनों लिंगों के हज़ारों शब्दों की तालिका इस छोटी-सी पुस्तक में दी जा सके । दिग्दर्शनार्थ कुछ शब्द दिये जाते हैं ।

※प्राणी वाचक पुंल्लिग अथवा स्त्रीलिंग शब्दों की पहिचान※

(१) प्राणी वाचक शब्दों का लिंग निर्णय करना बहुत सरल है, क्योंकि प्रायः यह जोड़ेदार होते हैं । इनमें पुरुष बोधक से पुंल्लिग और स्त्री बोधक से स्त्रीलिंग समझा जाता है । जैसे :—

पुंल्लिग	—	स्त्रीलिंग	पुंल्लिग	—	स्त्रीलिंग
पिता	—	माता	लड़का	—	लड़की

(२) कई प्राणीवाचक संज्ञाएँ व्यवहार के अनुसार नित्य पुंल्लिग या स्त्रीलिंग रहा करती हैं । जैसे :—

पुंल्लिग—कौवा, उल्लू, चीता, भेड़िया, खटमल, घड़ियाल, इत्यादि ।

स्त्रीलिंग—चील, मछली, कोयल, बटेर, तितली, मक्खी, मैना, इत्यादि ।

※अप्राणिवाचक शब्दों का लिंग-निर्णय※

अप्राणिवाचक शब्दों का लिंग निर्णय तीन प्रकार से किया जाता है :—

(१) शब्दों के अर्थ से, (२) उनके रूप से, (३) उनके व्यवहार के अनुसार । जैसे ।—

(१) शब्दों के अर्थ के अनुसार—पुंल्लिग—सूर्य्य, चन्द्र, बुध, मंगल, लोहा, हीरा, मूँगा, आम, घी, गेहूँ ।

स्त्रीलिंग—गंगा, परिवा, दूज सुपारी, कचौरी, दाल, कढ़ी, खीर ।

(२) रूप के अनुसार—पुंल्लिग—कपड़ा, आना, चढ़ाव, बहाव, नहान, लगान, बड़प्पन, लोटा ।

स्त्रीलिंग—नदी, चिट्ठी, बालू, प्यास, लूट, बनावट, चिकनाहट, खटिया ।

(३) व्यवहार के अनुसार—पुंल्लिग—जहाज़, क्लास, अस्पताल, रूमाल, पानी, दही, आलू, बाँस ।

स्त्रीलिंग—रेल, बीमारी, छुरी, तोप, स्टेशन, लालटेन, दुकान, झाड़ ।

※लिंग निर्णय पर कुछ व्यापक नियम※

पुंल्लिग शब्दों की पहिचान

(१) आकारान्त संस्कृत शब्दों के अतिरिक्त समस्त आकारान्त शब्द प्रायः पुंल्लिग होते हैं । जैसे :—

लड़का, कुत्ता, घोड़ा, कुरता इत्यादि ।

(२) क्रियाओं का सामान्य रूप जो आकारान्त का अकारान्त रह गया हो। जैसे :—

क्रिया का सामान्य रूप	अकारान्त पुंल्लिग शब्द
चलना	चलन
रहना	रहन
नहाना	नहान

(३) जिन शब्दों के अंत में आव, पन, पा, त्व हो। जैसे :—पढ़ाव, लड़कपन, बुढ़ापा, मनुष्यत्व।

(४) वृक्षों के नाम, बेल, जामुन, खिन्नी, बेरी, सुपारी इत्यादि को छोड़कर, जैसेः—आम, पीपल, पलास, बरगद इत्यादि।

(५) पहाड़ों, महीनों और दिनों के नाम, जैसेः—हिमालय, चैत, बुध इत्यादि।

(६) ग्रहों के नाम (पृथ्वी को छोड़कर) जैसे—सूर्य्य, चन्द्रमा इत्यादि।

(७) वर्णमाला के अक्षर (इ, ई और ऋ को छोड़ कर)।

स्त्रीलिंग शब्दों की पहिचान

१—समस्त ईकारान्त शब्द (पानी, मोती, हाथी, घी, दही और व्यापारवाचक शब्दों के अतिरिक्त), जैसे बकरी, टोपी, अर्धांगी, स्त्री, पार्वती इत्यादि।

२—संस्कृत के कुछ आकारान्त शब्द। जैसे :—सभा, लता, भार्य्या, सुता इत्यादि।

३—स्त्रियों और नदियों के नाम। जैसे-शकुन्तला, चन्द्रकला, गंगा, यमुना, सरस्वती इत्यादि।

४—तिथियों और भाषाओं के नाम। जैसे—चौथ, पंचमी, अँग्रेज़ी, उर्दू, फ़ारसी इत्यादि।

५—जिनके अंत में आई, ता, ति, गी, श, वट, हट, ईर हो। जैसेः—लिखाई, शत्रुता, स्तुति, सादगी, गुँजाइश, मिलावट, उकसाहट, तक़दीर इत्यादि।

पुंल्लिग से स्त्रीलिंग बनाने के नियम

१—कुछ अकारान्त पुंलिंग शब्दों में अ का ई हो जाता है। जैसे—दास-दासी। देव-देवी।

२—(क) कुछ आकारान्त पुंलिंग शब्दों में स्त्रीलिंग बनाते समय आ को ई में बदल देते हैं।

जैसे :—घोड़ा-घोड़ी। चाचा-चाची।

(ख)—निरादर या प्रेमावस्था में आ के स्थान पर ई या इया लगा देते हैं जैसेः—दादा (पितामह) दादी।

बेटा-बेटी, बिटिया। काका-काकी, ककिया।

(३) कहीं-कहीं आकारान्त को अकारान्त कर देते हैं। जैसे-भैंसा-भैंस, भेड़ा-भेड़।

(४) कुछ अकारान्त शब्दों के अंत में नी जोड़ देते हैं। जैसे—मोर-मोरनी। जाट-जाटनी।

(५) कुछ अकारान्त पुंल्लिग शब्दों के अ को आ में बदल कर नी जोड़ देते हैं।

जैसे—देवर-देवरानी। सेठ-सेठानी। जेठ-जेठानी।

(६) ईकारन्त शब्दों 'में' ई को इ करके नी जोड़ देते हैं। जैसे—पापी-पापिनी। सत्यवादी-सत्यवादिनी।

(७) व्यापार वाचक शब्दों के अंतिम स्वर को इन में बदल देते हैं। जैसे—तेली तेलिन। धोबी-धोबिन।

(८) पदवी वाचक पुंल्लिग शब्दों के अंतिम स्वर का लोप करके आइन लगा देते हैं। जैसेः—ठाकुर-ठकुराइन। दुबे-दुबाइन। पंडित-पंडिताइन।

संस्कृत अकारान्त शब्दों को आकारान्त कर देते हैं। जैसेः—सुत-सुता। शिव-शिवा।

(९) जहाँ उपर्युक्त नियमों के अनुसार स्त्रीलिंग शब्द ज्ञात न हो सकें वहाँ शब्द के आदि में पुंल्लिग के लिये नर और स्त्रीलिंग के लिये मादा शब्द लगा देते हैं। जैसेः—नर भेड़िया-मादा भेड़िया। नर तीतर-मादा तीतर।

(१०) किसी-किसी देववाची शब्द के अंत में आनी लगा देते हैं। जैसेः-भव-भवानी। इन्द्र-इन्द्रानी।

(११) कुछ शब्द अपने जोड़े से पहिचाने जाते हैं। जैसे :—राजा-रानी। पिता-माता। भाई-बहिन। पुत्र-कन्या। बैल-गाय। नर-मादा। मनुष्य-स्त्री। बर-बधू।

अभ्यास

(१) शब्दों में कितने प्रकार की अर्थ शक्ति है? कुछ ऐसे शब्द लिखो जिनका अर्थ लक्षणा से जाना जाय।

(२) व्यंग्यार्थ और वाच्यार्थ में क्या भेद है? वाच्यार्थ जानने के कौन-कौन प्रधान साधन हैं?

(३) सामानार्थ या पर्य्यायवाची शब्द किसे कहते हैं? निम्न-लिखित शब्दों के पाँच-पाँच पर्य्याय शब्द लिखोः—काम, जल, कमल, सूर्य्य, वायु, सोना।

(४) निम्नांकित शब्दों का सूक्ष्म अर्थ भेद बताओ और वाक्यों में प्रयोग करो :—

लज्जा-ग्लानि, प्रेम-स्नेह, श्रद्धा-भक्ति, दया-कृपा, भ्रम-प्रमाद।

(५) निम्नलिखित शब्दों के जो भिन्न-भिन्न अर्थ तुम जानते हो लिखो—अर्क, तात, बल, पतंग, हरि, सारंग, कनक।

(६) कोई पाँच श्रुति-सम भिन्न वाच्यार्थवाची शब्द लिखो, उनके अर्थ भी बताओ, तथा वाक्यों में उनका प्रयोग करो।

(७) कई रूप वाले चार शब्द अर्थ सहित बताओ और उनका वाक्यों में प्रयोग करो।

(८) भिन्न रूप वाले तीन शब्द अर्थ सहित बतलाओ और उनका निज निर्मित वाक्यों में प्रयोग करो।

(९) शब्द बनाओ :—ज, ह, स, ब, प्र, ला, स्था, हा, अ, नी, च, र, री, ध्र, म्प, क्ति, क्ष, उ, थ, ल, श्च, न्तु, कि, ग्र, क, च, ना, की, दा, स्त, घ, न।

(१०) विशेष रूढ़ि वाले दो शब्दों को बतलाओ और यह भी बतलाओ कि उनका प्रयोग किस अवसर पर किया जाता है।

(११) विशिष्ठ आदरार्थक शब्दों में से चार शब्दों का अपने बनाये हुए वाक्यों में प्रयोग करो।

(१२) सजातीय व पुनरुक्त शब्दों में क्या भेद है? चार-चार शब्द उदाहरणार्थ लिखो।

(१३) बताओ कि निम्नलिखित शब्दों में कौन से सजातीय हैं और कौन से पुनरुक्तः—भाई-बहन, सोते-जगाते, बार-बार, क्रिया-कर्म, रात-दिन, पाप-पुण्य, सोच-सोचकर।

(१४) नीचे लिखे प्रत्येक शब्द के तीन समानार्थक शब्द लिखोः— आकाश, वृक्ष, सुन्दर, कमल, चन्द्र।

(१५) आदि, राग, मरन, सुलभ, सजीव और आदान के विपरीतार्थ।

(१६) पुंलिंग और स्त्रीलिंग शब्दों की अलग-अलग पहिचान बताओ।

(१७) कुछ ऐसे पुंलिंग और स्त्रीलिंग शब्द बताओ जो नियम-विरुद्ध आते हैं।

(१८) स्त्रीलिंग शब्द बताओ :—बालक, भाई, जेठ, सिंह, चूहा, भगवान्, पाठक, नर।

(१९) पुलिंग शब्द बताओ :—सुता, कन्या, खत्रानी, भवानी, मेहतरानी, नाइन, शुक्लाइन।

रूपान्तर और प्रयोग

रूपान्तर—उसे कहते हैं जो शब्द के अर्थ बदलने के लिये या कोई बिशेष अर्थ उत्पन्न करने के लिए शब्द के रूप में जो हेर-फेर हो जाता है।

रूपान्तर की दृष्टि से शब्दों के दो भेद हैं—(१) विकारी, (२) अविकारी।

विकारी—वे शब्द हैं, जिनके रूप में लिंग, वचन, कारक आदि के परिवर्त्तन के साथ कोई विकार उत्पन्न किया जा सकता है; जैसे—लड़का-लड़के; वह-उसने; बुरा-बुरे; आया-आये आदि।

अविकारी—वे शब्द हैं, जिनके रूप में कभी कोई परिवर्त्तन नहीं होता; :—कल, जब, तुरंत आदि।

प्रयोग—प्रयोग की दृष्टि से विकारी और अविकारी शब्द चार-चार प्रकार के होते हैं।

(१) संज्ञा, (२) सर्वनाम, (३) विशेषण, (४) क्रिया विकारी शब्द हैं, तथा (१) क्रिया विशेषण (२) सम्बन्ध-सूचक

(३) समुच्चय बोधक, (४) विस्मयादि-बोधक अविकारी शब्द हैं। अविकारी शब्दों को अव्यय भी कहते हैं।

प्रयोग के अनुसार कभी-कभी वे शब्द जो संज्ञा है क्रिया विशेषण व विशेषण हो जाते हैं और जो शब्द विशेषण हैं संज्ञा या क्रिया विशेषण हो जाते हैं। इनके कुछ उदाहरण निम्न-लिखित दिये जाते हैं :—

चन्द्र—संज्ञा—चन्द्र ने राम को मारा।

विशेषण—आज तेरा चन्द्र-मुख क्यों मलिन है।

राम—संज्ञा—राम ने बालि का बध किया।

अव्यय—राम-राम, उसे मत मारो।

किसी—सर्वनाम—किसी से कहो, तुम जानो ?

विशेषण—तुम किसी बड़े राजा के पुत्र हो ?

क्रिया विशेषण—यहाँ किसी-किसी आदमी को भोजन मिलता है।

यह—विशेषण—यह आदमी कैसा मूर्ख है।

सर्वनाम—यह, यहाँ कैसे आया ?

क्रिया विशेषण—देखो वह यह चला।

भला—विशेषण—तुम भले आदमी के पास बैठो।

संज्ञा—भलों की बात माननी चाहिये।

आया—क्रिया—वह कल स्कूल आया।

संज्ञा—वह आया (धाय) यहीं है।

हँसना—संज्ञा—खाते समय हँसना न चाहिये।

विशेषण—हँसने वाले मनुष्यों का निरादर हुआ।

क्रिया—आदमी हँसते हैं।

क्रिया विशेषण—हँस-हँस कर पेट फूल गया।

और—अव्यय—राम और रावण युद्ध में लड़े।

विशेषण—और योद्धा (लोग) बुलाओ।

❋ शब्द-शुद्धि-विचार ❋

अशुद्ध शब्द	शुद्ध शब्द
अभावता	अभाव
जुवक	युवक
असंतोश	असंतोष
तुत्त	तुच्छ
अस्मर्थ	असमर्थ
तैय्यार	तैयार
आदर्णीय	आदरणीय
दुखदाई	दुःखदायी
आधीन	अधीन
दुरगति	दुर्गति
वेदाध्यन	वेदाध्ययन
प्रमात्मा	परमात्मा
पृक्ति	प्रकृति
जाग्रिती	जागृति
व्यय	व्यय
प्रशन्नता	प्रसन्नता
गृहण	ग्रहण
शाशन	शासन
लालाइत	लालायित
विशय	विषय
स्वयं	स्वयम्
स्मर्ण	स्मरण
सौभाग्यता	सौभाग्य
प्रन्तु	परन्तु

अशुद्ध शब्द	शुद्ध शब्द
सिथिल	शिथिल
समंजस	असमंजस
संसारिक	सांसारिक
श्रोत	स्रोत
पृथिवी	पृथ्वी, पृथिवी
वृज	व्रज
इतियादि	इत्यादि
निरोत्साह	निरुत्साह
उपरोक्त	उपर्युक्त
उतपन्न	उत्पन्न
इच्छा	इच्छा
अस्वस्थ्य	अस्वस्थ
आरोग्यता	आरोग्य
आवश्यकीय	आवश्यक
ऐक्यता	ऐक्य, एकता
क्रिपा	कृपा
कृतघनी	कृतघ्नी
दुष्टताई	दुष्टता
द्वन्द	द्वन्द्व
द्वारिका	द्वारका
धीर्य, धैर्यता	धैर्य
निर्धनी	निर्धन
निःस्वार्थी	निस्स्वार्थ या निःस्वार्थ
परवर्तन	परिवर्तन
पहिला	पहला

अशुद्ध शब्द	शुद्ध शब्द
प्रचिलित	प्रचलित
बहुव्रीह	बहुव्रीहि
बिशारद्	विशारद्
मनहर	मनोहर
मनोर्थ	मनोरथ
बुद्धिवान्	बुद्धिमान्
भाष्कर	भास्कर
बेद	वेद
सद्‌ोपदेश	सदुपदेश
सन्मान	सम्मान
स्मसान	स्मशान
सामिग्री	सामग्री
सम्वत्	संवत्
स्त्रि	स्त्री
स्त्रीयों	स्त्रियों
हुवा	हुआ
कृषी	कृषि
कुच्छ	कुछ
निरस	नीरस
शाषा	शाखा
गुँड	गुण
औसर	अवसर
शिघ्र	शीघ्र
शुन्य	शून्य
बृाह्मण	ब्राह्मण

अशुद्ध शब्द	शुद्ध शब्द
बुराय्याँ	बुराइयाँ
पत्तेक	प्रत्येक
परमित्तव्यई	परमितव्ययी
साफल्यता	साफल्य, सफलता
कंगालता	कंगाली
ग़रीबता	ग़रीबी
मुर्त्ति	मूर्त्ति
फाल्गुण	फाल्गुन
दृष्य	दृश्य
द्रष्टि	दृष्टि
दुष्मन	दुश्मन
स्पताल	अस्पताल
स्तेमाल	इस्तेमाल
ह्रदय	हृदय
परिणित	परिणत
परसपर	परस्पर
पुर्ण	पूर्ण
अहोरात्रि	अहोरात्र
एकत्रित	एकत्र
बाण	वाण
बानर	वानर
बामदेव	वामदेव
बासर	वासर
दुरावस्था	दुरवस्था
घनिष्ट	घनिष्ठ

अशुद्ध शब्द	शुद्ध शब्द
बिष	विष
सर	शर
ब्रहत्	बृहत्
बर्सा	वर्षा
बमन	वमन
बस्त्र	वस्त्र
बह्नि	वह्नि
किम्बा	किंवा
संघार	संहार
भुजंगी	भुजङ्ग
उच्छ्रास	उच्छ्वास
बिघ्न	विघ्न

अकार, इकार और यकार वर्ण शब्दों में निम्न प्रकार से लिखे जाते हैं

(१) शब्द में स्वर और व्यञ्जन का प्रयोग। जैसे :—चाहिए, चाहिये। लिए, लिये। खावेगा, खायेगा, खायगा, खाएगा। गई, गयी। संख्यायें, संख्याएँ। हुवा, हुआ। गए, गये। माताओं, मातावों। जाओ, जाव, जावो। आओ, आवो। भाये, भाए। इनमें से कौन से शब्द शुद्ध हैं ?

इस विषय में विद्वानों का एक मत नहीं है क्योंकि दोनों दलों के विद्वान् मौजूद हैं इसलिए इसका निर्णय नहीं हो सकता। हम केवल यह बतला सकते हैं कि अधिकांश कौन से रूप प्रचलित हैं।

(अ) आजकल 'व' पसन्द नहीं किया जाता, जावेगा, हुवा,

मातावों, जावो आदि की प्रथा दिनों दिन कम होती जा रही है।

(ब) जहाँ एक वचन में 'य' होता है वहाँ बहुवचन में भी 'य' होता है, परन्तु स्त्रीलिंग में स्वर 'ई' कर देते हैं, जैसे 'गया' से 'गये' परन्तु स्त्रीलिंग में 'गई'। जहाँ एक बचन होता ही नहीं या एक वचन में 'य' से बच सकते हैं वहाँ स्वर लिखते हैं, जैसे 'लीजिए' चाहिए, (बहुवचन चाहिएँ)

(स) एक वचन 'लिया' के बहुवचन में 'लिये' लिखते हैं 'परन्तु अव्यय में 'लिए' लिखते हैं, जैसे "इसलिए मैंने आठ अमरूद लिये"

(द) आकारान्त शब्दों के बहुवचन में स्वर लिखते हैं ; जैसे संख्याएँ, राजाओं।

(य) इकारान्त, ईकारान्त शब्दों के बहुवचन में 'य' लिखते हैं ; जैसे ऋषियों।

(र) उकारन्त, ऊकारान्त शब्दों के बहुवचन में प्रायः स्वर लिखते हैं ; जैसे भालुओं।

(ल) आकारान्त धातुओं के विधि (आज्ञा देने) में स्वर लिखते हैं। जैसे लाओ, जाओ।

(प) जायगा, जायेगा में से यथारुचि लिखते हैं।

(फ) प्रत्येक समस्त पद के बीच में योजक का चिह्न (-) लगाना चाहिए; जैसे रात-दिन, घर-घर आदि। इनमें कुछ शब्द ऐसे हैं जो एक में मिला कर भी लिखे जाते हैं और ऐसी दशा में योजक का चिन्ह नहीं लगाया जाता ; जैसे रातदिन आदि।

(ब) एक ही शब्द यदि एक स्थान पर दो बार आये तो उसे अलग-अलग दो बार लिखना चाहिए। बहुधा लोग भूल

में एक बार लिखकर उसके पीछे " २ " का अङ्क लिख देते हैं; जैसे, मैं एक २ लड़के के अलग २ सवाल देखूँगा। इसको पढ़ने वाले इस प्रकार भी पढ़ सकते हैं—मैं एक दो लड़के के अलग दो सवाल देखूँगा। चूँकि इसमें संख्याओं से भ्रम उत्पन्न हो सकता है, इसलिए उचित यह है कि शब्द अलग-अलग लिखे जाएँ, जैसे—मैं एक-एक लड़के के अलग-अलग सवाल देखूँगा। ऐसे शब्दों को ' योजक ' से जोड़ देना चाहिए।

विभक्तियों का लगाना

विभक्ति का चिन्ह कहाँ लिखा जाये? इस बात के निर्णय करने में विद्वानों के अलग अलग मत है। कई विद्वान् लोग शब्द के साथ मिला कर विभक्ति के चिन्ह लिखते हैं, जैसे रामने, रावणको, वाणसे आदि। परन्तु प्रायः विद्वान् लोग उन्हें अलग लिखते हैं, जैसे राम ने, रावण को, वाण से आदि। सर्व नामों में विभक्ति के चिन्ह प्रायः शब्दों से मिलाकर ही लिखे जाते हैं, जैसे उसने, आपको आदि।

इस सम्बन्ध में अधिकांश विद्वानों का मत यह है कि कारक चिन्ह सर्वनाम शब्दों में तो भले ही मिला कर लिखे जाएँ किन्तु अन्य शब्दों से मिलाना ठीक नहीं है। जैसे :—राम को, उसने आदि।

अनुस्वार, चन्द्रविन्दु या अर्द्धचन्द्र

अनुस्वार लगाने का यह नियम है कि यदि उच्चारण खींच कर हो अर्थात् उसमें अधिक समय लगे या अनुस्वार को ङ, ञ, ण, न, म, के रूप में लिख सकें तब तो पूरा अनुस्वार लिखना चाहिये, जैसे—कंत, हंत, संत आदि।

चन्द्रविन्दु लगाने का यह नियम है कि यदि उच्चारण हल्का

होता हो तो उसे चन्द्रबिन्दु के रूप में लिखना चाहिये, जैसे—पाँव, जाएँ, हँसना, गेहूँ, नदियाँ आदि।

विशेष—(१) लघु अक्षरों में अनुस्वार लगने से वे गुरु हो जाते हैं, परन्तु चन्द्रबिन्दु लगने से वे लघु ही बने रहते हैं। जैसेः—दांत और दाँत में पहला शब्द 'दान्त' भी लिखा जा सकता है और उसका उच्चारण 'शांत' या 'शान्त' की तरह होता है, दूसरे शब्द का उच्चारण 'पाँत' की तरह होता है। 'संखिया' शब्द में 'सं' अक्षर में दो मात्राएँ हैं, अर्थात् वह गुरु है, 'अँखिया' शब्द में 'अँ' अक्षर में एक ही मात्रा है, अर्थात् वह लघु है। "में, मैं, हैं, हों, करें, जावें", आदि को यथार्थ में "मेँ, मैँ, हैँ, होँ, करेँ, जावेँ", आदि लिखना चाहिए, परन्तु व्यवहार में इस नियम का पालन करना बड़ा कठिन है।

(२) अनुस्वार और अनुनासिक वर्ण बहुधा एक ही प्रकार लगाये जाते हैं, जैसे—गंगा और गङ्गा, चिंता और चिन्ता आदि। इसमें भी एक नियम यह पालन किया जा सकता है कि अनुनासिक वर्ण से परे यदि य, र, ल, व, श, ष, स, ह, में से कोई वर्ण आए तो अनुस्वार का प्रयोग किया जाए, जैसे—हंस, कंस, वंश आदि और जिन अनुनासिक वर्णों के परे इनके अतिरिक्त अन्य किसी वर्ग का वर्ण आए तो उसी वर्ग के अनुनासिक वर्ण का प्रयोग किया जाए, जैसे—एङ्ग्वा, चञ्चल, पन्थ, चम्पा, गङ्गा आदि।

त्रुटि-सम्बन्धी और कुछ विशेष बातें

(१) 'सकता' तथा 'आवश्यकता' आदि में भी बहुधा विद्यार्थी-गण भूल कर जाते हैं। वे उन्हें सक्ता तथा आवश्यक्ता लिख देते हैं।

(२) 'ऋ' का प्रयोग केवल संस्कृत शब्दों में ही होना चाहिए। अन्य शब्दों में 'रि' का ही प्रयोग होना चाहिये, जैसे:—
संस्कृत शब्द—कृषि, वृष्टि, बृहत् ,दृश्य, पृथा होने चाहिएँ, और अन्य शब्द—ब्रिटिश, क्रिकिट, व्रत, उम्र, भ्रमण आदि होने चाहिएँ।

(३) दोहरे भाव वाचक शब्द नहीं बनाने चाहिएँ। जैसे:—
दुष्टता से दुष्टताई, सज्जनता से सज्जनताई, शुद्धता से शुद्धताई आदि।

(४) पूर्वकालिक क्रियाओं को कुछ लोग भूल से दो भागों में विभक्त करके लिखते हैं। जैसे—जा कर, हँस कर, खा कर आदि। इन्हें मिलाकर ही लिखना चाहिए। जैसे:—
जाकर, हँसकर, खाकर आदि।

(५) क्रियाओं में 'गया है', 'जाता था' आदि अलग-अलग लिखना चाहिये, जैसे—गया है, जाता था आदि।

(६) एक वर्गीय अक्षरों के संयोग में बहुधा विद्यार्थी भूल कर जाते हैं। किसी भी वर्ग के द्वितीय और चतुर्थ अक्षर का संयोग उसी अक्षर से नहीं होता, उसके पहले उसी वर्ग का प्रथम या तृतीय अक्षर यथाक्रम होना चाहिए। जैसे—
सिख्ख, बघ्घी, अछ्छा आदि न होकर सिक्ख, बग्घी, अच्छा आदि होने चाहिए।

अभ्यास

(१) विकारी और अविकारी शब्द किसे कहते हैं? और इनमें क्या अन्तर है?

(२) 'क्रिया तथा क्रिया विशेषण' अविकारी हैं या विकारी?

(३) सोहन, आप, कोमल, वचन, मन ही मन—ये शब्द भेद के अनुसार कैसे शब्द हैं ? इनमें से अविकारी और विकारी शब्द बतलाओ।

(४) 'बुरा' का संज्ञा, विशेषण के समान, 'हँसना' का विशेषण, क्रिया और संज्ञा के समान, तथा 'और' का अव्यय और विशेषण के समान प्रयोग करो।

(५) निम्नाङ्कित वाक्यों में अशुद्ध शब्दों के शुद्ध रूप लिखो :—

(अ) भगवान राम ने अपने बान ने रामण को मार डाला।

(ब) मेरे कथन के अनुसार इस काम को करना चाहिये।

(स) क्रिश्न ने कंस को मथुरा में मारा था।

(६) निम्नलिखित शब्दों के शुद्ध रूप लिखो :—

घनिष्ट, फाल्गुण, पैत्रिक, किम्बा, एकत्रित, कृतघ्नी, स्पताल, अस्नान, सनेह, अस्मर्थ।

(७) निम्नाङ्कित शब्दों में कौन शुद्ध हैं और कौन अशुद्ध, कारण सहित उत्तर दो :--

रातदिन, आई, खावो, सिख्ख, दुष्टताई; बृज, भूमण, परम्परा, बेद, एक २, बिद्या।

चौथा अध्याय

वाक्य-विचार तथा वाक्य-रचना

वाक्य

जिस शब्द समूह मे पूरा-पूरा अर्थ व्यक्त होता है, उसे वाक्य कहते हैं। वाक्य में पूरा अर्थ होने के लिये कोई नाम ऐसा होना चाहिये जिसके बारे में कोई बात कही जाय, और फिर वह बात होनी चाहिये जो उसके बारे में कही जाती हैं। इस प्रकार हर वाक्य में चाहे वह छोटा हो चाहे बड़ा इन दोनों बातों का होना परमावश्यक है। इस विचार से वाक्य के दो अङ्ग होते हैं—(१) उद्देश्य और (२) विधेय।

(१) उद्देश्य—जिस वस्तु के सम्बन्ध में वाक्य में विधान किया जाता है उसे सम्बोधन करने वाले शब्द को उद्देश्य कहते हैं।

(२) विधेय—उद्देश्य के सम्बन्ध में विधान करने वाले शब्दों को विधेय कहते हैं।

जैसे :—'लड़का दौड़ा'—यह पूरा वाक्य है; इसमें 'लड़का' उद्देश्य है, और 'दौड़ा' विधेय है। इसी प्रकार 'सोहन ने मारा'—में 'सोहन ने' उद्देश्य है और 'मारा' विधेय है, परन्तु इससे पूरा अर्थ नहीं निकलता। सुनने वाला तुरन्त पूछेगा कि 'सोहन ने क्या मारा ?' चूँकि 'मारना' सकर्मक क्रिया है, इसलिए लड़का, राजा, तथा किसी व्यक्ति का नाम आदि में से कोई शब्द 'कर्म' की भाँति जोड़ना पड़ेगा।

इससे यह बात भली भाँति ज्ञात हो जाती है कि प्रत्येक वाक्य में उद्देश्य और विधेय होते हैं, चाहे उस वाक्य में केवल दो ही शब्द हों ; जैसे—सोहन आया। इसमें ' सोहन ' ' आया ' क्रिया का कर्त्ता है, और उद्देश्य है; और ' आया ' मुख्य क्रिया है और इसलिये विधेय है। मुख्य क्रिया को समापिका क्रिया भी कहते हैं। कर्त्ता से सम्बन्ध रखने वाले शब्द या शब्दांश उद्देश्य या विधेय में जोड़ कर उद्देश्य या विधेय बढ़ाये जा सकते हैं। इन्हें क्रम से उद्देश्य तथा विधेय का विस्तार कहते हैं। जैसे ' आगरा कालिज में पढ़ने वाला रामपाल परसों सन्ध्या को रात की गाड़ी से लखनऊ गया। ' इस वाक्य में ' आगरा कालिज में पढ़ने वाला ' उद्देश्य ' रामपाल ' और परसों सन्ध्या को रात की गाड़ी से लखनऊ ' विधेय ' गया ' का विस्तार है।

इस प्रकार उद्देश्य के दो भाग होते हैं—(१) मुख्य उद्देश्य, और (२) उद्देश्य का विस्तार।

इसी तरह विधेय के तीन भाग होते हैं—(१) विधेय या समापिका क्रिया, (२) कर्म और (३) पूरक।

रचना के अनुसार वाक्य के भेद

रचना के अनुसार वाक्य तीन प्रकार के होते हैं। (१) साधारण (२) मिश्र (मिश्रित) (३) संयुक्त (संसृष्ट)

(१) साधारण—जिस वाक्य में एक उद्देश्य तथा एक ही मुख्य क्रिया होती है उसे साधारण वाक्य कहते हैं। जैसे—हवा चलती है।

(२) मिश्र—मिश्रित वाक्य उसे कहते हैं जिसमें एक स्वतन्त्र उपवाक्य और एक या एक से अधिक आश्रित उपवाक्य होते हैं। जैसे—मेरा विचार है कि आज मैं चला जाऊँ।

इसमें 'मेरा विचार है' साधारण वाक्य है, और 'कि आज मैं चला जाऊँ' साधारण वाक्य का आश्रित उपवाक्य है। मिश्रित वाक्य में साधारण वाक्य को मुख्य उपवाक्य कहते हैं।

(३) संयुक्त वाक्य—यदि वाक्य में दो या दो से अधिक प्रधान उपवाक्य हों (चाहे उनके आश्रित उपवाक्य हों या न हों) तो ऐसे वाक्य को संयुक्त वाक्य कहते हैं। जैसे—राम खाता रहा पर सोहन उठ कर चला गया।

संयुक्त वाक्यों का संबन्ध

इस प्रकार के वाक्यों में सम्बन्ध पाँच प्रकार से ज्ञात होता है—

१—संयोजक—ब्रह्मचर्य से बल बढ़ता है, मस्तिष्क दृढ़ होता है और तेजस्विता आती है।

२—विभाजक—ललित यहाँ आवेगा या मैं ही वहाँ चला जाऊँगा।

३—विरोध दर्शक—मैं साहसी हूँ, परन्तु स्त्रियों पर हाथ उठाने का साहस नहीं कर सकता।

४—परिणामबोधक—मुझे वहाँ जाना था अतः गाड़ी पर चढ़ कर चला गया।

५—कारण बोधक—अन्दर जाना असम्भव है क्योंकि दर्वाज़ा बन्द है।

वाक्य-विग्रह

जिस रीति से वाक्य के उद्देश्य, विधेय और उनके प्रत्येक अवयव को अर्थ और प्रयोग के अनुसार अलग अलग कर दिखाते हैं उस रीति को वाक्य-विग्रह कहते हैं।

वाक्य विच्छेद, वाक्य-विश्लेषण, वाक्य-पृथक्करण, वाक्य-विन्यास वा वाक्य-विभाजन भी वाक्य-विग्रह के दूसरे नाम हैं।

मिश्रित वाक्य वा संयुक्त वाक्यों के अन्तर्गत जो वाक्य होते हैं, जिनकी अलग-अलग समापिका क्रियाएँ होती हैं, उन्हें उपवाक्य कहते हैं। उपवाक्य दो प्रकार के होते हैं :—

स्वतन्त्र और आश्रित

(१) स्वतन्त्र-उपवाक्य उसे कहते हैं जो बिना दूसरे उपवाक्य की सहायता के अपने अर्थों को स्वतन्त्र रूप से प्रकट कर सके; जैसेः—" सोहन हँसता है " और " मोहन रोता है "। ये दोनों वाक्य एक दूसरे से सर्वथा स्वतन्त्र हैं। प्रत्येक अपने पूरे अर्थों का स्वतन्त्र रीति से ज्ञान कराता है।

(२) आश्रित-उपवाक्य उसे कहते हैं जो किसी अन्य उपवाक्य के अधीन होता है। वह बिना उसकी सहायता के स्वतन्त्र रीति से अर्थ नहीं दे सकता ; जैसेः—"सोहन जिसने मुझे मरने से बचाया था, आज संसार से चला गया।" इसमें दो उपवाक्य हैं :—

(१) सोहन आज संसार से चला गया।

(२) जिसने मुझे मरने से बचाया था।

इसमें प्रथम उपवाक्य के अर्थ दूसरे उपवाक्य को बिना साथ लिए पूरा-पूरा निकलता है। किन्तु दूसरा उपवाक्य पहले उपवाक्य के सहारे है और स्वतन्त्र रीति से अर्थ नहीं दे सकता।

आश्रित उपवाक्य तीन तरह के होते हैं :—

(१) संज्ञा उपवाक्य।

(२) विशेषण-उपवाक्य
(३) क्रिया-विशेषण-उपवाक्य ।

(१) संज्ञा उपवाक्य संज्ञा का कार्य करता है, जैसे—" उसने कहा था कि वह विद्वान् हैं । इस में ' वह विद्वान है ' संज्ञा उपवाक्य है और ' कहा था ' क्रिया का कर्म है ।

(२) विशेषण उपवाक्य विशेषण का कार्य करता है, जैसे—मैंने वह घर देखा है जिसमें कि पंडित जी रहते हैं । यहाँ ' जिसमें पंडित जी रहते हैं ' विशेषण उपवाक्य है जो प्रथम उपवाक्य में घर देखा है, की प्रशंसा करता है ।

क्रिया-विशेषण उपवाक्य—क्रिया के समय, स्थान, कारण, ढँग आदि की व्याख्या करता है; जैसे—' जब गङ्गा में बाढ़ आई तभी तीर्थ स्थान सोरों में अनेक पण्डाओं के मकान गिर गये थे ' । इसमें ' जब गङ्गा में बाढ़ आई थी ' क्रिया-विशेषण-उपवाक्य है जो गिरने के समय का निर्देश करता है ।

साधारण वाक्य का वाक्य-विग्रह

साधारण वाक्य का वाक्य-विग्रहं आगे दी हुई रीति पर कोष्टक बनाकर किया जाता है :—

वाक्य	उद्देश्य		विधेय				
				कर्म			
साधारण-वाक्य	मुख्य उद्देश्य	उद्देश्य का विस्तार	समापिका क्रिया	मुख्य कर्म	कर्म का विशेषण	विधेय पूरक	विधेय का विस्तार
(क) मोहन के छोटे भाई ने बड़े परिश्रम के बाद यह अपूर्व पारितोषिक पाया है	भाई ने	१—मोहन के २—छोटे	पाया है	पारितोषिक	१—यह २—अपूर्व	...	बड़े परिश्रम के बाद
(ख) भारतवासी बहुत दिनों से अपना दुःख सुनाते चले आते हैं।	भारतवासी	...	चले आते हैं	...	...	...	बहुत दिनों से अपना दुःख सुनाते
(ग) वह मनुष्य धनी हो गया।	मनुष्य	वह	हो गया	...	...	धनी	..
(घ) तुम निपट गँवार हो।	तुम	...	हो	...	...	निपट गँवार	...

मिश्रित व संयुक्त वाक्यों का वाक्य-विग्रह

इसी प्रकार कोष्ठक बना कर मिश्रित और संयुक्त वाक्यों का वाक्य-विग्रह किया जा सकता है। किन्तु ऐसी दशा में तीन कोष्ठक उद्देश्य के पूर्व और बनाने चाहिए—(१) उपवाक्य, (२) भेद, (३) संयोजक।

उपवाक्य के कोष्ठक में उपवाक्य अलग-अलग लिखे जाते हैं। भेद के कोष्ठक में यह लिखा जाता है कि उपवाक्य स्वतंत्र है या आश्रित, संज्ञा है, विशेषण है या क्रिया विशेषण है। संयोजक के कोष्ठक में उपवाक्यों को जोड़ने वाले शब्द—और, कि, जो, किन्तु आदि लिखे जाते हैं।

मिश्रित वाक्यों और संयुक्त वाक्यों के वाक्य-विग्रह की दूसरी संक्षिप्त रीति यह है कि उसमें उपवाक्यों को अलग-अलग करके उनका परस्पर सम्बन्ध बता दिया जाता है। इसे संक्षिप्त वाक्य-विग्रह कहते हैं।

जैसे :—(१) अपने भाई को भेज दीजिये और यह कह दीजिये कि वह कई दिन तक यहाँ ठहरें। इस वाक्य का संक्षिप्त वाक्य-विग्रह इस प्रकार होगा :—

(क) अपने भाई को भेज दीजिये (मुख्य उपवाक्य)

(ख) और यह कह दीजिये (मुख्य उपवाक्य समानाधिकरण) (क) का।

(ग) कि कई दिन यहाँ ठहरें (संज्ञा उपवाक्य) (ख) का

उपर्युक्त पूरा वाक्य संयुक्त है।

कोष्टक से वाक्य विग्रह

संयुक्त वाक्य

अपने भाई को भेज दीजिये और यह कह दीजिये कि वह कई दिन यहाँ ठहरें।

			उद्देश्य		विधेय				
संख्या	वाक्य	वाक्य भेद	कर्त्ता	कर्त्ता का विस्तार	क्रिया	कर्म या कर्म का विस्तार	पूरक	संयोजक या विभाजक	क्रिया का विस्तार
(१)	अपने भाई को भेज दीजिये	मुख्य उपवाक्य	(आप)	...	भेज दीजिये	अपने भाई को	...	...	...
(२)	और यह कह दीजिये	मुख्य उपवाक्य नं० १ का	(आप)	...	कह दीजिये	यह	...	और	...
(३)	कि वह कई दिन यहाँ ठहरें	संज्ञा उपवाक्य नं० २ का	वह	...	ठहरें		...	कि	(१) कई दिन (२) यहाँ

कोष्टक से मिश्रित और संयुक्त वाक्यों का संक्षिप्त विग्रह

उदाहरण :—मुझे आश्चर्य है कि यह लड़का जिसने साल भर खेला कैसे पास हो गया।

नंबर	उपवाक्य	भेद	संबन्ध
(क)	मुझे आश्चर्य है	प्रधान उपवाक्य	
(ख)	कि यह लड़का कैसे पास हो गया	('क' का आश्रित) संज्ञा उपवाक्य	'आश्चर्य है' का पूरक
(ग)	जिसने साल भर खेला	'ख' का आश्रित विशेषण उपवाक्य	'लड़का' शब्द का विस्तार विशेषण रूप से

क) वह नहीं बताता कि यह किसने किया"। (ख) लक्ष्मी का स्मरण चंचलता उत्पन्न करता है पर भगवान् का स्मरण शान्तिप्रद होता है।

(क) मिश्र वाक्य

	उपवाक्य	उपवाक्य भेद	भेद वाक्य सम्बन्ध	संयोजक शब्द	उद्देश्य		विधेय				
					कर्त्ता	कर्त्ता का विस्तार	क्रिया	कर्म सविस्तार	पूरक सविस्तार	विधेय का विस्तार
अ)	वह नहीं बताता	प्रधान उपवाक्य	'बताता' क्रिया का	—	वह	—	बताता	—	—	नहीं
ब)	कि यह किसने किया	(अ) का आश्रित संज्ञा उपवाक्य	कर्म	कि	किसने	—	किया	यह	--	

(ख) संयुक्त वाक्य

	उपवाक्य	उपवाक्य भेद	भेद वाक्य सम्बन्ध	संयोजक शब्द	उद्देश्य		विधेय			
					कर्ता	कर्ता या विस्तार	क्रिया	कर्म सविस्तार	पूरक सविस्तार	विधेय का विस्तार
(अ)	लक्ष्मी का स्मरण चंच-लता उत्पन्न करता है	प्रधान उपवाक्य	—	—	स्मरण	लक्ष्मी का	उत्पन्न करता है	चंचलता		—
(ब)	पर भगवान् का स्मरण शान्तिप्रद होता है	प्रधान उपवाक्य	अमाश्रय विरोध दर्शक	पर	स्मरण	भगवान का	होता है	—	शान्तिप्रद	—

विग्रह सम्बन्धी विशेष बातें

(१) वाक्य के लुप्त कर्त्ता को प्रकट कर देना चाहिए।
उदाहरण—कहाँ जाओगे ? = तुम कहाँ जाओगे ?

(२) सम्बोधन कारक की संज्ञाएँ तथा विस्मयादिबोधक अव्यय विश्लेषण करते समय छोड़ दिये जाते हैं।

(३) वाक्यगत प्रक्षिप्त वाक्यविग्रह में स्थान नहीं पाते। जैसे—कल रात भर—क्या कहूँ—मैं सोता ही रह गया। क्या कहूँ (मैं क्या कहूँ) यह प्रक्षिप्त वाक्य है।

(४) कभी-कभी दो या दो से अधिक उद्देश्यों का एक ही विधेय होता है। यथा—(१) दाल भात बंगालियों का भोजन है। (२) राजा रानी, अमीर ग़रीब, सभी इसको चाहते हैं।

(५) एक उद्देश्य के बहुधा कई विधेय भी होते हैं। ऐसी अवस्था में जितने विधेय होंगे उतने ही उपवाक्य होंगे। यथा—मोहन जाड़े और गर्मी में काम करता है और वर्षा में विश्राम करता है।

विश्लिष्ट होने पर उपवाक्यों का रूप इस प्रकार होगा—
(१) मोहन जाड़े और गर्मी में काम करता है।
(२) मोहन वर्षा में विश्राम करता है।

(६) कभी-कभी वाक्य में आश्रितवाक्य तथा समानाधिकरण उपवाक्य दोनों परस्पर मिले हुए होते हैं। उदाहरण—जब बहेलिये ने देखा कि दमयन्ती उसका कहना नहीं मानती, वह उस पर क्रुद्ध हुआ और (उसने) दमयन्ती को मारने के लिए बाण चलाया।

इस वाक्य में 'वह उस पर क्रुद्ध हुआ' और (उसने) दमयन्ती को मारने के लिए बाण चलाया, दोनों उपवाक्य परस्पर

समानाधिकरण हैं। ऐसी दशा में यदि मुख्य क्रिया-द्वारा मुख्य उपवाक्य और आश्रित उपवाक्य दोनों मिले हुए हों, तो वाक्य मिश्रवाक्य कहा जाता है; और यदि मुख्य क्रिया समानाधिकरण वाक्यों को मिलाती है, तो समूचा वाक्य संयुक्त वाक्य होगा।

(७) समानाधिकरण उपवाक्य समानाधिकरण समुच्चय बोधक द्वारा मिले हुए होते हैं। कुछ समानाधिकरण समुच्चय-बोधक—और, तथा, भी, अथवा, या, या-या, क्या-क्या, नहीं तो, न कि, परन्तु, मगर, इसलिए, अतएव, सो।

(८) मुख्य उपवाक्य आश्रित उपवाक्यों से व्यधिकरण समुच्चय बोधकों द्वारा जोड़े जाते हैं।
कुछ व्यधिकरण समुच्चयबोधक,—कि, ताकि, तोभी, जो-तो, चाहे, परन्तु, मानो, अर्थात्, यद्यपि, तथापि, इसलिए कि, क्योंकि।

(९) साधारण वाक्य का विग्रह करने के लिये 'कर्त्ता' कर्त्ता का विस्तार, क्रिया, कर्म का विस्तार, पूरक, पूरक का विस्तार, क्रिया का विस्तार, के अलग-अलग कोष्ठक बना लेने चाहिएँ और फिर वाक्य में से प्रत्येक शब्द को छाँट कर लिख देना चाहिए।

(१०) मिश्रित वाक्य तथा संयुक्त वाक्य के विग्रह को वाक्य के टुकड़े करके बताई रीत्यानुसार कर लेना चाहिए। संयुक्त को यौगिक या संसृष्ट और मिश्र को जटिल या संकीर्ण वाक्य भी कहते हैं।

वाक्यांश

किसी वाक्य के दो या दो से अधिक शब्द, जो परस्पर सम्बन्ध रखते हैं, और जिनसे पूरा भाव व्यक्त न होकर केवल

भाव का अंश जाना जाता है, वाक्यांश कहलाते हैं ; जैसे—राम और सीता विकट वन को चल दिये। इस में 'राम और सीता' तथा 'विकट वन' आदि वाक्यांश हैं।

वाक्य-संग्रह

छोटे-छोटे कई साधारण वाक्यों से एक साधारण वाक्य बनाना जिसमें संक्षेप से स्पष्टतया सब वाक्यों के विचारों का समावेश हो, और कई साधारण वाक्यों से मिश्रित वाक्य बनाना, तथा कई साधारण वाक्यों से संयुक्त वाक्य बनाना आदि वाक्य संग्रह कहलाता है।

१—कई साधारण वाक्यों से एक साधारण वाक्य बनाना

(कई) १—मिल्टन एक कवि थे। वह इंगलैंड के सब से बड़े कवि थे। वह अन्धे थे।

(एक) इंगलैंड के सब से बड़े कवि मिल्टन अन्धे थे।

(कई) २—राम को चौदह वर्ष का वनवास हुआ। वह राजा दशरथ के सब से बड़े पुत्र थे। दशरथ अयोध्या के राजा थे।

(एक) अयोध्या के राजा दशरथ के सब से बड़े पुत्र राम को चौदह वर्ष का वनवास हुआ।

उपर्युक्त कई वाक्यों का एक वाक्य बनाने में मुख्यतः दो नियमों का पालन करना पड़ा है।

(१) एक मुख्य अर्थवाला वाक्य जैसे का तैसा रख लिया।

(२) दूसरे वाक्यों को वाक्यांशों में परिणत करके संज्ञा अथवा क्रिया के विशेषण रूप में रख दिया और बार-बार आये हुए शब्दों को केवल एक बार प्रयोग कर दिया।

पहले वाक्य में 'मिल्टन' कवि 'वह' शब्द मिल्टन वाची है। 'कवि थे' दो बार आया है। मुख्य अर्थ यह है—'कवि मिल्टन अन्धे थे'। दूसरे वाक्य में मुख्य अर्थ केवल इतना है— 'राम को चौदह वर्ष का बनवास हुआ' शेष सब विशेषण शब्द हैं।

२—साधारण वाक्यों से मिश्रित वाक्य बनाना

(साधारण) १—उसे इनाम मिलेगा—हर एक व्यक्ति इस बात को जानता है।

(मिश्रित) प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि उसे इनाम मिलेगा।

(साधारण) २—यह स्थान है। मैं यहाँ दस वर्ष हुए आया था।

(मिश्रित) यह वही स्थान है जहाँ मैं दस वर्ष हुए आया था।

साधारण वाक्यों से मिश्रित वाक्य बनाने में दो बातों का ध्यान रखना चाहिये।

(१) मुख्य वाक्य को प्रधान उपवाक्य बनालो।

(२) दूसरे वाक्यों को आश्रित उपवाक्य (संज्ञा, विशेषण, क्रियाविशेषण कर दो)।

३—साधारण वाक्यों से संयुक्त वाक्य बनाना

(साधारण) गोपाल अच्छा लड़का है। उसके भाई दुष्ट और आलसी हैं।

(संयुक्त) गोपाल अच्छा लड़का है पर उसके भाई दुष्ट और आलसी हैं।

(साधारण) वह अपने माता-पिता की परवाह नहीं करता। वह अपने गुरु की भी परवाह नहीं करता।

(संयुक्त) वह न अपने माता-पिता की परवाह करता है, न गुरु की।

नियम—साधारण वाक्यों से संयुक्तवाक्य बनाना अत्यन्त सरल है। केवल कुछ समुच्चयबोधक अव्ययों के जोड़ देने से काम चल जाता है।

अभ्यास

(१) साधारण और संयुक्त वाक्यों में क्या भेद है?

(२) निम्न लिखित वाक्यों में से उद्देश्य और विधेय छाँटो।

(क) सुशीला गंगा नहाने गई है। (ख) जापान एक उन्नतिशील नगर है।

(ग) सिंह वन में दहाड़ता है। (घ) सदा सच बोलो।

(३) वाक्य-विग्रह किसे कहते हैं? इससे क्या लाभ है?

(४) वाक्यांश और उपवाक्य में क्या अन्तर है सोदाहरण समझाओ।

(५) आश्रित उपवाक्य कितने प्रकार के होते हैं?

(६) निम्न लिखित वाक्यों का वाक्य-विग्रह करो :—

(क) मेरे सम्मुख एक शान्त और सुशील तथा धर्मपरायण साधु बैठे हैं।

(ख) जो जिस नगर में रहता है वह उसी को अच्छा कहता है।

(ग) तुम्हारे भाई को क्या हो गया?

(घ) कुमार के वियोग में मेरी यही दशा थी कि मैं नहीं जानती थी कि जागती थी वा सोती, अकेली थी वा दुकेली, सुख में थी वा दुख में, उत्कराठा ने आक्रान्त किया था या व्याधि ने।

(७) किस प्रकार के पद विधेय के अन्तर्गत हो सकते हैं?

(८) एक साधारण वाक्य बनाओ :—उसने मुझे एक गेंद दी। गेंद लकड़ी की बनी हुई थी। वह लाल रंग की थी।

(९) एक मिश्रित वाक्य बनाओ :—शिवाजी एक मकान में रहते थे। मकान पूना में था। शाइस्तखाँ वहीं ठहर गया।

(१०) एक संयुक्त वाक्य बनाओ :—हर एक लड़के को तैरना सीखना चाहिये। तैरना एक बढ़िया आरोग्यप्रद व्यायाम है। तैरना अक्सर जीवन रक्षा का कारण होता है। तैरना बहुधा दूसरों की भी जीवन रक्षा करता है।

आकांक्षा, योग्यता, क्रम

तथा

अर्थ के अनुसार वाक्य के आठ भेद

प्रत्येक वाक्य में आकांक्षा योग्यता और क्रम ये तीनों बातें होती हैं। उनके न होने से वाक्य के अर्थ नहीं हो सकते।

आकांक्षा

एक वाक्य में प्रत्येक शब्द के उपरांत दूसरे किसी न किसी शब्द की योजना अवश्य होती है और अर्थ समझने के लिए एक एक शब्द सुनकर उसके आगे आने वाले शब्द के सुनने की स्वाभाविक इच्छा होती है। बस यही आकांक्षा कहलाती है, जैसे :—तुम उसके 'तुम उसके यहाँ' आदि शब्दों को सुनकर उनके आगे के शब्दों को अन्त तक सुनने की स्वाभाविक इच्छा होती है और बिना इसके अर्थ भी पूरे समझ में नहीं आ सकते; यही आकांक्षा है।

योग्यता

प्रत्येक वाक्य में यह आवश्यक है कि शब्द इस प्रकार छाँट कर रक्खे जाएँ कि वे अर्थों में भेद न पैदा करें। इसी को

वाक्य की योग्यता कहते हैं; जैसे—'तुम अग्नि पर सो सकते हो इस वाक्य में सोना शब्द अग्नि पर के साथ अयोग्य है, अथवा 'अग्नि पर' शब्द 'सो सकने' के साथ असम्बन्धित है। इनसे अर्थों में भेद पैदा होता है, अर्थात् अग्नि पर सोना असम्भव है। इसी वाक्य में यदि सोने के स्थान पर जलना कर दिया जाय और 'पर' के स्थान पर 'से' कर दिया जाय तो अर्थों का विरोध मिट जायगा और वाक्य में योग्यता उत्पन्न हो जायेगी।

क्रम

वाक्य में यथा-स्थान शब्द की योजना को क्रम कहते हैं। क्रम के परिवर्त्तन कर देने से वाक्य के अर्थ में गड़बड़ी हो जाती है, और ऐसा भी हो जाता है कि कोई अर्थ समझ में नहीं आता। जैसे :—'मोहन खाट पर सोता है' इस वाक्य में आकांक्षा योग्यता और क्रम सभी बातें उपस्थित हैं। यदि क्रम में इसको बदल दिया जाय तो 'खाट सोता है मोहन पर' यह वाक्य हो जावेगा जिसका कोई उचित अर्थ न होगा और मूल अर्थ नष्ट हो जायगा। इसलिये वाक्य में क्रम यथास्थान होना आवश्यक है। इससे वाक्य का ठीक-ठीक अर्थ समझ में आ जाता है। अस्तु, वाक्य में क्रम का ठीक होना परमावश्यक है।

अर्थ भेद के अनुसार वाक्यों के आठ भेद

१—विधानार्थक—जिससे किसी बात का विधान (होना) पाया जाय। यथा:—इन्दौर पहले एक गाँव था।

२—निषेधार्थक—जिससे किसी बात का अभाव या निषेध प्रकट हो। यथाः—मैं पानी न पीऊँगा।

३—आज्ञार्थक—जिससे आज्ञा, विनती या उपदेश सूचित हो। यथाः—तुम जाओ।

४—इच्छाबोधक—जिससे मन की इच्छा अर्थात् आशीर्वाद प्रकट हो। यथाः—ईश्वर तुम्हें चिरायु करे।

५—विस्मयादि बोधक—जिसमे यकायक मन की भावना प्रकट हो। हाय हाय! क्या हो गया है! वह पागल हो गया! यह दोनों विस्मयादि बोधक वाक्य हैं।

६—प्रश्नार्थक—जिससे प्रश्न का (सवाल करने का) बोध हो उसे प्रश्नार्थक कहते हैं। जैसे:—तुम क्या करते हो? वह कौन है? ये दोनों प्रश्नार्थक हैं।

७—सन्देह सूचक—जिससे सन्देह का बोध हो उसे सन्देह सूचक कहते हैं। जैसेः—शायद वह जायगा। हाथी आता होगा। ये दोनों सन्देह सूचक वाक्य हैं।

८—संकेतार्थक—जिससे संकेत बन्धन और शर्त पाई जाती हो। यथाः—यदि आप कहें तो मैं जाऊँ।

नोट—यह सम्भव है कि किसी एक ही भाव को भिन्न प्रकार के वाक्यों द्वारा प्रकट किया जाय। जैसेः—

(१) व्यायाम करने से शरीर स्वस्थ रहता है। (वर्णनात्मक विधि सूचक)

(२) यह बात नहीं कि व्यायाम करने से शरीर स्वस्थ न रहता हो? (वर्णनात्मक निषेध सूचक)

(३) क्या व्यायाम करने से शरीर स्वस्थ नहीं रहता? (वर्णनात्मक प्रश्न)

(४) स्वास्थ्य के लिये व्यायाम करो। (आज्ञात्मक विधि-सूचक)

(५) व्यायाम करो और आरोग्यता पाओ (आज्ञात्मक विधि-सूचक)

(६) न व्यायाम करो न आरोग्यता लहो। (आज्ञात्मक निषेध-सूचक)

(७) यदि व्यायाम करोगे तो नीरोगता पाओगे। (संकेतात्मक निषेध सूचक)

(८) यदि व्यायाम न करोगे तो आरोग्यता न पाओगे। (संकेतात्मक निषेध सूचक प्रश्न)

(९) यदि व्यायाम करोगे तो क्या आरोग्यता न पाओगे ? (संकेतात्मक निषेध सूचक)

(१०) कदाचित् व्यायाम करने से वह आरोग्यता पा जाय। (संदेहात्मक विधि सूचक)

(११) शायद व्यायाम न करने से उसको आरोग्यता मिली हो। (संदेहात्मक निषेध सूचक)

अभ्यास

१—योग्यता और क्रम किसे कहते हैं ?

२—आकांक्षा किसे कहते हैं, और वाक्य में क्रम का होना क्यों आवश्यक है ? सोदाहरण समझाओ।

३—आज्ञार्थक और विधानार्थक वाक्य किसे कहते हैं ?

४—निम्नांकित अर्थ-भेद से किस प्रकार के वाक्य हैं ?

(१) क्या वह बीमार हो गया ? (२) क्या तुम अभी कलकत्ते जाओगे ? (३) वह बुरा मनुष्य है। (४) उसके आने पर शीघ्र साथ जाओ।

वाच्य तथा वाच्यान्तर

वाच्य—वाक्य में क्रिया का लगाव प्रधान रूप से (अर्थतः) कर्ता और कर्म कारक से होता है। यदि क्रिया अकर्मक हुई

तो क्रिया का मुख्य सम्बन्ध कर्ता से रहेगा। कर्ता और कर्म कारकों को छोड़ कर अन्य कारकों से क्रिया का सम्बन्ध गौण रूप से होता है। अतः प्रत्येक वाक्य में क्रिया के रूपान्तर के अनुसार कर्ता और कर्म कारकों के रूप में भी अन्तर हुआ करता है।

जैसे—(क) (१) सोहन ने पानी पिया।
(२) सोहन से पानी पिया गया।
(ख) (१) सोहन ने बकरी को देखा।
(२) सोहन से बकरी देखी गई।

इन उदाहरणों से यह प्रकट होता है कि क्रिया द्वारा कभी कर्ता के विषय में विधान किया गया है और कभी कर्म के विषय में, पर अर्थ में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ।

वाच्य के दो भेद हैं :— (१) कर्तृवाच्य। (२) कर्म वाच्य।

(१) कर्तृवाच्य

क्रिया के जिस रूप द्वारा कर्ता के विषय में विधान किया जाता है उसे कर्तृवाच्य कहते हैं। ऐसी अवस्था में वाक्य का उद्देश्य क्रिया का कर्ता रहता है।

यथा—सोहन पानी पीता है—कर्तृवाच्य

(२) कर्मवाच्य

क्रिया के जिस रूप द्वारा कर्म के विषय में विधान किया जाता है, उसे कर्म वाच्य कहते हैं। ऐसी अवस्था में क्रिया का कर्म ही वाच्य का उद्देश्य हो जाता है।

यथा—सोहन से पानी पिया गया—कर्मवाच्य।

कर्मवाच्य केवल सकर्मक क्रिया ही में होता है। परन्तु जब वाक्य में अकर्मक क्रिया का प्रयोग कर्मवाच्य की भाँति होता

है, तब वह भाववाच्य कहलाता है; क्योंकि ऐसी अवस्था में अकर्मक क्रिया कर्म हीन होने से केवल भाव ही का अर्थ सूचित करती है ।

यथा—मुझसे उठा नहीं जाता ।

तुमसे कैसे रहा जायगा ।

नोट:—भाव वाच्य का उद्देश्य क्रिया ही में सम्मिलित समझना चाहिये।

वाच्यान्तर (वाच्य-परिवर्तन)

" धर्म कांति फैलाता है " इस वाक्य की क्रिया " फैलाना " है जिसका यथार्थ कर्ता ' धर्म ' कर्ता कारक में आया है। इस वाक्य को यदि इस भाँति कहें " कांति धर्म से फैलाई जाती है " तो यथार्थ कर्ता करण कारक में (धर्म से) हो जाता है, और यथार्थ कर्म ' धर्म ' कर्ता कारक में प्रकट होता है। भाव दोनों वाक्यों का एक-सा ही है।

इसी प्रकार ' मैं नहीं रोता हूँ ' और मुझसे नहीं रोया जाता है ' इनमें ' मैं ' कर्ता है जो प्रथम वाक्य में कर्ता कारक तथा द्वितीय वाक्य में (मुझसे) करण कारक में आया है। इस उदाहरण में कर्म नहीं है, इसलिये दूसरे वाक्य में कोई शब्द कर्ता कारक में नहीं रक्खा जा सकता। ध्यान रखना चाहिये कि ' कर्ता ' और ' कर्ता कारक ' ' कर्म ' तथा ' कर्म कारक, एक ही वस्तु नहीं है।

' धर्म कांति फैलाता है ' , कर्तृवाच्य, ' कांति धर्म से फैलाई जाती है ' कर्मवाच्य है।

' मै नहीं रोता हूँ ' कर्तृवाच्य है, ' मुझ से नहीं रोया जाता है ' भाववाच्य है।

कर्तृवाच्य क्रिया को कर्मवाच्य या भाववाच्य क्रिया में

बदलना, तथा कर्मवाच्य या भाववाच्य क्रिया को कर्तृवाच्य क्रिया में बदलना 'वाच्यान्तर अथवा वाच्यपरिवर्तन' कहलाता है।

१—यदि क्रिया का प्रधान कर्ता कर्ताकारक में हो तो उस क्रिया को कर्तृवाच्य क्रिया कहते हैं।

२—यदि सकर्मक क्रिया का प्रधान कर्ता करण कारक में हो और उसका कर्म कर्ता कारक में हो तो उस क्रिया को कर्मवाच्य क्रिया कहते हैं।

३—यदि अकर्मक क्रिया का असली कर्ता करण कारक में हो तो क्रिया को भाववाच्य क्रिया कहते हैं।

वाच्य ज्ञात करने में देखना चाहिये कि किसी क्रिया का प्रधान कर्ता किस कारक में रक्खा गया है—कर्ता कारक में या करण कारक में।

द्विकर्मक क्रिया का मुख्य कर्म कर्मवाच्य में कर्ता हो जाता है, परन्तु गौण कर्म में कोई परिवर्तन नहीं होता।

जैसे—मैंने सुन्दर लाल को एक कहानी सुनाई—कर्तृवाच्य।

(मुझसे) सुंदर लाल को कहानी सुनाई गई—कर्मवाच्य।

कहीं कहीं कर्मवाच्य सम्बन्धी तथा भाववाच्य-सम्बन्धी करण कारक चिन्ह युक्त शब्द लुप्त रहता है। जैसे—पुस्तक पढ़ाई गई।

कहीं-कहीं अकर्मक क्रिया स्वरूपतः कर्तृवाच्य की होती है, पर अर्थतः कर्मवाच्य की होती है।

जैसे—मन्दिर बन रहा है (बनाया जा रहा है)।

निषेधात्मक वाक्यों के अंत में 'है' 'हो' या 'हैं' प्रायः नहीं लगते।

जैसे—तुम सोते क्यों नहीं?

कुछ क्रियाओं का रूप तो कर्मवाच्य का नहीं होता, परन्तु अर्थ होता है, जैसे शराब बिकती है (बेची जाती है), घर पुतता है (पोता जाता है) आदि। ऐसे वाक्यों को कर्त्ता कारक में रखना पड़ेगा, जैसे कलवार शराब बेचता है; नौकर घर पोतता है, आदि। स्मरण रखना चाहिये कि 'शराब बिकती है' और 'शराब बेची जाती है' का भाव एक नहीं है।

अभ्यास

१—वाच्य किसे कहते हैं? यह कितने प्रकार का होता है। प्रत्येक के दो-दो उदाहरण दो।

२—वाच्य परिवर्तन किसे कहते हैं? सोदाहरण स्पष्ट समझाओ।

३—निम्नांकित वाक्यों का वाच्य-परिवर्तन करो, और बताओ कि तुमने किस वाच्य को किस वाच्य में परिवर्तित किया।

(१) तुमसे किसी के मरने पर कैसे हँसा जाता है?

(२) भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र द्वारा देश का बड़ा उपकार हुआ।

(३) पीतल से कलशा बनता है।

(४) मैं पत्र लिखता हूँ।

४—निम्नांकित वाक्यों के अर्थों में कोई भेद है या नहीं? यदि है तो क्या?

मैं नहीं बैठता। मुझसे बैठा नहीं जाता। पानी कौन पीता है? पानी किससे पिया जाता है? देवदत्त नहीं सोता है। देवदत्त से नहीं सोया जाता है। देवी हँसती है। देवी से हँसा नहीं जाता।

एकार्थवाची

रचना में एक ही भाव कई प्रकार के वाक्यों द्वारा प्रकट किया जा सकता है। जैसे :—

श्रीरामचन्द्र जी की स्त्री बड़ी पतिव्रता थी; श्री रामचन्द्र जी की अर्धांगिनी बड़ी पतिव्रता थी; श्रीरामचन्द्र जी की पत्नी बड़ी पतिव्रता थी ; श्रीरामचन्द्र जी की भामिनि बड़ी पतिव्रता थी— इन वाक्यों को एकार्थवाची वाक्य कह सकते हैं। इनमें स्त्री, अर्धांगिनी, पत्नी, भामिनि सब के अर्थ एक ही हैं।

सूक्ष्म तथा विस्तृत वाक्य

कुछ छोटे-छोटे साधारण वाक्यों में कही गई बातों को केवल एक मिश्र या संयुक्त वाक्य में कहा जा सकता है। तथा एक लम्बे मिश्र या संयुक्त वाक्य की बात को कई छोटे छोटे साधारण वाक्यों में कहा जा सकता है। जैसे :—

मैंने स्नान किया। मैं समय पर पाठशाला पहुँच गया। मैं स्नान करके समय पर पाठशाला पहुँच गया।

साधारण और व्यस्त वर्णन

साधारण वर्णन—किसी कहने वाले व्यक्ति को बिना किसी हेर-फेर के जैसे के तैसे रहने देना 'साधारण वर्णन कहलाता है, जैसे :—ज्वालाप्रसाद ने कहा "मैं पुस्तक पढ़ूँगा"।

व्यस्त वर्णन —किसी वक्ता के शब्दों का आवश्यक परिवर्तन करके अपनी बोली में प्रकट करना 'व्यस्त वर्णन कहलाता है, जैसे :—ज्वालाप्रसाद ने कहा कि मैं पुस्तक पढ़ूँगा।

साधारण वर्णन के आदि और अन्त में दोहरे उलटे कामा ("........") लगाते हैं, और व्यस्त वर्णन के पहले 'कि' अव्यय जोड़ देते हैं। यह अँगरेज़ी ढंग है हिन्दी में तो व्यस्त वर्णन होता ही नहीं। यदि हिन्दी में व्यस्त वर्णन लिखना ही है तो संज्ञा वाक्य को संज्ञा वाक्य न रखकर इस प्रकार का कोई रूप कर देना चाहिए। जैसे:—"ज्वालाप्रसाद ने पुस्तक पढ़ने की

प्रतिज्ञा की"। फिर उलटे काम लगाने में तो कोई कठिनता ही नहीं।

अभ्यास

१—निम्नांकित वाक्यों के दो-दो एकार्थवाची वाक्य लिखो :—
दुर्गाप्रसाद मर गया। तुम मेरे पुत्र हो? मैं हर्ष से उन्मत हूँ।

२—निम्नांकित छोटे-छोटे वाक्यों को मिलाकर एक मिश्र या संयुक्त वाक्य बनाओ। और यह भी ज्ञात करो कि यह मिश्र वाक्य है या संयुक्त वाक्य :—

(क) महात्मा बुद्ध महाराज शुद्धोधन के पुत्र थे। वह बड़े त्यागी थे। उनके एक स्त्री और एक पुत्र था। उन्होंने उनको छोड़ दिया। वह जंगल को चले गये।

३—नीचे लिखे हुए वाक्यों से बिना अर्थ भेद किये हुए एक वाक्य बनाओ :—

(क) जो विद्यार्थी मेहनती होते हैं और समय से काम करते हैं वे कभी असफल नहीं होते।

(ख) मेरा नाम दुर्गावती है। मैं ब्राह्मण की लड़की हूँ। मेरी अवस्था उन्नीस वर्ष की है।

४—नीचे लिखे हुए विस्तृत वाक्यों के छोटे-छोटे वाक्य बनाकर लिखो :—

श्रीरामचन्द्र जी दशरथ के पुत्र थे। ये बड़े धनुष-धारी थे जिन्होंने राक्षसों को मार कर पृथ्वी का बोझ हलका किया यही श्रीरामचन्द्रजी 'राम का' अवतार माने जाते हैं।

वाक्य-रचना के लिए कुछ आवश्यकीय बातें

(क) १—संगत—एक वाक्य में एक स्थान पर एक ही प्राणी

के लिए मैं और हम, उन्होंने और, उसने, आप और तुम आदि असंगत ज्ञात होते हैं, यथा—मैंने उससे कहा था कि वह आज मथुरा न जाए, किन्तु उन्होंने हमारा कहना नहीं माना। इसमें उन्होंने के स्थान पर ' उसने ' और ' हमारा ' के स्थान पर ' मेरा ' होना चाहिए।

२—आप तो नित्यप्रति उचित समय ही पर स्नान करते हो, आज तुम्हें अबेर कैसे हो गई। इसमें ' हो गई ' के स्थान पर ' है ' और तुम्हें के स्थान पर ' आपको ' होना चाहिए।

(ख) कर्त्ता कारक के चिन्ह ' ने ' का प्रयोग।

१—इन दशाओं में ' ने ' का प्रयोग नहीं होता :—

(अ) अकर्मक क्रियाओं के साथ।

(ब) कर्मवाच्य और भाववाच्य क्रियाओं के साथ।

(स) वर्त्तमानकाल, भविष्यत् काल और विधि सम्भावना के साथ।

(द) अपूर्णभूत और हेतुहेतुमद्भूत के साथ।

(य) जब मुख्य क्रियाओं के साथ अकर्मक क्रियाएँ सकना, जाना, उठना, बैठना, चुकना, पड़ना, रहना, पाना, लगना (आज्ञा सूचक) लगाकर संयुक्त क्रियाएँ बनाई जाती हैं, यथा—मैं वह समाचार पत्र पढ़ चुका, या पढ़ सका, या पढ़ गया, वह झूठी बात कह उठा, यह कह बैठा, या कहता रहा, या कह पड़ा, या कहने लगा, या कहने पाया।

(र) सकर्मक भूलना, लाना, बोलना के साथ परन्तु समझना, खेलना, बकना, जानना के साथ चिह्न ' ने ' कोई लोग लगाते हैं कोई नहीं लगाते। जब प्रधान क्रियाओं के साथ सकर्मक क्रियाएँ डालना, देना, लेना, करना, पाना, चाहना (शक्ति सूचक) लगा

कर संयुक्त क्रियाएँ बनाई जाती हैं तब नियमानुसार 'ने' का प्रयोग होता है, यथा—उसने लेख लिख दिया, मैंने पूड़ी खा ली, तुमने काम कर दिया, मैंने पूछना चाहा, उसने झूठ बात न कही आदि।

२—कर्त्ता कारक का चिन्ह 'ने' अकेली या संयुक्त क्रियाओं की परवर्ती सकर्मक क्रियाओं के सामान्य, आसन्न, पूर्ण और संदिग्धभूत के कर्तृवाच्य प्रयोग में आता है।

छात्रों को स्मरण रखना चाहिए कि 'ने' का प्रयोग वाक्य की समापिका क्रिया अर्थात् मुख्य क्रिया के हिसाब से होता है, पूर्वकालिक क्रिया के हिसाब से नहीं। यथा—"मैंने स्नान करके पाठशाला गया" अशुद्ध है, "शिवप्रकाश खूब सोकर पत्र लिखा" अशुद्ध है। इसमें 'जाना' और 'लिखना' क्रियाओं के कारण पहले में 'ने' नहीं आना चाहिए, परन्तु दूसरे में आना चाहिए।

(ग) अनेक कर्त्ता और एक क्रिया :—

१—एक ही लिंग के अनेक कर्त्ता और एक ही क्रिया होने पर क्रिया बहुवचन में होगी और उसका लिंग कर्त्ता के समान ही होगा, यथा—हाथी और ऊँट साथ-साथ दौड़ेंगे।

२—एक ही क्रिया के अनेक ऐसे कर्त्ता होने पर जिनके भिन्न-भिन्न लिंग हों क्रिया का रूप अन्तिम कर्त्ता के लिंग व वचन के अनुकूल होगा, यथाः—'अ' बालिका और बालक साथ-साथ हँसते हैं। 'ब' बालक और बालिका साथ-साथ हँसती हैं।

३—भिन्न-भिन्न लिंग के अनेक कर्त्ता तथा उनके अन्त में कोई समुदाय वाचक शब्द होने पर क्रिया बहुवचन और पुंलिंग

में होगी; यथा—भ्राता, भगिनि, मित्र, कलत्र और सुत सब संसार में स्वार्थी होते हैं।

४—एक ही भाव व्यञ्जित करने वाले अनेक कर्त्ता होने पर क्रिया एक वचन में और लिंग में अन्तिम कर्त्ता के अनुकूल होती है, यथा—यह धन, जायदाद, कोष और भूमि तुम्हारी ही दी हुई है।

५—अनेक सर्वनाम कर्त्ताओं में पहले प्रथम पुरुष, फिर मध्यम पुरुष और अन्त में उत्तम पुरुष रक्खा जाता है और क्रिया अन्तिम कर्त्ता के अनुकूल होता है, जैसे—लक्ष्मण, तुम और हम साथ साथ खेलेंगे।

(घ) एक ही कारक के अनेक शब्द :—

१—यदि वाक्य के कई शब्दों में एक ही कारक हों तो प्रायः अन्तिम शब्द के साथ विभक्ति लगाई जाती है, यथा—रामसिंह, बदनसिंह और सोमदत्त को बुलाओ आदि। परन्तु अवधारणा के लिए प्रत्येक के साथ विभक्ति लगाई जा सकती है, यथा—रामसिंह को, बदनसिंह को और सोमदत्त को बुलाओ।

२—सर्वनाम शब्दों में से हर एक में विभक्ति लगानी चाहिए, यथा—तुमको और उनको देखकर मैं भागा आदि।

(ङ) विशेषण और विशेष्य का सम्बन्ध :—

१—विशेषण अपने विशेष्य से पहले भी आता है और पीछे भी; यथा—यह बुरा मनुष्य है; यह मिठाई जो तुम खाते हो खराब है।

२—विशेष्य के सम्बन्ध से आकारान्त विशेषणों के रूपों में कोई परिवर्तन नहीं होता, यथा—सुन्दर मनुष्य, सुन्दर स्त्री।

३—आकारान्त गुणवाचक विशेषणों के रूप विशेष्य के लिंग, वचन और व्याख्या के अनुसार बदलते हैं। यथा :—

बुरा मनुष्य—एकवचन }
बुरे पुरुष—बहुवचन }
ऐसा पुरुष—पुल्लिंग }
ऐसी औरत—स्त्रीलिंग }

नोट— स्त्रीलिंग में 'आ' के स्थान में बहुधा 'ई' होती है। यथा:— काला घोड़ा, काली घोड़ी।

४—संस्कृत में विशेषण शब्दों के लिंग सदा विशेष्य के लिंग के अनुसार होते हैं, हिन्दी में भी बहुधा लोग शुद्ध संस्कृत विशेषणों का प्रयोग किया करते हैं। यथा—

चंचल लड़की अथवा चंचला लड़की।
कुटिल स्त्री अथवा कुटिला स्त्री।

(च) अर्थ—विपरीतता—

(१) वाक्यों में जिन शब्दों का जिनसे सम्बन्ध होता है, उनको उन्हीं शब्दों के पास रखना चाहिए। यदि ऐसा न किया जायगा तो उनके अर्थों में बड़ा विपर्यय हो जायगा। यथा :—" मैंने नदी पर खेलते हुए लड़कों को पानी में डूबने से बचाया ' यदि इस वाक्य को इस प्रकार ' नदी पर खेलते हुए मैंने लड़कों को पानी में डूबने से बचाया ' कर दिया जाय तो पहले ' नदी पर खेलते हुए ' लड़कों का विशेषण है। कौन लड़के? जो नदी पर खेलते थे। किन्तु इसमें यही विशेषण ' मैंने ' का हो जायगा।

२—कहीं-कहीं एक ही प्रकार के वाक्य में केवल क्रिया का रूप

पलट देने से अर्थों में बड़ी पृथकता उत्पन्न हो जाती है। यथा :—' ताँबा फुँक कर भस्म हो गया " यदि इस वाक्य में क्रिया का रूप बदल देंगे तो इसका रूप ' ताँबा फुँक कर भस्म हो गई ' यह होगा।

नोट—कभी कभी भाव की सूक्ष्मता से निर्णय होता है, अर्थात् कर्त्ता और पूरक में से जिसका भाव अधिक ज़ोरदार होता है उसके अनुसार क्रिया होती है। यथा—यदि कीकड़ का भाव अधिक ज़ोरदार है और उसे कोयला करना इष्ट नहीं है, किन्तु किसी की सुस्ती या लापरवाही से ऐसा हो गया है तो ' कीकड़ जल कर कोयला हो गई ' कहना उचित होगा और यदि 'कोयला' का भाव ज़ोरदार है अर्थात् कोयला बनाना ही इष्ट है, कोयला बन जाने की प्रतीक्षा ही की जा रही है, तो " कीकड़ जल कर कोयला हो गया " कहना उपयुक्त होगा।

अभ्यास

१—ऐसे दो उदाहरण देकर स्पष्ट समझाओ कि एक ही व्यक्ति के लिए जो शब्द असंगत हों उनसे उनके अर्थों में क्या विभिन्नता हो जाती है ?

२—जिन क्रियाओं के साधारण रूप मोटे अक्षरों में दिये गये हैं उनसे शुद्ध रूप बनाकर वाक्यों को पूरा करो :—

मेरा पिता और माता **आना**। आप और हम अभी थोड़ी देर में कबड्डी **खेलना**। आज पूर्णमासी **होना**।

३—कारक चिन्ह लगाओ :—

सुशीला मंगलवार—स्कूल गई। मेरे मित्र—मुझ से कहा कि मुझसे चला नहीं जाता, तुम मुझे अपने कन्धों—ले लो। लड़कों—मिठाई बहुत रुचती है। कालि दास—शकुन्तला एक उत्तम काव्य है। क्या कभी बालू—भी तेल निकलता है।

४—निम्नांकित विशेषणों का आवश्यकतानुसार रूप बदलो :—
यह विज्ञापन (काले) काग़ज़ पर (सुनहरा) स्याही से छपा है। आम और अमरूद (मीठा) हैं। मिर्च और मूली दोनों (कड़ुवा) हैं।

५—निम्नांकित वाक्यों में कारण सहित त्रुटियाँ बताओ :—
मैंने, लक्ष्मण ने और तमने उसे इसलिए नहीं न्यौता था। भैंस और भैंसा आता है। मैं लक्ष्मण को, राम कृष्ण को, बदन सिंह को मिठाई दूँगा। श्रीमान् ने मुझको नौकरी करने की आज्ञा देना।

पाँचवाँ अध्याय

काव्य-विभाग

(रस-अलङ्कार आदि)

काव्य—'रमणीय अर्थ प्रतिपादक शब्द' अथवा 'रसात्मक वाक्य' को काव्य कहते हैं।

काव्य-भेद

काव्य दो प्रकार का होता है। एक को 'गद्य-काव्य' और दूसरे को 'पद्य-काव्य कहते हैं।

गद्य-काव्य—जिसकी रचना व्याकरण के नियमों के अनुसार हो। गद्य-काव्य में मात्रा और वर्णों की नियमित संख्या तथा गति और यति का विचार नहीं होता। जैसे :—

विद्या के समान संसार में कोई दूसरा धन नहीं है। इसको न तो चोर चुरा सकता है, न भाई बाँट सकता है और न राजा छीन सकता है।

पद्य-काव्य—जिसमें व्याकरण के नियमों से बाध्य न होकर छन्द शास्त्र के नियमों का पालन किया जाय। जैसे :—

सादर सुन्दर बदनु निहारी। बोली मधुर बचन महतारी॥

(तुलसीदास)

काव्य के अंग

कविता और पद्य में वही भेद है, जो मनुष्य की आत्मा और शरीर में है। काव्य आत्मा है और पद्य शरीर।

काव्य पद्यमय हो सकता है, परन्तु पद्य का काव्यमय होना आवश्यक नहीं।

रस

काव्य को सुनकर मनुष्य अपने को भूल जाय, उसका चित्त उसी में रम जाय, जिसका कवि वर्णन करता है, और जिसमें एक विशेष आनन्द का अनुभव हो—उसी लोकोत्तर आनंद को रस कहते हैं।

काव्य में नव रस होते हैं—

(१) शृङ्गार (२) हास्य (३) करुण (४) रौद्र (५) वीर (६) भयानक (७) वीभत्स (८) अद्भुत (९) शान्त।

(१) शृङ्गार रस—प्रेम या रति उत्पन्न करता है, जैसे :—

(क) सहज सुभाव सुभग तन गोरे।
नाम लषन लघु देवर मोरे॥
बहुरि वदन बिधु अंचल ढाँकी।
पिय तन चितै भौंह करि बाँकी॥
खंजन मंजु तिरीछे नयननि।
निज पति कह्यो तिनहिं सिय सैननि॥

—तुलसीदास

(ख) राघव बोले देख जानकी के आनन को—
'स्वर्गंगा का कमल मिला जैसे कानन को ?'
'नील मधुप को देख वहीं उस कञ्ज-कली ने
स्वयं आगमन किया'—कहा यह जनक-लली ने।

जयशङ्कर प्रसाद।

(२) हास्य रस—विनोद और हँसी के भाव उत्पन्न होते हैं, जैसे:—

(क) कर त्रिशूल अरु डमरु बिराजा, चले बसह चढ़ि बाजहि बाजा।
देखि सिवहि सुर-तिय मुसकाईं, बर लायक दुलहिन जग नाहीं॥

(ख) घोड़ा गिरयो घर बाहर ही महराज, कछू उठवावन पाऊँ।
ऍंड़ो परयो बिन पैंड़ोइ माँझ चलै पग एक ना कैसे चलाऊँ॥
हाय कहारन कौ जुपै आयसु डोली चढ़ाय यहाँ लगि लाऊँ।
जीन धरौं कि धरौं तुलसी मुख देहु लगाम कि रास कहाऊँ॥

—अज्ञात कवि

(३) करुणा—जो शोक, रंज और दया उत्पन्न करें, जैसे :—

गया हो बच्चा जब बीमार।
खड़ी माँ करती दुःख अपार॥
कभी लपटाती उसको गले।
लगाती कर कन्धों के तले॥
चूमती मुंह को बारम्बार।
बहाती नयनों से जलधार॥
कभी देती मन को तसकीन।
कभी फिर हो जाती ग़मगीन॥

—सरल

(४) रौद्र रस—क्रोध तथा क्रोध के भाव उत्पन्न करता है, जैसे:—

जंग में अंग कठोर महामद नीर और झरना सरसे हैं।
झूलनि रंग घने मतिराम महोरुह फूल प्रभा विकसे हैं।
सुन्दर सिन्दुर मंडित कुम्भनि गैरिक शृंग उतंग लसे हैं।
भाऊ दिवान उदार अपार सजीव पहार करी बकसे हैं॥

—मतिराम

(५) वीर रस—वीरता के भाव जाग्रत कर देता है, जैसे :—

इन्द्र जिमि जंभ पर, बाड़व सुअंभ पर,
रावन सदंभ पर रघुकुल-राज है।

पौन बारिबाह पर, संभु रतिनाह पर,
ज्यों सहस्रबाहु पर राम द्विजराज है ॥
दावा द्रुम-दंड पर, चीता मृग झुंड पर,
भूषन बितुंड पर जैसे मृगराज है।
तेज तम-अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलिच्छ-बंस पर सेर सिवराज है ॥

—भूषन

६) भयानक रस—भय उत्पन्न करता है, जैसे :—

शिवहिं शम्भु गण करहिं शृंगारा।
जटा मुकुट अहि मौर सँवारा ॥
कुंडल कंकण पहिरे व्याला।
तन विभूति कटि केहरि छाला ॥

—तुलसीदास

७) बीभत्स रस—घृणा के भाव उत्पन्न करता है, जैसे :—

हाड़ माँस लाला रकत, बसा तुचा सब काय।
छिन्न-भिन्न दुर्गन्ध मय, मरे मनुस के होय ॥—हरिश्चन्द्र

८) अद्भुत रस—जिससे आश्चर्य उत्पन्न होता हो, जैसे :—

देन हुतो सो दै चुके, विप्र न जानी गाथ।
चलती बेर गुपाल जू, कछू न दीन्हो हाथ ॥—नरोत्तमदास

६) शान्त रस—जिससे मन में भक्ति और त्याग आदि के भाव जागृत हों, जैसे :—

प्रभू आसन आसीन, भरि लोचन शोभा निरखि।
मुनिवर परम प्रवीन, जोरि पाणि असतुति करत ॥

—तुलसीदास

इसके अतिरिक्त किसी-किसी के मतानुसार एक दसवाँ रस वात्सल्य भी है जिसमें पुत्रादिकों का प्रेम होता है, जैसे :—

बलि-बलि जाऊँ, मधुर सुर गावहु।
अब की बार मेरे कुँवर कन्हैया, नंदहिं नाचि देखावहु।
तारी देहु आपने करको, परम प्रीति उपजावहु॥
बाँह उँचाइ कालिह की नाईं, धौरी धेनु बुलावहु।
नाचहु नैकु, जाउँ बलि तेरी, मेरी साध पुरावहु॥
कनक-खंभ प्रतिबिंबित सिसु इक, लवनी ताहि खवावहु।
सूर स्याम, मेरे उरतें कहुँ टारे नेकु न भावहु॥
—सूरदास।

अलंकार

अलंकार शब्द का अर्थ है—आभूषण। जिस प्रकार सुन्दर वस्त्र तथा आभूषणों के धारण करने से शरीर की शोभा बढ़ जाती है उसी प्रकार अलंकारों के प्रयोग से काव्य की सुन्दरता बढ़ जाती है। वास्तव में "अलंकार वह युक्ति है जो भावों का उत्कर्ष दिखाने अथवा किसी वस्तु का रूप गुण या क्रिया का अधिक तीव्र ज्ञान कराने में सहायक हो;" इस दृष्टि से अलंकार कथन की एक युक्ति या वर्णन शैली मात्र है। कुछ ऐसे भी अलंकार हैं—जैसे श्लेष और यमक—जिनके द्वारा वाक्य में कुछ विलक्षणता या चमत्कार की योजना होती है; किन्तु उनका स्थान कविता में निम्न माना गया है।

अलंकार दो प्रकार के होते हैं—(१) शब्दालंकार (२) अर्थालंकार।

(१) शब्दालंकार—वहाँ माना जाता है जहाँ काव्य में रमणीयता लाने के निमित्त ऐसे शब्दों या वर्णों की योजना की

जाती है, जिनके प्रयोग से उसमें रोचकता या चमत्कार आ जावे।

(२) अर्थालंकार—रोचकता अथवा विलक्षणता की स्थिति शब्दों में ही रहती है, अतः ऐसे स्थलों पर यदि हम सौन्दर्योत्पादक शब्दों को हटाकर उनके पर्यायवाची शब्द रख दें तो वाक्य की रमणीयता जाती रहेगी, परन्तु अर्थालंकारों में अर्थ तथा भाव में रमणीयता होने के कारण पर्यायवाची शब्दों के रख देने से भी वाक्य की रोचकता में बाधा नहीं पहुँचती।

नोट—जिस प्रकार शब्दालंकारों से वाक्यों एव शब्दों में रुचिर रोचकता आ जाती है उसी प्रकार अर्थालंकारों से भावों या अर्थों में सुन्दरता आजाती है।

शब्दालंकार

शब्दालंकार के मुख्य तीन भेद हैं :—

(१) अनुप्रास (२) यमक (३) श्लेष

(१) अनुप्रास

व्यंजन सम अरु स्वर असम, अनुप्रास अलंकार।
छेक, वृत्ति, श्रुति, लाट अरु अंत्य पाँच विस्तार—भगवानदीन

(क) छेकानुप्रास

जहाँ एक वा अनेक अक्षरों की आवृत्ति केवल एक बार हो वहाँ छेकानुप्रास होता है। जैसे :—

'मार मार कर दुष्ट दलों को भार भूमि का हरते हैं'।

इस चरण में 'म' 'द' तथा 'भ'—इन व्यंजनों की आवृत्ति केवल एक ही बार हुई है।

(ख) वृत्यानुप्रास

जहाँ एक वा अनेक व्यंजनों की कई बार आवृत्ति हो वहाँ वृत्यानुप्रास होता है। जैसे :—

कासी परकासी पुनवासी चंद्रिका सी जाके,
वासी अविनासी अघनासी ऐसी कासी है।—हरिश्चंद्र

इसमें 'क' 'स' 'प' 'न'—इन व्यंजनों की आवृत्ति कई बार हुई हैं।

(ग) लाटानुप्रास

जहाँ शब्द और अर्थ एक ही रहें, परन्तु अन्वय करने से भेद हो जाय, वहाँ लाटानुप्रास होता है। जैसे.—

पराधीन जो जन, नहीं स्वर्ग, नरक ता हेतु।
पराधीन जो जन नहीं, स्वर्ग नरक ता हेतु॥

(घ) श्रुत्यानुप्रास

जहाँ एक स्थान 'तालु-कण्ठ' से बोले जाने वाले वर्णों की समानता पाई जावे वहाँ श्रुत्यानुप्रास होता है। जैसेः—

'सत्य सनेह शील सुखसागर'—तुलसी दास।

(ङ) अन्त्यानुप्रास

जहाँ चरण या पद के अन्त में स्वर वा व्यंजन एक से आवें वहाँ अन्त्यानुप्रास होता है। जैसे :—

गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन।
नयन अमिय दृग दोष विभंजन॥—तुलसीदास।

(२) यमक

जहाँ एक शब्द कई बार आये परन्तु अर्थ भिन्न-भिन्न रहे वहाँ यमकालंकार होता है। जैसे :—

रहिमन या निज पेट ते, बहुत कह्यो समुझाय।
जो तू अनखाये रहे, काहे कोउ अनखाय॥—रहीम।

इसमें अनखाये शब्द दो बार आया है इसमें पहले अनखाये का अर्थ बिना खाये और दूसरे अनखाय का अर्थ अप्रसन्न का है।

(३) श्लेष

जहाँ एक ही शब्द के कई अर्थ लिये जायँ वहाँ 'श्लेषालंकार होता है। जैसे :—

हितकारी ऋतुराज तुम साजत जग आराम,

यहीं ऋतुराज तथा आराम शब्द श्लिष्ट हैं।

(१) हे ऋतुराज, (अर्थात् वसन्त ऋतु) तुम बड़े उपकारी हो क्योंकि तुम सारे संसार रूपी आराम (अर्थात् उपवन) को सुसज्जित कर देते हो।

(२) हे ऋतु (समय) के अनुकूल आचरण करने वाले, धर्मात्मा राजा, तुम सारे जगत को आराम (अर्थात्) सुख देते हो।

अर्थालंकार

अर्थालंकार के अनेकों भेद हैं। परन्तु इसका मुख्य अंग उपमा है। इसी उपमालंकार में कुछ थोड़ा थोड़ा परिवर्तन करने मात्र से कई प्रकार के अलंकारों का जन्म होता है। इतना ही नहीं बल्कि जहाँ देखो वहीं लोग उपमाएँ दिया करते हैं। मूर्ख से लेकर विद्वान् तक, छोटे से लेकर बड़े तक सभी लोग उपमा का प्रयोग करते हैं। ये उपमाएँ जितनी ही स्पष्ट और मनोहर होती हैं, उतना ही काव्य में अधिक चमत्कार बढ़ जाता है।

(१) उपमा

उपमा का अर्थ तुलना करना है। जिसका वर्णन हो उसे 'उपमेय' और जिससे उपमा दें उसे 'उपमान' कहते हैं। जैसे :—श्रीकृष्णचन्द्र जी बादल के समान काले थे। यहाँ श्रीकृष्णचन्द्र जी उपमेय और बादल उपमान है।

इन दो अंगों के अतिरिक्त उपमा के दो अंग और होते हैं—धर्म और वाचक। ऊपर के उदाहरण में 'काले' धर्म और 'समान' वाचक शब्द हैं। इन चारों अंगों युक्त उपमा को पूर्णोपमा कहते हैं। यदि इन अंगों में से एक या एक से अधिक अंगों का लोप हो तो लुप्तोपमा कहते हैं। जैसे :—

'शशि सों उज्ज्वल तिय वदन,
पल्लव से मृदु पानि'। } पूर्णोपमा।

'है रघुवर-मुख चन्द्र सो' } लुप्तोपमा।

यहाँ सामान्य धर्म लुप्त है,

नोट : कहीं-कहीं उपमालंकार के तीन अंग भी लुप्त होते हैं, पर ऐसा बहुत कम होता है।

उपमा के वाची शब्द :—सौं, लौं, सरिस, समान, सदृश, तुल्य, सी, से और तूल आदि हैं।

(२) रूपक

जहाँ उपमेय और उपमान में पूर्ण समानता बताई जाय, वहाँ रूपकालंकार होता है। जैसे :—

राम-नाम मनि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
'तुलसी' भीतर-बाहिरौ, जो चाहत उजियार॥

—तुलसीदास।

यहाँ उपमेय (राम-नाम) का रूप उपमान (मनि-दीप) का सा ही बना कर पूर्ण समता और अभेद के साथ दिखलाया गया है।

(३) उत्प्रेक्षा

यदि उपमेय की उपमान में बलपूर्वक सम कल्पना की जाय तो उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। यह अलंकार जनु, मानो मनु, मनहु आदि शब्दों द्वारा प्रकट किया जाता है।

'कटि निरखत केहरि डरि मानो वन बिच रह्यो दुराय'

—सूरदास जी।

(४) प्रतीप

'प्रतीप' का अर्थ है उलटा। उपमा अलंकार में जिस तरह उपमेय को उपमान के समान कहते हैं। उसी के विपरीत इस अलंकार में उपमान को उपमेय के समान कहते अथवा उपमान से उपमेय का अनादर कराते हैं।

बिदा किये बटु विनय करि, फिरे पाय मन काम।
उतरि नहाये जमुन जल, जो शरीर सम श्याम॥
पाहन जिय जनि गर्ब करु, हौं ही कठिन अपार।
चित दुर्जन के देखिये, तोसे लाख हज़ार॥

(५) अपह्नुति

जहाँ उपमेय को झूठा कहकर उपमान को सच्चा ठहराया जाय वहाँ अपह्नुति होती है। अपह्नुति के माने हैं छिपाना।

गरल गरल नहीं, खल बचन,
विष जे दाइहिं प्रान।

इसमें हेतु भी दिया हुआ है—

नोट :—कहीं-कहीं मिस (बहाना), व्याज आदि पद रखकर भी किसी बात को अन्यथा किया जाता है। इसके सूचक पद प्रायः निषेधवाची शब्द जैसे :— न, नहीं और मिस, व्याज आदि होते हैं।

(६) भ्रांति

इस अलंकार में किसी एक वस्तु को भ्रम के कारण कुछ और ही समझने का वर्णन रहता है, जैसे :—

री सखि मोहि बचाय, या मतवारे भ्रमर सों।
डस्यो चहत मुख आय, भरम भरो बारिज गुनै॥

(७) संदेह

जहाँ सत्य असत्य का निश्चय न होने के कारण उपमेय का एक वा अनेक उपमानों के रूप में वर्णन किया जाय और यह संशय बना हो रहे कि यह अमुक वस्तु है अथवा अमुक; जैसे :—

तरनि-तनूजा-तट-तमाल तरुवर बहु छाये।

× × × ×

किधौं मुकुर मै लखत उझकि सब निजनिज सोभा।

× × × ×

यहाँ यह संदेह है कि यह वस्तु (तरुवरों का झुकना) वास्तव में क्या हैं जल का स्पर्श है या जल-दर्पण में मुख देखना है।

संदेह के वाची पद, धौं, किधौं, यातो, अथवा, की, कै आदि होते हैं।

(८) दृष्टान्त

जहाँ उपमेय और उपमान के रूप में दो भिन्न-भिन्न वाक्य

ऐसे रहते हैं जिनके धर्मों में विभिन्नता होती है, किंतु दोनों में एक प्रकार की समानता या एकता-सी दिखलायी जाती है।

नोट :—जहाँ किसी विशेष बात के वाक्य की सहायता ज्यौं, त्यौं, जैसे आदि पदों के द्वारा किसी साधारण बात के वाक्य से दिखलायी जाती है वहाँ उदाहरण अलंकार होता है। दृष्टान्त में जैसे, ज्यौं आदि पद नहीं रहते फिर भी दो वाक्यों में एकता प्रकट की जाती है।

जैसे :—कुलहि प्रकासै एक सुत, नहिं अनेक सुत निंद।
चंद एक सब तम हरै, नहिं उड़गन के वृंद।

यहाँ दो पृथक् वाक्यों में जिनके धर्म (भाव) भी पृथक् ही हैं एकता एवं समता दिखायी गयी है, एक में दूसरे का प्रतिबिंब-सा दीखता है।

(९) अर्थान्तरन्यास

जहाँ कोई सामान्य अर्थात् व्यापक सिद्धान्त या कथन किसी विशेष अर्थात् सीमित सिद्धान्त या कथन से पुष्ट किया जाय अथवा कोई विशेष सिद्धान्त किसी सामान्य सिद्धान्त से पुष्ट किया जाय, जैसे :—

बड़े न हूजे गुनन बिनु, बिरद बड़ाई पाय।
कहत धतूरे सों कनक, गहनो गढ़ो न जाय॥

—बिहारीलाल।

यहाँ प्रथम वाक्य में एक साधारण बात कही गयी है और उसका समर्थन द्वितीय वाक्य की विशेष बात से किया गया है।

(१०) अत्युक्ति

जहाँ काव्य में रोचकता लाने के निमित किसी की शूरता,

सुन्दरता अथवा उदारता आदि का बहुत अधिक बढ़ाकर मिथ्या वर्णन किया जाय वहाँ अत्युक्ति अलंकार होता है, जैसे :—

'श्री विक्रम को दान लहि, याचक भये कुबेर'।

यहाँ विक्रमादित्य के दान के गुण का कथन अतिशय रूप में किया गया है।

(११) अतिशयोक्ति

जहाँ चित्त की तीव्र भावनाओं का व्यक्त करने के लिए अथवा किसी की अत्यन्त अधिक सराहना या प्रशंसा करने के लिए कोई अद्भुत बात कही जाय, जो लोक सीमा के बाहर हो और बहुत बढ़ाकर कही गई हो, वहाँ अतिशयोक्ति अलंकार होता है। जैसे :—

' हिमालय की चोटियाँ आकाश को भी चूमती हैं '

(१२) विरोधाभास

जहाँ विरोधी पदार्थों का वर्णन किया जाय वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है, जैसे :—

'तृण ते कुलिश कुलिश तृण करई।

अभ्यास

१—काव्य किसे कहते हैं ? पद्य-काव्य क्या है ?

२—रस किसे कहते हैं ? नवरसों के नाम लिखो। शृङ्गार और रौद्र रस के दो उदाहरण दो।

३—अलंकार किसे कहते हैं ? वह कितने प्रकार के हैं ? इन से क्या लाभ होता है ?

४—दृष्टान्त, यमक, श्लेष, अत्युक्ति, भ्रम और अर्थान्तर-न्यास अलंकार किसे कहते हैं ? प्रत्येक को सोदाहरण समझाओ।

५—उपमा, उत्प्रेक्षा और अपह्नुति अलंकारों के उदाहरण दो।

६—दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास, रूपक और उपमा में क्या अन्तर है, स्पष्ट लिखो।

७—अनुप्रास अलंकार किसे कहते हैं? इसके कितने भेद हैं।

रचना के लिये विशेष बातें

(१) काव्य के गुण

रस की वृद्धि करने वाले धर्म को 'गुण' कहते हैं। गुण के तीन भेद हैं:—

(१) माधुर्य्य (२) ओज (३) प्रसाद

(१) माधुर्य्य—जिस काव्य को श्रवण कर चित्त द्रवीभूत हो जाय वहाँ 'माधुर्य्य गुण' होता है।

(२) ओज—जिस काव्य को सुनकर चित्त में उत्तेजना, वीरता और साहस बढ़े वहाँ 'ओजगुण' होता है।

(३) प्रसाद—जिस काव्य को सुनते ही उसके अर्थ का ज्ञान हो जाय वहाँ 'प्रसाद गुण' होता है।

(२) लेख-चिह्न

पद, वाक्यांश या वाक्य बोलते समय बीच-बीच में कहीं कहीं ठहरना पड़ता है तो उसे विराम कहते हैं। उसकी जगह पर जो चिह्न लगता है उसे विराम-चिह्न कहते हैं। ये चिह्न वाक्यों में अवश्य लगने चाहिएँ, क्योंकि इनसे पद या वाक्यों के अर्थ समझने में सुविधा होती है। हिन्दी में प्रायः आजकल जिन चिह्नों का प्रयोग करते हैं वह निम्नलिखित हैं:—

(१) एक या अल्प विराम——चिन्ह (,)

(२) अर्द्ध विराम— ,, (;)

(३) प्रतिकूल विराम— चिह्न (" ")
(४) निर्देषक— " (—)
(५) संयोजक— " (-)
(६) आदेशक— " (:—)
(७) विस्मयादिबोधक— " (!)
(८) प्रश्नवाचक— " (?)
(९) पूर्ण विराम " (।) या (•)

नोट—पूर्ण विराम का चिन्ह एक खड़ी पाई (।) और अंगरेज़ी में (•) ऐसा चिन्ह होता है।

(१) अल्प विराम—इसका प्रयोग तब होता है जब एक ही तरह के कई शब्दों या वाक्यांशों का प्रयोग एक ही अवस्था में होता है। परन्तु अन्त के दो शब्दों के बीच में " और " शब्द का प्रयोग होता है। जैसे :—

(क) जयपुर, आगरा, कलकत्ता, बनारस और दिल्ली ये सब भारतवर्ष में हैं।

(ख) इन्होंने शत्रुओं को शीघ्र ही परास्त किया, जो कि संग्राम को तैयार न थे।

(२) अर्द्ध विराम चिन्ह—अल्प विराम के दूने ठहराव को (जितने समय में एक और दो के उच्चारण हों) बतलाता है, इसका प्रयोग प्रायः बड़े-बड़े स्वतंत्र वाक्यांशों को अलग करने के लिए होता है। परन्तु इसका प्रयोग हिन्दी में अधिक न होकर इसकी जगह अल्प विराम का ही होता है। जैसे :—

जब राम वन से लौट कर आये; तब वे बड़े सुन्दर और गठीले प्रतीत होते थे।

(३) प्रतिकूल विराम चिन्ह—इनका प्रयोग किसी की कही हुई बात को उन्हीं शब्दों में कहा जाय, तो उनके आदि और अन्त में होता है। जैसे :—
किसी कवि ने कहा कि "विद्या विहीनः पशुः।"

(४)—निर्देशक चिन्ह—इसका प्रयोग वाक्य की अपूर्णता को प्रकाश करता है। जैसे :—
प्रत्येक वस्तु का नाश हो गया—धन, स्वास्थ्य, मित्र, सन्मानादि।

(५) संयोजक चिन्ह—इसका प्रयोग समस्यान्त पदों के जोड़ने में और प्रत्ययों के आदि में किया जाता है। जैसे :—
नील-पीत-जल-जात-शरीरा—नील पीत जलजात शरीरा।

(६) आदेशक चिन्ह—इसका प्रयोग किसी विषय को समझाने के लिए उदाहरण देने में अथवा व्याख्या करने में होता है। परन्तु इसकी जगह 'संयोजक' चिन्ह भी कहीं-कहीं लगा देते हैं। जैसे :—

वाक्य की परिभाषा लिखो :—

(७) विस्मयादि बोधक चिन्ह—इसका प्रयोग हर्ष, आश्चर्य आदि बोधक वाक्य या उस पद के अन्त में अथवा कहीं-कहीं सम्बोधन कारक की संज्ञा के अंत में होता है। जैसे :—
(क) शोक की बात है वह मर गया !
(ख) हाय, हाय ! वह मर गया।
(ग) हे राम !

(८) प्रश्न वाचक चिन्ह—इस चिन्ह का प्रयोग प्रश्नवाचक वाक्य के अन्त में होता है। जैसे :—

१—तुम कहाँ से आते हो ?

२—तुमने आज क्या खाया है ?

(६) पूर्ण विराम चिन्ह—इसका प्रयोग प्रत्येक वाक्य के अन्त में होता है, परन्तु वाक्यांश के अन्त में इसका प्रयोग नहीं होता। जैसे :—

(क) मैं वहाँ गया था और श्याम नहीं आया था।

(ख) समय पर सोना उत्तम है।

नोट :—इस चिन्ह की जगह अँग्रेज़ी में फुलस्टॉप (.) चिन्ह लगाया जाता है हिन्दी में कहीं-कहीं दो लकीर (||) भी देखने में आती हैं। केवल इसका प्रयोग दोहा और सोरठा के प्रथम और तृतीय पाद में एक पाई (।) का और दूसरे और चौथे पाद के अन्त में दो पाई (||) का प्रयोग करते हैं। शेष चिन्ह व्यवहार से जानने चाहिएँ।

(३) पिंगल

१—जिस रचना में वर्णों के मान, लय और यति का विचार किया जाता है उसे पद्य कहते हैं। पद्यात्मक रचना का दूसरा नाम छन्द है क्योंकि पद्य किसी न किसी छन्द में होता है। छन्द को पद्य का साँचा समझना चाहिए।

२—पिंगल-शास्त्र—कविता में संगीत-सौंदर्य उत्पन्न करने के निमित्त जिस शास्त्र में पद्य-रचना के नियमों तथा लक्षणों का उल्लेख हो तथा पद्य के अनेक भेदों का वर्णन हो, उसे छन्द-शास्त्र कहते हैं। इस शास्त्र के आदि-आचार्य महर्षि पिंगल माने जाते हैं। छन्द-शास्त्र इन्हीं आचार्य के नाम से विख्यात है।

३—लघु तथा गुरु (स्वर)—छन्द के विचार से वर्णों अर्थात् अक्षरों के दो भेद होते हैं—

(क) लघु—जिस वर्ण के उच्चारण में सब से कम समय लगता है उसे लघु-वर्ण कहते हैं। लघु-वर्ण का मान एक मात्रा है और उसका चिह्न एक खड़ी पाई '।' है। अ, इ, उ, ऋ और ऌ ये ह्रस्व (लघु) माने जाते हैं।

(ख) गुरु—जिस वर्ण के उच्चारण में लघु-वर्ण से दूना समय लगता है उसे गुरु-वर्ण कहते हैं। इसका मान दो मात्राएँ, और चिह्न 'ऽ' है। आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, ये दीर्घ स्वर गुरु माने जाते हैं।

(४) लघु तथा गुरु (व्यंजन तथा स्वर) (क) व्यंजनों तथा संयुक्त वर्णों का लघु अथवा गुरु होना उनके साथ मिले हुए स्वरों पर निर्भर है। जैसे, क, कि, कु, क्ति ये ह्रस्व-स्वर से युक्त व्यञ्जन वा संयुक्ताक्षर लघु हैं और का, की, कू, को, क्ते ये दीर्घ स्वर से युक्त व्यंजन या संयुक्ताक्षर गुरु हैं।

(ख) संयुक्ताक्षर के पूर्व का लघु-वर्ण गुरु माना जाता है, जैसे:—

आकृष्ट = ऽऽ।
संदर्भ = ऽऽ।

(ग) अनुस्वार और विसर्ग युक्त वर्ण गुरु होते हैं। जैसे, कं, कः, अं, अः।

(घ) हलन्त के पूर्व का वर्ण दीर्घ माना जाना है और हलन्त वर्ण की मात्रा नहीं गिनी जाती, जैसे:—

पृथक् = । ऽ

(ङ) चन्द्रबिन्दु वाले लघु-वर्ण लघु ही रहते हैं, जैसे—अँदेसा = । ऽ ऽ; कँटिया = ।।ऽ

अपवाद—वर्णों का लघु अथवा गुरु होना बहुत कुछ उनके उच्चारण पर निर्भर है। अतः निम्नांकित अपवादों पर छात्रों का ध्यान आकर्षित किया जाता है।

(क) संयुक्ताक्षर के पूर्व का लघु वर्ण जब खींचकर पढ़ा जाता है, तब वह गुरु होता है। किन्तु यदि वह हलके से पढ़ा जाय तो लघु ही माना जाता है, जैसे :—

उठ्यो =।ऽ ; पक्का =।ऽ

(ख) कभी-कभी उच्चारण की सुगमता के निमित्त गुरु वर्ण लघु और लघु वर्ण को गुरु पढ़ा जाता है, जैसे —

देखेउ, लोभाई, परेखेहु.

'देखेउ' शब्द में 'खे' को गुरु होते हुए भी लघु ही पढ़ना पड़ेगा। इसी प्रकार 'लोभाई' शब्द में 'लो' को गुरु होते हुए भी लघु ही पढ़ना पड़ेगा। ऐसे ही 'परेखेहु' शब्द में 'खे' को ह्रस्व ही पढ़ेंगे।

(ग) हिन्दी के वर्णिक वृत्तों में संस्कृत छन्दों के नियमानुसार चरण का अन्तिम अक्षर यदि लघु हो तो भी गुरु माना जाता है।

(५) विराम—बहुत से लम्बे छन्दों के एक ही चरण में पढ़ते समय एक ही जगह या कई जगह जिह्वा को रुकावट या अवरोध-होता है। इस रुकने को विराम या विश्राम या यति कहते हैं, जैसे :—

भे प्रकट कृपाला, दीन दयाला, कौशिल्या हितकारी।

उपर्युक्त पद कृपाला और दयाला पर टूटता है ; अर्थात् इस पद में आरंभ से दस और आठ मात्राओं पर यति है।

(६) लय या गति—प्रत्येक छन्द में एक प्रकार का प्रवाह होता है। इसे 'गति' या 'लय' भी कहते हैं। इससे हीन होने पर रचना मधुर नहीं होती और छन्द दूषित हो जाता है। जैसे :—

'सुनु जननी, बड़ भागी सोइ सुत, मातु बचन पितु अनुरागी जो'

यहाँ चौपाई के लक्षण के अनुसार प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ होने पर भी 'लय' का अभाव है, पाठ धारावाहिक गति से नहीं चलता। अतः यह पाठ दूषित है। इसी पंक्ति को यदि यों रखदें—

सुनु जननी सोइ सुत बड़ भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी ॥

तो पाठ लय-संयुक्त होने के कारण मधुर जान पड़ने लगता है। लय का ज्ञान अभ्यास पर ही निर्भर है: इसके लिये कोई विशेष नियम नहीं है।

छन्द—जो कविता मात्रा, वर्ण रचना, विराम, गति और चरणान्त सम्बन्धी नियमों के अनुसार होती है उसे छन्द कहते हैं।

गद्य—जिस रचना में कोई छन्द नहीं होता उसे गद्य कहते हैं।

चम्पू—जिस रचना में गद्य और पद्य दोनों होती हैं उसे चम्पू कहते हैं।

चरण या पाद—छन्द के प्रत्येक भाग को चरण या पाद कहते हैं।

नोट:—प्रत्येक छन्द में चार चरण होते हैं; द्वितीय और चतुर्थ चरण को समचरण कहते हैं और प्रथम और तृतीय को विषम चरण कहते हैं।

छन्दों के दो भेद

(१) जिस छन्द के चारों चरणों में मात्राओं की संख्या एक समान

होती है और वर्णों का क्रम समान नहीं होता उसे मात्रिक छन्द कहते हैं।

(२) जिस छन्द के चारों चरणों में वर्णों की संख्या और क्रम समान होते हैं उसे वर्णिक छन्द कहते हैं।

मात्रिक छन्द के तीन उपभेद

(१) सम—जहाँ चारों चरणों में मात्राओं की संख्या समान हो, जैसे :—चौपाई।

(२) अर्द्धसम—जहाँ पहले और तीसरे तथा दूसरे और चौथे चरणों में मात्राओं की संख्या समान हो, जैसे :—दोहा, सोरठा।

(३) विषम—जहाँ चारों चरणों में मात्राओं की संख्या बराबर न हो अथवा जिस छन्द में चार से अधिक चरण हों, जैसे—कुण्डलिया।

सम मात्रिक छंद

(१) चौपाई—इस छन्द के प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ होती हैं चरण के अन्त में दो गुरु रखने से इसकी गति अच्छी हो जाती है; जैसे :—

फरकत अधर कोप मन माहीं।
सपदि चले कमलापति पाहीं॥
देहौं स्राप कि मरिहौं जाई।
जगत मोरि उपहास कराई॥

(२) रोला—इस छन्द के प्रत्येक चरण में ग्यारह और तेरह मात्राओं पर विराम देकर कुल २४ मात्राएँ होती हैं। चरण के अन्त के दो अक्षर गुरु होने चाहिए; किन्तु यह नियम

सर्वत्र नहीं पाया जाता। एक कवि ने इसी छंद में इसको परिभाषा यों लिखी है।

'जाके प्रति पद माहिं, कला चौबिस गनि राखैं।
रोला अथवा काव्य, छन्द ताकहँ कवि भाखैं॥
नियम न लघु-गुरु केर, रखैं अंतै गुरु दोई।
ग्यारह पर विश्राम, किये अति उत्तम होई॥'

जैसे:—इत सुरसरि की धाक, धमकि त्रिभुवन भय-पागे।
सकल सुरासुर बिकल, बिलोकन आतुर लागे॥
दहलि दसौं दिक-पाल, विकल-चित इत-उत धावत।
दिग्गज-दिग दंतनि दबोचि दृग भभरि भ्रमावत॥

(३) गीतिका—प्रत्येक चरण में १४ और १२ मात्राओं के विश्राम से इस छंद में २६ मात्राएँ होती हैं, अन्त में लघु-गुरु होते हैं, जैसे—

दीन दुखियों पर दया का भाव जो रखते सदा;
हर तरह से जो मिटाते भाइयों की आपदा।
सर कटा देते न हटते ध्येय से डरते नहीं;
दर हक़ीक़त वह कभी संसार में मरते नहीं।

(४) हरि गीतिका—प्रत्येक चरण में १६ और १२ मात्राओं के विश्राम से इस छन्द में २८ मात्राएँ होती हैं, जैसे—

शुद्धातिशुद्ध विशुद्ध भगवन् शुद्ध ज्ञान भरे पुरे,
अन्याय शत्रु सदैव पोषक साधुओं के हे हरे।
निज छत्र छाया में दुखी हम आर्यगण को लीजिये,
कल्याणकारी आत्मबल की भीख माँगे दीजिये।

मात्रिक अर्द्धसम छंद

(१) बरवै—इस छन्द में विषम चरणों में १२ मात्राएँ होती हैं।

सम चरणों में ७ मात्राएँ होती हैं। अन्त में लघु-गुरु-लघु (।ऽ।) होना आवश्यक है, जैसे—

कमठ पीठि धनु सजनी, कठिन अँदेश।
तमकि ताकि ये तुरि हैं, कह्यो महेश॥

(२) दोहा—१, ३ चरण में १३ और २, ४ चरण में ११ मात्राएँ होती है। जैसे :—

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाँई परे, श्याम हरित द्युति होय॥

(३) सोरठा—पहले और तीसरे चरण में ११ तथा दूसरे और चौथे चरण में १३ मात्राएँ होती हैं। जैसे :—

'संमन' मन की भूल, सेवा करी करील की।
उनते चाहत फूल, जिन डारन पत्ता नहीं॥

मात्रिक विषम छन्द

(१) कुण्डलिया—इस छन्द के आदि में एक दोहा, उसके पश्चात् एक रोला छंद जोड़ कर ६ पद का माना जाता है। दोहे का अंतिम, रोला का प्रथम चरणार्द्ध होता है, और रोले के अंतिम चरण के कुछ अंतिम अक्षर व शब्द वही होने चाहिए जो दोहे के आदि में हों। जैसे :—

नैया मोरी तनिक सी, बोझी पाथर भार।
चहुँ दिशि अति भौंरैं उठत, केवट है मतवार॥
केवट है मतवार नाव मझधारहिं आनी।
आँधी उठत प्रचण्ड तेहु पर बरसत पानी॥
कह गिरधर कविराय नाथ हो तुमहिं खेवैया।
उठै दया को डाँड़ घाट पर आवै नैया॥

वर्णिक छन्द

वर्णिक-वृत्तों के भी ये ही भेद होते हैं। प्रायः वर्णिक समवृत्तों का ही प्रचार अधिक देखा जाता है।

वर्णिक-वृत्तों में गण-विधान अति आवश्यक होता है। अस्तु गण-विधान का जानना भी उचित है।

तीन वर्णों के समूह को गण कहते हैं, इन तीनों वर्णों में लघु और दीर्घ के क्रम-विधान से आठ गण हो जाते हैं।

गुरु वर्ण के लिये "ऽ" और लघु के लिये "।" ऐसा चिन्ह लिखा जाता है।

	गण	चिन्ह	उदाहरण
शुभ	मगण	ऽऽऽ	राजश्री
	नगण	।।।	कमल
	भगण	ऽ।।	सावन
	यगण	।ऽऽ	कपाली
अशुभ	जगण	।ऽ।	महान
	रगण	ऽ।ऽ	कामना
	सगण	।।ऽ	धरिणी
	नगण	ऽऽ।	देवेश

वर्णिक समवृत्तों में से २६ वर्ण वाले वृत्त तो साधारण और इससे अधिक वर्णों के वृत्त दंडक कहे जाते हैं।

(१) सवैया—२२ से २६ अक्षरों तक का होता है, इसके अनेक भेद हैं। उनमें से मुख्य भेद यहाँ दिये जाते हैं। सवैयों में बहुधा गुरु लघु का क्रम ठीक न मिलने से भ्रम हो जाता है। स्मरण रखना चाहिये कि वर्णों का गुरुत्व लघुत्व केवल उच्चारण पर निर्भर है, लिखावट पर नहीं।

(क) मदिरा—७ भगण+१ गुरु (२२ अक्षर)

जैसेः—

क्षत्रिन के प्रण युद्ध जुवा जुरि साजि चढ़े गज बाजि नहीं।
वैश्य को बानिज और कृषीपन शूद्र के सेवन साज यहीं॥
विप्रन के प्रण है जु यही सुख सम्पति सूं कछू काज नहीं।
कै पढ़िबो कै तपोधन है कन माँगत बिप्रन लाज नहीं॥

(ख) मत्तगयंद—७ भगण और २ गुरु (२३ अक्षर)

जैसेः—

पाँयन नूपुर मंजु बजैं कटि किंकिनि की धुनि की मधुराई।
साँवरे अंग लसै पट पीत हिये हुलसै बनमाल सुहाई॥
माथे किरीट बड़े दृग चंचल मंद हँसी मुखचन्द जुन्हाई।
जै जग मन्दिर दीपक सुन्दर श्री ब्रज दूलह देव सुहाई॥

(ग) दुर्मिल—८ सगण (२४ अक्षर)

जैसेः—

सुनि कै धुनि चातक मोरनि की,
चहुँ ओरनि कोकिल कूकनि सों।
अनुराग भरे हरि बागन में,
सखि रागत राग अजूकनि सों॥
कवि 'देव' घटा उनई जु नई,
बन भूमि भई दल दूकनि सों।
रँगराती हरी हहराती लता,
झुकि जाती समीर के झूकनि सों॥

इस पद्य के अन्तिम चरण में 'सों' यद्यपि देखने में गुरु है परन्तु पढ़ने में लघु है अतएव लघु ही समझना चाहिए। हिन्दी-छन्द शास्त्र में वर्णों का लघु, होना उच्चारण पर ही निर्भर है।

वर्णिक दंडक

(१) मनहरण कवित्त—इस वर्णिक वृत्त के प्रत्येक चरण में ३१ वर्ण होते हैं। १६ और १५ पर यति रख कर अंत में कम से कम एक गुरु अवश्य रखते हैं। जैसेः—

सुनिये विटप प्रभु ! पुहुप तिहारे हम,
राखिहौ हमैं तौ सोभा रावरी बढ़ाइ हैं।
तजि हौ हरषि कै तौ बिलग न मानैं कछू,
जहाँ तहाँ जे हैं तहाँ दूनौ जस गाइ हैं॥
सुरन चढ़ैंगे, नर-सिरन मढ़ैंगे फेरि,
सुकवि "अनीस" हाथ-हाथन बिकाइ हैं।
देस मैं रहैंगे, परदेस मैं रहैंगे काहू,
भेस मैं रहैंगे, तऊ रावरे कहाइ हैं॥

४—मुहाविरे और कहावतें

जहाँ तक देखा गया है प्रत्येक भाषा में मुहाविरे और कहावतें पाई जाती हैं। इनकी रचना विलक्षण होती है और इनके रचना में शब्दार्थ न लेकर, लाक्षणिक अथवा कोई और ही अर्थ लिए जाते हैं। इनके एक निश्चित अर्थ भी होते हैं जिनका प्रयोग प्रायः सभी छोटे बड़े किया करते हैं। ग्रामों में प्रायः ग्रामीण लोग परस्पर की बातचीतों में मुहाविरों और कहावतों का प्रयोग किया करते हैं। इनका ज्ञान होना रचना के लिए बहुत आवश्यक है।

(क) मुहाविरों का अर्थ और प्रयोग

१—आँख मारना—आँख से संकेत करना।
प्रयोग—श्री रामचन्द्र जी ने लक्ष्मण को आँख मार कर चुप कर दिया।

२—आग का पुतला—अत्यन्त क्रोधी, चिड़चिड़ा।
प्रयोग—वह परशुराम बड़ा ही आग का पुतला था जो कि जमदग्नि का पुत्र था।

३—कलेजा ठंडा करना—सन्तुष्ट करना।
प्रयोग—मित्र की बातों को सुनकर मेरा कलेजा ठंडा हो गया।
४—आड़े हाथों लेना—कठोर बात कह कर लज्जित करना।
प्रयोग—मैंने अपने मित्र के शत्रु को खूब ही आड़े हाथों लिया।
५—कान भरना—किसी की चुगली खाना।
प्रयोग—इस मनुष्य के किसी ने अवश्य ही कान भरे हैं।
६—गले पड़ना—सिर होना, माथे मढ़ी जाना।
प्रयोग—क्या करूँ, रामलाल का घोड़ा मेरे गले पड़ ही गया।
७—घुटा हुआ—भारी चालाक।
प्रयोग—ऐ लड़के, तू बड़ा घुटा हुआ है।
८—चाल चलना—धोखा देना।
प्रयोग—लेखराज मेरे साथ चाल चल गया।
९—छक्के छूटना—घबड़ा जाना।
प्रयोग—मैंने शत्रु के छक्के छुड़ा दिया।
१०—तख़्ता उलटना—बने काम को बिगाड़ना।
प्रयोग—शिवा जी ने मुग़लों का तख़्ता उलट दिया।
११—दाँत काटी रोटी—अधिक मेल।
प्रयोग—मेरी और लेखराज की दाँत काटी रोटी है।
१२—थूक कर चाटना—कह कर फिर जाना।
प्रयोग—तू बड़ा झूठा है तैने तो पंचायत में थूक कर चाट लिया।

१३—दाँत खट्टे करना—बुरी तरह हराना।
प्रयोग—इस वीर ने युद्ध में शत्रुओं के दाँत खट्टे कर दिये।

१४—दाल गलना—काम बनना।

प्रयोग—अब तो उसके मरने से उसकी दाल गलने लगी है।

१५—पार पाना—जीतना।

प्रयोग—बड़ी कठिनता से आज इस लड़ाई में पार पाई है।

१६—नाम धरना—बुरा भला कहना।

प्रयोग—यह लड़का बड़ा आलसी है इसी से तो सब जगह नाम धरवाता है।

१७—पौ बारह होना—सफलता होना।

प्रयोग—आज इस युद्ध में पौ बारह पाना बड़ा कठिन है।

१८—भराडा फोड़ना—भेद खोल देना।

प्रयोग—आज मुझे तेरे ही शत्रुओं का भराडा फोड़ करना है।

१९—जूतियाँ चटकाना—मारे मारे फिरना।

प्रयोग—वह तो नौकरी छूटने से जूतियाँ चटकाता फिरता है।

२०—जी चुराना—काम में मन न लगना।

प्रयोग—वह तो पढ़ने से जी चुराता है।

२१—ख़ाका उड़ाना—बदनामी करना।

प्रयोग—किसी का ख़ाका उड़ाना अच्छा नहीं।

२२—पानी चढ़ना—रंग आ जाना।

प्रयोग—इस मुलम्मा पर सोने का पानी चढ़ा है।

२३—ठिकाने पहुँचाना—मार डालना।

प्रयोग—आज मैंने अपने विपक्षी को ठिकाने ही पहुँचा दिया।

२४—हाथ धोना—आशा खो देना।

प्रयोग—मैं उस काम से तो हाथ धो बैठा हूँ।

२५—हाथों हाथ—एक दम, तुरन्त।

प्रयोग—मैं उससे रुपये हाथों हाथ ले आया।

नोट:—उपर्युक्त मुहाविरों का प्रयोग वाक्यांशों में किया गया है। इन वाक्यांशों में कोई भी पूर्ण वाक्य नहीं है। पूर्ण वाक्यों में प्रयोग कहावतों का ही होता है जिन्हें लोकोक्तियाँ भी कहते हैं। इनके प्रयोग से सम्पूर्ण वाक्यांशों का निचोड़ एक ही वाक्य द्वारा सिद्ध हो जाता है। यह प्रयोग निम्नांकित प्रकार से किया जाता है।

कहावतें (लोकोक्तियाँ)

१—नाच न जाने आँगन टेढ़ा—अपनी कमी दूसरों के सिर रखना।

प्रयोगः—बड़ा अन्याय है, आज कल के छायावादी कवि स्वयं सुन्दर काव्य करना तो जानते नहीं और कहते हैं कि श्रोता गण मूर्ख हैं। इनका कहना तो ऐसा ही प्रतीत होता है जैसा कि "नाच न जाने आँगन टेढ़ा" वाली कहावत है।

२—आग लगाकर पानी को दौड़ना—लड़ाई कराने के पश्चात् मेल का उद्योग करना।

प्रयोग—एक गाँव के दो दलों में एक चुगलखोर ने चुग़ली करके वैमनस्य पैदा कर दिया। होते-होते उन दलों में अभियोग छिड़ गया। दोनों तरफ़ से बहुत रुपया व्यय हुआ और कई बार आपस में मार-पीट भी हो गई। वह चुग़लखोर उनमें समझौता कराने गया तो दोनों दलों के लोगों ने उसकी बात सुनकर कहा कि तू तो अब 'आग लगा कर पानी को दौड़ता है' इतनी हानि होने पर अब समझौता कैसा?

३—हाथी चले ही जाते हैं कुत्ते भूँकते ही रहते हैं—बलवान कमज़ोरों से नहीं डरते, बुद्धिमान् मूर्खों से नहीं डरते।

प्रयोग—संसार में सभी प्रकार के मनुष्य रहते हैं और सब की भलाई बुराई भी होते हैं। परन्तु जो बुद्धिमान मनुष्य हैं वह भूलकर भी अज्ञानों की बात पर ध्यान नहीं देते, वह अपने मार्ग से तनिक भी विचलित नहीं होते। वह जानते हैं कि "हाथी चले ही जाते हैं और कुत्ते भूँका ही करते हैं।"

४—घर खीर तो बाहर भी खीर—जिसके पास धन होता है उसका बाहर भी आदर होता है।

प्रयोग—अहा! संसार का क्या परिवर्त्तन है जब मैं दीनावस्था में था तब मेरा सब जगह निरादर होता था। परन्तु अब मैं धनावस्था में हूँ तो मेरा सब जगह सम्मान होता है। उस समय मेरी कोई बात भी नहीं पूछता था अब मेरी लगभग सभी जगह चर्चा होती है। यह ठीक है "घर खीर तो बाहर भी खीर" वाली लोकोक्ति संसार में प्रसिद्ध है।

५—ईमान है तो सब कुछ—सच्चाई से सब काम हो जाते हैं।

प्रयोग—एक बोहरे के रुपयों को, जो कि बिना लिखा-पढ़ी के ऋण थे, एक आसामी मारना चाहता था। परन्तु एक गवाह जिसके सामने रुपये दिये गये थे, वह मौजूद था। उन दोनों के अभियोग चलने पर हाकिम ने आसामी से कहा कि तू गंगा जी को जानता है। यहाँ सच बोल, क्या मामला है। इतना सुनकर आसामी बोल उठा कि हुजूर संसार में 'ईमान है तो सब कुछ' है। मैं धर्म नहीं उठाता इसके रुपये मेरे ऊपर अवश्य हैं।

६—अध जल गगरी छलकत जाय—ओछा छोटा आदमी इतरा कर चलता है।

प्रयोग—किसी गाँव का रहने वाला एक दुष्ट आदमी पुलिस में सिपाही था। वह होते-होते सिपाही से थानेदार हो गया तब गाँव वालों को बहुत दुःख देने लगा। तब लोग कहते थे कि क्या करें "अधजल गगरी छलकत जाय" वाली कहावत है। बेचारे थानेदार का क्या दोष?

७—अन्धा बाँटे रेवड़ी फिर फिर अपनेहि देइ—बिना न्याय का काम करना।

प्रयोग—एक मन्दिर में उत्सव हो रहा था उसमें सभी आस-पास के गाँवों के लोग उपस्थित थे। परन्तु मन्दिर का पुजारी जब भोग बाँटने लगा तो वह अपने ही जानते हुए मनुष्यों को भीड़ में से छाँट-छाँट कर देने लगा। तब भीड़ में से अन्य मनुष्यों ने यह हाल देखा तो कहने लगे। ठीक है, यहाँ तो वह कहावत हो रही है कि "अन्धा बाँटे रेवड़ी फिर फिर अपनेहि देइ" चलो, इस प्रकार खड़े रहने से क्या है?

नीचे कुछ कहावतें अर्थ सहित दी जाती हैं, इससे विद्यार्थियों को अधिक लाभ होगा :—

१—अपनी करनी पार उतरनी—अपने किये हुए का फल भोगना पड़ता है, जैसा काम किया वैसा फल पाया।

२—औसर चूकी डोमनी गावे ताल बेताल—समय चूक जाने पर ऊट-पटाँग बकने से क्या लाभ?

३—अति का भला न बरसना, अति की भली न धूप।
अति का भला न बोलना, अति की भली न चूप॥
—किसी बात की अति अच्छी नहीं होती।

४—अपनी अपनी ढापुली, अपना अपना राग—अलग-अलग काम करना।

५—ओस के चाटे प्यास नहीं बुझती—थोड़ी चीज़ से पूरा नहीं पड़ता है।

६—आग लगे खोदे कुआँ, कैसे आग बुझाय—पहिले से काम सोच विचार कर न करने से हमेशा हानि होती है।

७—इकलख पूत, सवा लख नाती। ता रावण घर, दिया न बाती॥ } जो अत्यन्त घमंड करता है उसका नाश शीघ्र ही होता है।

८—उँगली पकड़कर पहुँचा पकड़ना—थोड़ा सहारा मिलने पर आदमी बहुत कठिन काम भी आसानी से कर लेता है।

९—एक मछली सारे तालाब को गंदा कर देती है—एक बुरा सब को बिगाड़ देता है।

१०—एक ही लकड़ी से सब को हाँकना—भले-बुरे, सब के साथ एक ही बर्ताव करना।

११—काल करे सो आज कर, आज करे सो अब। पल में परलय होयगी, बहुरि करोगे कब॥ } जो करना हो जल्दी करना चाहिये।

१२—कागा चले हँस की चाल—बड़े की नकल करना।

१३—क़ाबुल गये मुग़ल बनि आये, बोलन लागे बानी।
आब आब कर मर गये, सिरहाने धरयो रह्यो पानी॥
—किसी के बे समझे-बूझे नक़ल करना।

१४—खरी मजूरी चोखा काम—पूरे दाम देना और अच्छा काम करना।

१५—कङ्गाली में आटा गीला—दुःख पर दुःख पड़ना।

१६—घर की मुरग़ी साग बराबर—घर की वस्तु की क़दर नहीं।

१७—घर का भेदी लङ्का ढावे—आपस की फूट से बड़ी हानि होती है।

१८—चोली दामन का साथ है—गहरी मित्रता है।

१९—चिराग़ तले अँधेरा—अपनी बुराई नहीं दीखती।

२०—छठी का दूध याद आना—बड़ी कठिनाई में पड़ना।

२१—छींकते ही नाक कटी—बुरे काम का तुरन्त फल मिलना।

२२—जितने मुँह उतनी बातें—अफ़वाह यों ही उड़ा करती है।

२३—बंदर क्या जानें अदरख का स्वाद—मूर्ख गुणों को नहीं समझता, हीरे की परख जौहरी जानता है।

२४—होनहार बिरवान के होत चीकने पात—होनहार के लक्षण पहले ही से दिखाई देते हैं।

२५—भई गति साँप छछूँदर केरी—किसी भाँति निर्वाह नहीं।

२६—बिन माँगे मोती मिलै माँगे मिलै न भीख—माँगना न चाहिए।

२७—मरता क्या न करता—जिसे मरने का डर नहीं, वह सब कुछ करेगा।

२८—पर उपदेश कुशल बहुतेरे—दूसरों को उपदेश देना।

२९—नदी में रह कर मगर से वैर—बलवान् के पास रहकर उससे वैर न करना चाहिए।

३०—डूबा वंश कबीर का, उपजा पूत कमाल—कुपुत्र पैदा होने से कुल का नाश हो जाता है।

अभ्यास

(१) काव्य के गुण

(क) काव्य के कितने गुण होते हैं? उनको प्रस्फुट करो।

(ख) किस गुण की रचना लोक-प्रिय होती है? वह क्यों? स्पष्ट समझाओ।

(२) लेख-चिन्ह

(क) विराम किसे कहते हैं, और इसका प्रयोग कैसी अवस्था में कहाँ पर होता है ?

(ख) निर्देशक चिन्ह की परिभाषा करके उदाहरण दो।

(ग) प्रश्न वाचक, विस्मयादि बोधक, संयोजक और अर्द्ध विराम की परिभाषा करके उनके चिह्न बताओ।

(घ) अल्प विराम की परिभाषा करके उदाहरण दो।

(ङ) नीचे लिखे वाक्यों में विराम आदि चिह्नों को लगाओ :—

अरे सियार तू बड़ा धूर्त है क्या ये चीज़ें मेरे लिये निकम्मी और निष्प्रयोजनीय नहीं है वाह प्यारे तुमने उसे खूब झुकाया हाथी घोड़े ऊँट गधे सब बिक गये मैंने उसे बहुत समझाया किन्तु इसने एक न मानी अच्छी संगति बुद्धि को बढ़ाती है वचनों की सत्यता को सींचती है भाव को बढ़ाती है पाप को दूर करती है चित्त को प्रसन्न करती है और यश को फैलाती है।

(च) निम्नलिखित वाक्यों में विरामादि चिन्हों की अशुद्धियों को दूर करो :—

पशुओं, पर क्रूरता: रोकने के लिये—इस देश के "प्रत्येक नगर" में सभा स्थापित करना चाहिये !

"भाइयो" ऐसी सभा, स्थापित करने का कारण यह है कि ? बोझा ढोने वाले पशुओं पर; क्रूरतायुक्त व्यवहार न किया जाय ॥ ठहरो ? वे, समझे बूझे यहाँ से कूच मत करो यहीं सन्तोष किये बैठे रहो; कि ईश्वर ने जहाँ तुम्हें उत्पन्न किया है वही, तुम्हारे लिये उपयुक्त स्थान है।

(३) पिंगल

(क) गुरु और लघु किसे कहते हैं? प्रत्येक की मात्राएँ बतलाओ।

(ख) पद्य, गद्य और चम्पू किसे कहते ? स्पष्ट व्याख्या करो।

(ग) निम्न लिखित छन्दों के भेद और लक्षण समझाओ :—

(१) "सुर नर मुनि कोउ नाहिं, जिहि न मोह माया प्रबल।
असं विचारि मन माहिं, भजिय सदा सीतारमन॥"

(२) "मारो भावै छाँड़िये, श्रीपति कृपा निधान।
काम सँवारो आपनों, करहुँ न बिनती आन॥
करहुँ न बिनती आन, राम यह चरित तुम्हारो।
घर-घर में नित मचै, कियौ जग पावन सारो॥
जहाँ तहाँ कहिं जायँ तहाँ तहँते कहैं टारो।
महि-मण्डल के मध्य हुकुम उठि गयो हमारो॥"

४--मुहावरे तथा कहावतें

(क)—मुहाविरों तथा कहावतों का प्रयोग रचना में क्यों किया जाता है? स्पष्ट उत्तर दो।

(ख)—निम्न लिखित मुहाविरों का अर्थ लिखो और वाक्यों में प्रयोग करो :—

(१) "भेड़ की लात घोंटू तक" (२) "रस में विष फैलाना" (३) "सूने घर चोरों का राज" (४) "हाथ पाँव फूल जाना" (५) "मेड़की को जुकाम" (६) "डेढ़ चावल की खिचड़ी पकाना" (७) "दाँत खट्टे करना" (८) "धुएँ के बादल उड़ाना" (९) "चोर की डाढ़ी में तिनका" (१०) "आसमान में थेगली लगाना"

(ग) "नीचे लिखी कहावतों का अर्थ बताओ और उनका वाक्यों में प्रयोग करो :—

(१) "तेते पाँव पसारिये जेती लाँबी सौर" (२) "नौ सौ चूहे खाके बिल्ली हज्ज को चली" (३) "नदी में रह

कर मगर से बैर करना" (४) "तीन में न तेरह में, बीन बजावें डेरे में" (५) "अपना सा मुँह लेकर रह जाना" (६) "साईं घोड़नि के अछत गदहन आयो राज" (७) "बड़े लोगों के कान होते हैं, आँख नहीं" (८) "स्वारथ के सब ही सगे बिन स्वारथ कोउ नाहिं" (९) "यार की यारी से काम उसके फेलों से क्या काम" (१०) "पर स्वारथ के कारनै सज्जन धरत सरीर।"

रचना के लिये ज्ञातव्य बातें

(ख)

१—पद-परिचय (Parsing)

पद-परिचय बहुधा परीक्षाओं में आया करता है। वैसे तो यह व्याकरण का विषय है परन्तु यहाँ पर हम केवल थोड़ा सा ही वर्णन विद्यार्थियों की सुविधा के लिये किये देते हैं।

क. संज्ञा—(१) प्रकार (२) लिंग (३) वचन (४) कारक (५) सम्बन्ध।

(१) प्रकार—जातिवाचक, व्यक्तिवाचक, भाववाचक।

(२) लिंग—पुंल्लिंग, स्त्रीलिंग।

(३) वचन—एक वचन, बहुवचन।

(४) कारक—कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान अधिकरण, सम्बन्ध, सम्बोधन।

(५) सम्बन्ध-कर्त्ता—किस क्रिया का कर्त्ता है।

कर्म—किस क्रिया का कर्म (या गौण कर्म) है।

करण इत्यादि—किस क्रिया से सम्बन्ध है।

सम्बन्ध—किस संज्ञा का भेदक है (या किस शब्द से सम्बन्ध है)

सम्बोधन—सम्बन्ध नहीं बनाया जाता।

समानाधिकरण—किसका समानाधिकरण (Case in apposition)

२. सर्वनाम—(१) प्रकार (२) पुरुष (३) लिंग (४) वचन (५) कारक (६) सम्बन्ध।

(१) प्रकार—पुरुष वाचक—मैं, तू, वह, आप

निज वाचक—आप

निश्चय वाचक—यह, वह, सो

अनिश्चय वाचक—कुछ, कोई

सम्बन्ध—जो, सो

प्रश्न वाचक—कौन, क्या

(२) पुरुष—उत्तम पुरुष—मैं, हम

मध्यम पुरुष—तू, तुम, आप

अन्य पुरुष—वह, वे, आप

नोटः—निज वाचक आप शब्द तीनों पुरुषों में आता है।

(३) लिंग
(४) वचन
(५) कारक
—संज्ञा की भाँति। सर्वनाम में संबोधन कारक नहीं होता।

(६) सम्बन्ध—संज्ञा की भाँति।

३. विशेषण—(१) प्रकार (२) लिंग (३) वचन (४) संबंध

(१) प्रकार—गुणवाचक विशेषण

परिमाण वाचक विशेषण

संख्या वाचक विशेषण

संकेत-बोधक विशेषण
विभाग बोधक विशेषण
व्यक्ति वाचक विशेषण

(२) लिंग }
(३) वचन } संज्ञा की भाँति

(४) सम्बन्ध—किस शब्द की विशेषता बतलाता है।

४. क्रिया—(१) प्रकार (२) वाच्य (३) प्रयोग (४) अर्थ
(५) काल (६) लिंग (७) वचन (८) पुरुष
(९) सम्बन्ध।

(१) प्रकार—(१) अकर्मक, सकर्मक
(२) संयुक्त क्रिया (यदि हो तो)
पूर्व कालिक क्रिया (यदि हो तो)

(२) वाच्य—(१) कर्तृवाच्य
(२) कर्मवाच्य
(३) भाववाच्य

(३) प्रयोग-(१) कर्त्तरि प्रयोग
(२) कर्मणि प्रयोग
(३) भाव प्रयोग

(४) अर्थ—(१) निश्चयार्थ
(२) आज्ञार्थ
(३) संदेहार्थ
(४) संभावनार्थ
(५) संकेतार्थ

(५) काल—(१) भूत
(२) भविष्यत्
(३) वर्तमान

नोटः—(१) निश्चयार्थ में सात काल होते हैं :—

(१) सामान्य वर्त्तमान—जाता है
(२) अपूर्ण वर्त्तमान—जा रहा है
(३) पूर्ण वर्त्तमान—गया है
(४) सामान्य भूत—गया
(५) अपूर्ण भूत—जाता था
(६) पूर्ण भूत—गया था
(७) भविष्यत्—जावेगा

(२) संदेहार्थ में दो काल होते हैं

(१) वर्त्तमान—जाता होगा, जा रहा होगा
(२) भूत—गया होगा

(३) संभावनार्थ में तीन काल होते हैं—

(१) वर्त्तमान—जाता हो, जा रहा हो
(२) भूत—गया हो, जाता रहा हो
(३) भविष्यत्—जावे

(४) संकेतार्थ तीन प्रकार का होता है—

(१) सामान्य—जाता
(२) अपूर्ण—जाता होता, जा रहा होता
(३) पूर्ण—गया होता

(५) आज्ञार्थ में दो काल होते हैं—

(१) वर्त्तमान—जा, जाओ, जाइए (प्रत्यक्षविधि)
(२) भविष्यत्—जाना, जाइयो, जाइयेगा (परोक्षविधि)

(६) लिंग }
(७) वचन } संज्ञा की भाँति

(८) पुरुष—सर्वनाम की भाँति ।

(९) संबंध—(१) इस क्रिया का कर्त्ता कौन है ?

(२) इस क्रिया का कर्म कौन है (यदि हो तो) ।

(३) इस क्रिया का पूरक कौन है (यदि हो तो) ।

५. क्रिया विशेषण—(१) प्रकार (२) संबंध

(१) प्रकार-कालवाचक ।

परिमाण वाचक ।

स्थान वाचक ।

(२) संबन्ध-किस शब्द की विशेषता बतलाता है ।

६. संबन्ध बोधक-संबन्ध बोधक लिख कर संबन्ध बता दो कि किस शब्द का सम्बन्ध किस क्रिया (या अन्य शब्द) के साथ सूचित करता है ।

७. समुच्चय बोधक-(१) प्रकार (२) संबंध ।

(१) प्रकार-(२) समानाधिकरण

(२) व्यधिकरण ।

(२) संबंध—किन शब्दों, वाक्यांशों या वाक्यों को मिलाता है

८. विस्मयादि बोधक-केवल विस्मयादि बोधक लिख दो ।

नोट—(१) जब एक शब्द भेद (Part of Speech) किसी अन्य भेद की भाँति प्रयुक्त हो तो पहले असली शब्द भेद का नाम लिखो और फिर लिखो कि अमुक शब्द भेद की भाँति प्रयुक्त हुआ है । जैसे— " संतोषी सदा सुखी रहते हैं" ।

संतोषी विशेषण, परन्तु यहाँ पर संज्ञा की भाँति प्रयुक्त है। अब संतोषी का पद परिचय संज्ञा की तरह किया जायगा न कि विशेषण की तरह।

(२) अँग्रेज़ी के Infinitive और Gerund हिन्दी में संज्ञा (या कृदंत संज्ञा) होते हैं और अँग्रेज़ी के Participle हिन्दी में विशेषण होते हैं।

उदाहरण—(१) "मित्र ! इस लोक में ईश्वर का ही सहारा लो"।

मित्र—संज्ञा, जातिवाचक, एकवचन, पुंल्लिग, सम्बोधन, कारक।

इस—विशेषण, निश्चयवाचक, एकवचन, पुंल्लिग, लोक' विशेष्य।

लोक में—संज्ञा, जातिवाचक, एकवचन, पुंल्लिग, अधिकरण कारक, 'लो' क्रिया का आधार।

ईश्वर का—संज्ञा, व्यक्तिवाचक, एकवचन, पुंल्लिग, सम्बन्ध कारक, 'सहारा' से सम्बंध।

ही—निश्चयवाचक अव्यय।

सहारा—संज्ञा, भाववाचक, एकवचन, पुंल्लिग, कर्मकारक 'लो' क्रिया का कर्म

लो—क्रिया, सकर्मक, कर्तृवाच्य, विधि, मध्यम पुरुष, एक वचन, पुंल्लिग, कर्तरि, प्रयोग, 'तुम' कर्त्ता और सहारा कर्म।

उदाहरण २—"अर्जुन ने कर्ण को मारा था"।

अर्जुन ने—संज्ञा, व्यक्ति, वाचक एक वचन, पुंल्लिग, कर्त्ता-कारक, 'मारा था' क्रिया का कर्त्ता।

कर्ण को—संज्ञा, व्यक्ति वाचक, एक वचन, पुंल्लिग, कर्म-कारक, 'मारा था' क्रिया का कर्म।

मारा था—क्रिया, कर्तृवाच्य, अन्य पुरुष, एक वचन, पुंलिंग, भाव प्रयोग, 'अर्जुन ने' कर्त्ता।

उपर्युक्त वाक्यों का अर्थ ठीक-ठीक इसलिए समझ में आता है कि हम ऊपर की प्रक्रिया द्वारा यह जान गये हैं कि वाक्य गत प्रत्येक शब्द का रूप और उसका दूसरे शब्दों से सम्बन्ध क्या है ? यह प्रक्रिया परिचय है।

वाक्य का अर्थ भली भाँति समझने के लिए जिस प्रक्रिया से शब्द का रूप तथा शब्दों के साथ सम्बंध आदि बताते हैं, उसे पद परिचय कहते हैं।

नोट–इसी को पद व्याख्या, पदान्वय भी कहते हैं।

एक ही शब्द का भिन्न-भिन्न पदों में प्रयोग

१—कभी कभी विशेषण-पद स्वतन्त्र रूप से विशेष्य की भाँति आते हैं और उनमें विशेष्य के लिंग वचन होते हैं; जैसेः— विद्वानों को बुलाया है।

२—कुछ गुण वाचक विशेष्य कभी विशेष्य और कभी विशेषण हो जाते हैं। जैसेः—कनक-देह में 'कनक' विशेषण है और 'देह' विशेष्य।

३—कभी जाति-वाचक शब्द विशेष्य और कभी विशेषण होते हैं। जैसेः—"शिकार खेलना क्षत्री का धर्म है" यहाँ क्षत्री विशेष्य है। और "क्षत्रिय-कुल में जन्म लेकर" यहाँ क्षत्री विशेषण।

४—कुछ संख्या वाचक शब्द जब केवल ८, १४, २० संख्या हों तो संख्या-वाचक विशेष्य और अन्य पद के संख्या-बोधक हों तो संख्या वाचक विशेषण होते हैं; जैसेः—४घोड़े, ६ गाय।

५—सर्वनाम भी विशेष्य-रूप में आता है—" यह वही तीर्थ स्थान है " यहाँ " यह " सर्वनाम विशेष्य रूप में आया है। सर्वनाम कभी-कभी विशेषण-रूप में भी आता है; जैसेः— " यह महिला राज-भक्त है "

६—कभी-कभी क्रिया-पद भी विशेष्य रूप में आता है; जैसेः— " खा " धातु के आगे " ता " प्रत्यय लगाने से " खाता " पद बनता है। यहाँ " खाता " विशेष्य है।

नोट—गद्य का एक एक पद लेकर परिचय किया जाता है और पद्य में गद्य क्रम (अन्वय) करके यथाक्रम एक एक पद ले कर परिचय करते हैं।

१—भाव वाचक-संज्ञाएँ बहु वचन में जाति वाचक हो जाती हैं।

२—अकर्मक क्रिया में वाच्य दिखलाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

३—संयुक्त क्रियाओं को तोड़ कर प्रत्येक अंग का अलग अलग पद-परिचय दिखाना चाहिए।

अभ्यास

१—नीचे लिखे शब्दों को यथा-स्थान रखकर वाक्य बनाओ :—

(क) ' पियारा ' ' केवल ' ' प्रेम ' ' रामहि '।

२—नीचे लिखे वाक्यों का पद-परिचय करो :—

(क) ओहो ! कैसा हर्ष का समाचार है।

(ख) जो अपनी प्रतिष्ठा को नहीं समझता वह मित्रता के योग्य नहीं है।

३—पद-परिचय किसे कहते हैं ? इसका सीखना रचना के लिये क्यों आवश्यक है ?

२—रिक्त-पदों का पूर्ण करना

रिक्त पदों को पूरा करने में पद-स्थापन प्रणाली के नियम और अर्थ को ध्यान में रखना आवश्यक है । क्योंकि रिक्त पदों की पूर्ति के लिए कोई नियम मुख्य रूपेण नहीं है। इनमें अधिकांश विशेष्य से पहले विशेषण और क्रिया से पहले क्रिया विशेषण व अधिकरण तथा आपेक्षक पदों में संबंधी पद यथास्थान पर आते हैं, जैसेः—

(चक्रधारी) श्रीकृष्ण के जिस सुदर्शन (चक्र) से अनेक दानवों का वध हुआ, (वह) व्यर्थ हुआ ।

२—"···तालाव में···फूल···खिले हैं" ।

इस रिक्त पद को इस प्रकार पूरा किया जायगा " (इस) तालाब में (सुन्दर) फूल (बहुत) खिले हैं ।

अभ्यास

१—नीचे लिखे रिक्त पदों को पूरा करो :—

(क) धर्म से···बढ़ती है।

(ख) सत्य से···की होती है ।

(ग) व्यायाम से······सुदृढ़ होता है ।

२—नीचे रिक्त-पदों में केवल विशेषण शब्द जोड़ो :—

(क) वह···पुरुष···लड़के को मार रहा है ।

(ख) ···मनुष्य···मनुष्यों को दान दे रहा है :—

३—नीचे लिखे वक्यों में रिक्त स्थानों को पूरा करो :—

भारत वर्ष के···वाले लोग···कहलाते हैं। यह···सत्यवादी और वीर···। संसार···सब पहिले···का उदय···हुआ था। यही बड़े साधु, योगी तथा कवियों की···है ।

३—अलंकृत वाक्य

अलंकृत वाक्य बनाने के लिए किसी न किसी अलंकार की अवश्य ही आवश्यकता पड़ती है। हम पहले मुख्य-मुख्य अलंकारों का वर्णन कर चुके हैं। परन्तु वहाँ पर साधारण वाक्य को अलंकृत वाक्य में रूपान्तर करना नहीं बतलाया गया। यहाँ पर इसके बतलाने की आवश्यकता इसलिए पड़ गई है कि अलंकृत वाक्य, रचना का एक मुख्य अंग है। अतएव हम विद्यार्थियों के ज्ञान के लिये इसका वर्णन करते हैं। भिन्न-भिन्न अलंकारों का गद्य और पद्य के वाक्यों में प्रयोग करना ही अलंकृत वाक्य कहलाता है। जैसेः—

साधारण वाक्य

१—सीता जी के चरण कोमल हैं।

अलंकृत वाक्य

१—सीता जी के चरण कमल सम कोमल हैं। (उपमा अलंकार)। २—सीता जी के चरण कमल सम कोमल और कमल के समान सुन्दर हैं (मालोपमा) ३—सीता जी के चरण कमल के सम है और कमल सीता जी के चरण के सम है (उपमेयोपमा)। ४—सीता जी के कमल-चरण को देख कर मेरा चित्त उत्फुल्ल हो रहा है (रूपक) ५—क—कमल सीताजी के चरण की क्या समता कर सकता है (प्रतीप) ख—कमल सीता जी के चरण के समान है ६—सीता जी के चरण मानो कमल हैं (उत्प्रेक्षा) ७—सीता जी के चरण हैं या कमल? (सन्देह) ८—सीता जी के चरण को देख कर कमल की याद आती है। या कमल को देख सीता जी के चरण की याद आती है (स्मरण)।

२—राजा आता है

विद्युत-समान तीव्रगामी घोड़ों के स्यंदन में बैठ कर सूर्य्य-सम प्रतापी राजा आता है (उपमा अलंकार)।

३—यह हीरा चमकता है

१—यह हीरा अग्नि के समान है (उपमा) २—यह हीरा नहीं चमक रहा है यह तो अग्नि का अँगारा है (अपह्नुति) ३—यह हीरा मानो अग्नि का अँगारा है (उत्प्रेक्षा) ४—यह हीरा चमकता है या अग्नि चमक रही है (संदेह)।

अलंकृत वाक्यों के उदाहरण

उदाहरण :—साधारण वाक्य—तुम बड़े दुष्ट हो।

अलंकृत वाक्य—तुम दुष्टता में तो मानो राक्षस हो।

साधारण वाक्य—यह पुस्तक उनको देने आया हूँ।

अलंकृत वाक्य—यह पुस्तक-रत्न उनके कर कमल में अर्पण करने आया हूँ।

साधारण वाक्य—वह बड़ा श्रेष्ठ पुरुष है।

अलंकृत वाक्य—वह पुरुष नहीं देवता है।

साधारण वाक्य—संध्या हो गई।

अलंकृत वाक्य—भगवान कमलिनि-कुल-वल्लभ ने अस्ताचल की शिखरों पर आरोहण किया है।

अभ्यास

१—नीचे लिखे वाक्यों को अलंकृत वाक्यों में परिवर्तन करो।

(क) चन्द्रमा उदय हो रहा है।

(ख) नदी में लहरें कैसी कलकल करती हैं!

४-वाक्यों का रूपान्तर

(अ)

साधारण वाक्य को अलंकारों, विशेषणों तथा दूसरी तरह के अनेकों कौशलों द्वारा रूपान्तरित कर सकते हैं।

उदाहरण (क)—" देवलोक हो गया "—

१—मर गया। २—परलोक-वास हो गया। ३—सुरपुर सिधार गया। ४—अमर लोक सिधारा। ५—उसका पंचभूत पंचभूत में मिल गया। ६—प्राण पखेरू उड़ गया। ७—जीवात्मा चला गया। ८—संसार से कूँच कर गया। ९—दुनिया से उठ गया। १०—हम से चिर विदा ली। ११—मृत्यु हो गई। १२—यहाँ से चल बसे। आदि।

उदाहरण (ख)—" सूर्य्य उदय हुआ "—

१—सूर्य्योदय हुआ। २—सूर्य्य ने अपनी किरणें फैला दीं। ३—सुनहली किरणें चमकने लगीं। ४—सूर्य्य दर्शन हुए। ५—कमलिनि-कुल वल्लभ की प्रभा प्रस्फुटित हुई। ६—प्रातःकाल हो गया। ७—मार्तण्ड अपने आनन को चमकाने लगा। ८ अरुणोदय हुआ। ९—रात व्यतीत हो गई। १०—भगवान भास्कर प्रकट हुए। आदि।

उदाहरण (ग)—" निर्वाह करता हूँ "

१—जीवन काटता हूँ।

२—दिन व्यतीत करता हूँ।

३—समय को धक्का देता हूँ।

४—गुज़र बसर करता हूँ।

५—पेट पालता हूँ ।

६—कालक्षेप करता हूँ ।

उदाहरण (घ) किसी से कहना है " बैठ जाओ "

१—विश्राम कर लो ।

२—सुस्ता लो ।

३—आराम कर लो ।

४—काम करना बंद कर दो ।

५—नौकरी छोड़ दो ।

उदाहरण(ङ)—" उड़ना " क्रिया पद का व्यवहार स्वभावतः द्रववस्तु के परिवर्तन रूप होने के अर्थ में आता है; जैसेः—

१—पानी उड़ गया (पानी भाप बन गया) यह द्रववस्तु का परिवर्तन रूप है जब इस क्रिया को अन्य स्थान पर लाते हैं तो विशेष चमत्कार हो जाता है। जैसेः—

" उड़ना "

१—मकान उड़ गया ।

२—हाथ उड़ा दूँगा ।

३—कैसा रंग उड़ा ।

४—बदनामी उड़ती दिखाई नहीं देती ।

५—बुराई उड़ती जाती है ।

६—यह भलाई हुई ।

७—खूब उड़ कर लगी है । आदि ।

उदाहरण (च) " यह गाय उसको देने लाया हूँ "

१—यह गाय उनको समर्पण करने लाया हूँ ।

२—यह कामधेनु-रत्न उनको अर्पण करने लाया हूँ ।

३—यह गाय उनके कर कमलों में भेंट करने लाया हूँ।

४—यह गाय उसके चरण-कमल में उपस्थित करने लाया हूँ।

५—यह गाय उसके निमित्त लाया हूँ।

(व) वाक्य का थोड़ा अंश दिये होने पर वाक्य पूरा करना।

उदाहरण १—"धर्म है"—मनुष्य का सत्य बोलना ही 'धर्म है'।

२—"तप से"—साधुओं की 'तप से' ही आयु बढ़ती है।

३—"फाटक पर से"—इस शहर में 'फाटक पर से' जाना चाहिये।

४—"बुरा है"—चोरी करना 'बुरा है'

५—"शृङ्गारी काव्य"—बिहारी का 'शृङ्गारी काव्य' बड़ा उत्कृष्ट है।

६—"कृष्ण और अर्जुन"—महाभारत में "कृष्ण और अर्जुन" बड़ी वीरता से लड़े।

७—"मन-क्रम-वचन"—स्त्रियों को अपने पति की सेवा 'मन-क्रम-वचन' से करनी चाहिये।

८—"तन-मन-धन"—मित्र की 'तन-मन धन' से सेवा करनी चाहिये।

९—"आचार-विचार"—पूर्व में बहुत 'आचार-विचार' होता है।

१०—"उपकार"—संसार में मनुष्य का धर्म 'उपकार' ही करना है।

अभ्यास

१—नीचे लिखे वाक्यों का रूपान्तर करो।

(क) चन्द्रमा उदय हुआ। (ख) पापी हो गया। (ग) ज्ञान हो गया। (घ) शोक हुआ। (ङ) चले जाओ।

२—वाक्यों का रूपान्तर करना रचना को क्यों लाभदायक है? स्पष्ट समझाओ।

३—नीचे लिखे पद वा पद समूहों को वाक्यों में प्रयोग करो।
(क) सत्संगति। (ख) पीठ दिखाकर। (ग) मृत्यु-शय्या। (घ) मान-मर्यादा छोड़कर। (ङ) देश-देशान्तर। (च) 'भीष्म पितामह' 'अविवाहित रहने की'। (छ) मैं पिता हूँ और तुम……। परन्तु तुम्हारा……अच्छा नहीं है।

१—अनुच्छेद-रचना

एक पूर्ण भाव को विदित करने के लिए कुछ शब्दों को क्रम-बद्ध रखने से वाक्य बनता है। इसी प्रकार एक भाव से सम्बन्ध रखने वाले, तथा पुष्टि करने वाले सिलसिले से एक जगह रक्खे हुए वाक्य-समूह को अनुच्छेद कहते हैं। अर्थात् सापेक्ष वाक्य-समूह ही अनुच्छेद है। इसी को कुछ विद्वान परिच्छेद भी कहते हैं। अनुच्छेद-रचना के समय एक वाक्य के ठीक पीछे ही दूसरा ऐसा वाक्य आता है जिससे भावों का क्रम नष्ट न हो और जो कुछ हम वर्णन करना चाहते हैं उसका क्रम चलता जाय। जब तक वह पूरा भाव स्पष्ट न हो जाय जिसे हम कहना चाहते हैं वाक्यों का क्रम बराबर चलता जायगा। अनुच्छेदों के वाक्यों में आकांक्षा, क्रम और योग्यता रहती है। अतएव नीचे कुछ पदों पर अनुच्छेद-रचना करके बतलाते हैं। इससे रचना में

यह लाभ है कि यह एक प्रकार के भावों और विचारों को दूसरे प्रकार के भावों और विचारों में मिल जाने से अलग करता है। वह यह स्पष्ट बताता है कि तुम आगे बढ़ो, नये अनुच्छेदों पर प्रकाश डालो तो और दूसरे प्रकार के विचारों को पाओगे।

नीचे अनुच्छेद-रचना करने का ढंग वर्णन किया जाता है:—

संज्ञा शब्द :—

१—घास, मोती, ओस, बूँदें, समीर, फूल, पल्लव, सुन्दरता।

प्रातःकाल घास पर मोती सी ओस की बूँदें, मन्द-मन्द सुगन्ध युक्त समीर, अधखिले फूल, हिलते हुये हरे-हरे कोमल पल्लव में ही उसकी उस सुन्दरता की सम्पत्ति है।

२—मनुष्य, जीवन, प्रसन्नता, बच्चा, बूढ़ा, पुरुष।

मनुष्य के जीवन में अवस्था के परिवर्त्तन के साथ-साथ प्रसन्नता की रुचि में भी परिवर्त्तन होता रहता है। बच्चा एक बात से प्रसन्न होता है तो बूढ़ा बच्चों के गुणों पर आसक्त हो जाता है। परन्तु ऐसे पुरुष कम दिखलाई पड़ते हैं।

३—सावित्री, यमराज, प्रतिज्ञा, सास-ससुर, सुख।

सती सावित्री ने यमराज को अपनी सत्य प्रतिज्ञा से प्रसन्न किया। तदनन्तर अपने सास-ससुर को अधिक सुख दिया।

४—अहिल्या, राम, दशरथ, जनकपुर, विश्वामित्र, शोभा।

अहिल्या शाप-वश सिला हो गई थी। वनवास के समय राम ने इसका उद्धार किया था। राम के वियोग से दशरथ जी सुरपुर सिधार गये थे। इन्होंने धनुष जनक-पुर में तोड़ा था, जब इनके साथ विश्वामित्र भी गये हुए थे। उस समय इनकी शोभा बड़ी विलक्षण हो रही थी।

२-अनुच्छेद रचना के लिए ज्ञातव्य बातें

१—अनुच्छेदों में परस्पर सम्बन्ध होना चाहिए और उसके वाक्यों में भी आपस में सम्बन्ध होना चाहिए। एक अनुच्छेद में एक ही भाव रहना चाहिए वह भी भाव अपने आदि के आये हुए और अंत में आने वाले भावों से स्पष्टता पूर्वक सम्बन्ध रखने वाला हो।

२—अनुच्छेदों में परस्पर सम्बन्ध रखने के लिए कुछ विशेष शब्दों का प्रयोग भी किया जाता है। जैसेः—

'इसके अनन्तर', 'फिर', 'किन्तु' 'तथापि' 'पहली बात यह है' 'दूसरी बात यह है' 'पहले' 'दूसरे' 'अस्तु' 'आगे' 'कारण यह है' 'अतएव', 'अन्त में' 'जो', 'सो' 'सारांश यह है' 'इस दशा में' आदि यह शब्द वाक्यों के परस्पर जोड़ने में काम आते हैं।

३—अनुच्छेदों के आदि और अन्त के वाक्य ज़ोरदार होने चाहिए। इसमें प्रत्येक अनुच्छेद के पहले वाक्य में पूरे अनुच्छेद में आगे आने वाली बातों का भाव आ जाता है और अन्त का वाक्य भी दूसरे वाक्यों से कुछ अधिक गौरवशाली होता है। यह वाक्य सारे अनुच्छेद का प्रभाव डालने वाला हो और उसका दूसरे अनुच्छेदों से स्वाभाविक सम्बंध हो।

४—अनुच्छेद की लम्बाई आवश्यकता से अधिक न हो परन्तु इस बात का ध्यान रहे कि हम जिस बात का स्पष्टीकरण कर रहे हैं उसमें उसी से सम्बंधित बातों का उल्लेख हो—विषयान्तर न होने पावें। अधिक लम्बा अनुच्छेद रचना के लिए अच्छा नहीं उसके होने से रचना की सुन्दरता फ़ीकी पड़ जाती है।

विशेषण पदों की अनुच्छेद-रचना

उदाहरण १—तपस्वी, सुन्दर, राजा, श्रेष्ठ, अप, सती, सहर्ष।

तपस्वी गौतमी तपोवन से सुन्दर शकुन्तला के साथ चलने को तय्यार हुई। वह दोनों फिर राजा दुष्यन्त की श्रेष्ठ राजधानी में पहुँची। वहाँ राजा शकुन्तला को देखकर अपशब्द कहने लगा तब सती शकुन्तला ने उनको सहर्ष सहन कर के धैर्य्य धारण किया।

क्रिया विशेषण पदों का अनुच्छेद-रचना

उदाहरण १—झूठमूठ, बार-बार, अब, निकट, नहीं, इसलिए, अत्यन्त।

एक मनुष्य झूठमूठ डींग मार रहा था। वह बार-बार कहता था कि मैं अब किसी से नहीं डरता हूँ। चाहे कोई मेरे निकट ही चला आवे तो मैं उससे डर नहीं सकता। इसलिए ज्ञात होता है कि मैं अत्यन्त बलवान हूँ।

अभ्यास

१—अनुच्छेद किसे कहते हैं? इसकी रचना में आवश्यकता क्यों पड़ती है। स्पष्ट समझाओ।

२—अनुच्छेद-रचना में किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए।

३—नीचे लिखे पद-समूह को पृथक् पृथक् अनुच्छेदों में प्रयोग करो :—

(क) कदाचित्, दौड़ते-दौड़ते, जहाँ तक, बराबर, कदापि।

(ख) बुराई, भलाई, भला, बुरा, सेवा, भक्ति, सुन्दर, आज्ञाकारी।

(ग) काश्तकार, हत्या, अभियोग, जीवन, कष्ट, उत्सव, मृत्यु ।

(घ) नग माला, सुन्दर स्थान, अद्भुत शोभा, हर्ष. रोग-प्रद, तराई, आब-हवा ।

(ङ) पूजनीय, पापी, धैर्य्यवान, ज्ञानी, धर्म, परोपकारी ।

४—नीचे लिखे मुहाविरों को उनके नीचे दिये हुए उदाहरण के समान प्रयोग में ला कर एक अनुच्छेद को पूर्ण करो :—

(क) दिन दहाड़े, नाच कूद करना, हाथ मलते रहना, टकटकी बांधना ।

(ख) मनमानी घर जानी, अन्धाधुन्ध, दंग रह गया, चलता पुरजा, अपना सा मुँह लेकर ।

(ग) त्यों-त्यों, दाल गलना, हाथों हाथ, नौ दो ग्यारह, चाल चलना ।

उदाहरण :—नाक कट गई, आँखें लाल करना, मरी गाय ब्राह्मण के हाथ ।

शूर्पणखा को कुरूप देख कर रावण ने कहा कि अब तो मेरी नाक कट गई । उसने यह न सोचा, यह बहिन किस की है । तब तो वह आँखें लाल करके कहने लगा । देखो. जिसने इसको कुरूपा किया है उसे पकड़ कर ले आओ । उसको मारना मत ! नहीं तो मेरी गाय ब्राह्मण के हाथ लग जावेगी । मैं पहले उसे केवल देखना ही चाहता हूँ ।

(५) आगे के उदाहरण में जिस प्रकार कहावतों का प्रयोग है उसी प्रकार आगे दी हुई कहावतों का प्रयोग करके अनुच्छेद-पूर्ति करो :—

उदाहरण:—अन्धों में काना राजा होना, पहेली सी बुझाना, भई गति साँप छछुंदर केरी—न निगलते बनै न उगलते बनै। हीरे की परख जौहरी ही जानै।

धृतराष्ट्र ने दुर्योधन की बातें सुन कर कहा तू तो अन्धों में काना राजा हो रहा है। तू अपने मन की बात स्पष्ट क्यों नहीं कहता? बारबार पहेली सी क्यों बुझाता है। मेरी तो इस घर की लड़ाई से साँप छछूँदर की सी गति हो गई है न तो निगलते ही बनता है और न उगलते ही बनता है। मेरी दोनों ओर से ख़राबी है। पांडव बड़े वीर हैं, उनकी वीरता को तू नहीं जानता? अरे "हीरे की परख तो जौहरी ही जानता है।"

(क) काला अक्षर भैंस बराबर, रस्सी जल गई; ऐंठन न छूटी, जैसे नाग नाथ तैसे साँप नाथ।

(ख) अधजल गगरी छलकत जाय, अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना, सात पाँच की लकड़ी, एक जने का बोझ, नौ नगद न तेरह उधार, का वर्षा जब कृषी सुखाने।

(ग) आँखों के अन्धे नाम नयन सुख, एक पंथ दो काज, एक मछली सारे तालाब को गंदा करती है, चार दिना की चाँदनी, फेरि अँधेरा पाख।

---

*

छठा अध्याय

शैली (रीति)

शैली का साधारण अर्थ 'ढंग' का है। 'ढंग' शब्द का यह तात्पर्य है कि अमुक व्यक्ति की रहन-सहन का क्या ढंग है? अमुक व्यक्ति के वार्तालाप का क्या ढंग है तथा अमुक व्यक्ति के लेखन-वर्णन का क्या ढंग है। अधिकांश देखा गया है कि जिसका ढंग अच्छा होता है उसी का लोग अनुकरण करने लगते हैं। रचना में जिसका वर्णन-ढंग रुचिकर होता है उसी को मनुष्य मन लगा कर पढ़ते हैं। बस, यह बात ध्यान रखने योग्य है कि हमें जिसका वर्णन करना हो वह बहुत ही रोचक हो। रचना के लिए पदयोजना करने की पद्धति को 'शैली' कहते हैं तथा इसी को रीति भी कहते हैं। अनेकानेक लेखकों की अनेकानेक शैली हैं। इसी लेखन-शैली के उत्कर्षानुसार रचना का सौन्दर्य्य बढ़ता है। उत्कर्ष शैली के लिए स्पष्टता, मधुरता, वाक्य तथा पद-प्रयोग की सार्थकता, आकर्षण, भाषा-वैचित्र्य और भाव-स्पष्टता का ध्यान रखना चाहिए। जिस रचना शैली में इन सब बातों का भली प्रकार समावेश होगा वह 'शैली' उत्तम से उत्तम कही जा सकती है। इससे अब हम नीचे इनका संक्षेप में वर्णन करते हैं।

१—स्पष्टता

रचना में स्पष्टता होने से लेखक के भाव बहुत सुगमता से भली प्रकार समझ में आ जाते हैं। इससे रचना के पढ़ने से अर्थ-बोध में कठिनता नहीं पड़ती। मनुष्य के विचार रचना-

द्वारा ही दूसरे तक पहुँच सकते हैं। यदि उसके लेख में स्पष्टता न होगी, तो दूसरा उसे समझ नहीं सकता और यदि समझने का साहस भी करेगा तो उसका यथार्थ अर्थ समझ नहीं सकता। इससे रचना में स्पष्टता होनी चाहिए। इसके लिए सुन्दर-सुन्दर शब्दों के वाक्य-विन्यास होने चाहिए। शब्द ललित और सार्थक हों जो सुनने में प्रिय हों। रचना-गौरव के लिए कभी-कभी लेखक इस ढँग से ऐसे पद-विन्यास प्रयोग करते हैं। जिससे यही ज्ञात हो कि किस पद का सम्बन्ध किससे है। कोई-कोई क्लिष्ट तथा अप्रचलित शब्दों का प्रयोग करते हैं। बहुत से लेखक थोड़े से शब्दों में व्यक्त होने वाले भाव को बड़े बड़े वाक्यों में विदित कर देते हैं, ऐसे स्थान पर भाव की दुरूहता बढ़ जाती है। इससे रचना में इन बातों का त्याग कर देना चाहिए। इसलिए स्पष्टता लाने के लिए सुन्दर-सुन्दर छोटे-छोटे सरल वाक्यों का समावेश होना आवश्यक है।

२—मधुरता

मन के भाव-प्रकट करने में जो साधारण वाक्य मुख से निकलते हैं, उन्हीं सब वाक्यों में स्वाभाविक विन्यास द्वारा रचना में सरलता लाने की आकांक्षा करनी चाहिए। प्रसंग के विरुद्ध वाक्य-विन्यास करने से रचना की मधुरता जाती रहती है। करुण और शांत रस के प्रकट करने वाली पदावली कोमल कान्त होनी चाहिए जो दुर्बोध और बहु-समास-सम्पन्न न हो। नीति और धर्म-मूलक रचना में सजीवता तथा भाव की गम्भीरता का प्रतिपालन होना चाहिए, नहीं तो सुन्दरता उड़ जायगी। जैसा गाम्भीर्य विषय हो उसी प्रकार उस में महत्व भी आना चाहिए। वीभत्स, वीर और रौद्र आदि रसों में क्लिष्ट और समासिक पद

युक्त भाषा द्वारा रचना में ओज गुण बढ़ता है। इससे रचना में माधुर्य्य लाना परमावश्यक है। इसका भली भाँति ध्यान रखना चाहिए।

३—वाक्य तथा पद-प्रयोग की सार्थकता

रचना में जिस वाक्य समूह तथा पदों का प्रयोग करें वह प्रसंग के बाहर के होंगे तो भाव प्रकट करने की शक्ति में कठिनता आ जायगी और अर्थ का प्रकाशन यथार्थ न हो सकेगा। रचना में निरर्थक शब्द प्रयोग करने से सुन्दरता मारी जाती है। बहुतेरे लोग एक ही भाव को बहुत से वाक्यों में विभिन्न प्रकार से दिखा कर उसे वृथा बढ़ा देते हैं। संक्षेप में तथा थोड़ी बात में भाव प्रकाशन करना रचना की कुशलता है, किन्तु थोड़ी सी बात को संक्षेप में कहने से यह तात्पर्य नहीं है कि वह सरलता से समझ ही में न आवें। इसलिए वाक्यों का गठन सीधा-सादा और स्पष्ट होना चाहिए। जिस उपवाक्य या वाक्यांश का जिससे सम्बन्ध हो उसे उसी के स्थान पर रखना चाहिए। इसलिए रचना में सरल वाक्य तथा पद लिखना अत्यन्त गुणदायक है।

४—आकर्षण

शैली का आकर्षण एक मुख्य गुण है। रचना को स्पष्ट होते हुए भी यदि पढ़ने वाले को आकर्षित करने का गुण नहीं है तो उसकी स्पष्टता कोई मूल्य नहीं रखती। किसी निबन्ध के सामने आने पर उसकी दो-चार पंक्तियाँ पढ़ते ही पूरा पढ़ जाने की आकांक्षा उत्पन्न हो और अन्त तक पढ़ने में रुचि बनी रहे, बस इसी का नाम आकर्षण है। आकर्षण में ओज और लालित्य भी पाया जाता है। इनका रचना में होना अत्यन्तावश्यक है।

लेखक की पदावली ऐसी महत्वपूर्ण हो जो पढ़ते ही पाठकों के मन को अपनी ओर आकर्षित कर ले। लेखक जहाँ शोक और दुःख प्रकट करें, पढ़ते ही पाठक भी उसे बोध करने लगें। किसी विषय को पढ़ कर, सुनकर या अवलोकन कर पाठक, श्रोता और दर्शक के चित्त में उस बोध के कारण एक अनिर्वचनीय 'विकार' उत्पन्न हो जाता है जिसे भाव कहते हैं। रचना विशेष के पढ़ने आदि से शोक, विस्मय, उत्साह, क्रोध, स्नेह, हास्य, भय, विरति और घृणा पैदा होती है। पाठकों के चित्त को उसका पूर्ण बोध करा देना ही रचना की निपुणता है। अच्छे लेखक को पद-विन्यास का महत्व भली-भाँति जान लेना चाहिए।

(क) ओज

लेख को प्रभावशाली बनाना उसमें ओज पैदा करना है। ओज का अर्थ है 'बल'। ओज रहित रचना बुरी मालूम पड़ती है। अतएव रचना में यह गुण अवश्य होना चाहिए। जिस उद्देश्य को लेकर रचना लिखी गई है वह उद्देश्य व्यक्त करने की उसमें शक्ति होनी चाहिए। जिसको पढ़कर लोग आसक्त हो जायँ। जब कोई लेख नियम पूर्वक कोमल पदावली युक्त लिखा जावेगा और उसमें व्याकरण की कोई त्रुटि न रहेगी तो उसमें स्वाभाविक ही ओज गुण उत्पन्न हो जायगा। परन्तु यह आवश्यक है कि उसे लेखक ने अपने हृदय के सच्चे भावों के अनुकूल अंकित किया हो। हृदय से जो यथार्थ बात निकलती है, उसका प्रभाव होता है। रचना में ओज अलंकृत वाक्यों से भी उत्पन्न हो जाता है। रूपक, उत्प्रेक्षा अथवा उपमा आदि अलंकारों के प्रयोग से भी बात प्रभाव शाली हो जाती है। रचना में अलंकारों

का भी स्वाभाविक समावेश कर देना चाहिए। शब्द की पुनरुक्ति भाषा में दोष उत्पन्न करती है। रचना में व्यर्थ का एक शब्द का बार-बार आना कानों को बुरा मालूम होता है। अधिकांश शब्दों की पुनरुक्ति भाषा को अरोचक बनाती है अतएव रचना में पुनरुक्ति दोष न होना चाहिये। रचना में ओज की ही मात्रा आवश्यक होती है।

(ख) लालित्य (सुकुमारता)

सुकुमारता या लालित्य आकर्षण का मुख्य गुण है। लालित्य ही आकर्षण का मुख्य कारण है। सुकुमारता सम्पूर्ण रचना में व्याप्त होनी चाहिए। रचना और सम्पूर्ण बातें ठीक होने पर उसमें सुकुमारता हो जाना स्वाभाविक है। रचना में लालित्य लाना ही लेखक का प्रथम कर्तव्य है। इसके लिए लेखक को चाहिए कि उसके लेख की सारी भाषा एक ही ढंग की होनी चाहिए उसमें सब बातों का परस्पर सम्बन्ध हो, सम्बंध बीच में टूटने न पावे। यदि ऐसा कर देगा तो रचना पढ़ने में अरोचक हो जायगी और उसका निर्मल भाव भी नष्ट हो जायगा। रचना में सुकुमारता लाने के लिए साधारण बोल-चाल की कहावतें, मुहाविरे, उद्धरणों तथा उक्तियों का प्रयोग करना चाहिए। रचना में लेखक को जहाँ तक हो, प्रत्येक बात को अत्यन्त निश्चित रूप देना चाहिए। इससे पाठक के सामने एक चित्र सा खिच जाता है और रचना में लालित्य आ जाता है। रचना में सुकुमारता लाने के लिए विषय के बाहर की बातों का ध्यान रखना चाहिए और उसका कोई अंश अनावश्यक लम्बा न हो। रचना में तो विषय की ही बातों का वर्णन करना आवश्यक है। लालित्य-विहीन होने पर सारयुक्त भाषा भी

पाठकों का मन अपनी ओर खींच नहीं सकती। भाषा की शैली का प्रत्येक लेखक को ध्यान रखना चाहिये। कर्कश शब्दों का प्रयोग न करना चाहिए, इससे 'कर्ण-कटु' दोष उत्पन्न होता है और भाषा की सुकुमारता नष्ट हो जाती है। नीचे दर्जे की भाषा में ग्रामीण दोष होने से कर्ण-प्रियता नहीं होती। अर्थागम में सन्देह, अप्रसिद्ध, अर्थ में अनेकार्थ वाची शब्दों का प्रयोग, किसी अर्थ वाले शब्द का दूसरे अर्थ में प्रयोग, कष्टार्थक विचार, अनावश्यक पद-प्रयोग और आवश्यक पदों के अभाव का ध्यान रखना चाहिए। परस्पर अपेक्षा रखने वाले पदों अथवा वाक्यों की अर्थ-समता पर ध्यान रखना चाहिए। कभी भी एक वाक्य को हठात् दूसरे वाक्य के भीतर चेप्रा न करनी चाहिए। अव्यय पदों के ठीक ठीक प्रयोग में भाषा की सुन्दरता बढ़ती है।

५—भाषा-वैचित्र्य

भाषा का एक मुख्य गुण है। वर्णन करने वाले विषय को ऐसे सुन्दर भावों से सुसज्जित करना चाहिए जिससे उसकी सुन्दरता और आकार स्पष्ट दीखने लगे। साधारण भाव वाले पदों से विन्यास में यह स्पष्टता नहीं होती। दृष्टान्तों और अर्थालङ्कार से विषय सुन्दरता और आकार प्रत्यक्ष होता है। भाषा में जितना अनोखापन होगा, भाव में सुन्दरता का उतना ही उदय होगा। इससे रचना में भाषा-वैचित्र्य ही उत्तम गिना जाता है।

६—भाव-प्रतिफलन

जिस प्रकार पानी मिट्टी में समा जाता है, उसी प्रकार भाषा में कहे हुए भाव भी शीघ्र प्रति-फलित हो जाते हैं; अर्थात् रचना पढ़ते ही भाव-समूह पाठकों के मन में समा जायँ। अतएव

भाव को रचना में पूर्णतया व्यक्त करना चाहिये। यह रचना के लिए बहुत उपयोगी है।

रचना सम्बन्धी बातें

१—'इसलिए' 'जो कि' आदि अव्ययों का बार-बार प्रयोग न करना चाहिए। विदेशी भाषाओं के साधारण प्रचलित तथा अत्यन्त आवश्यक पदों का समावेश रचना में करना आवश्यक है। अनावश्यक शब्दों की भरमार न करनी चाहिए। रचना में अशुद्ध पद, शब्दों का कुप्रयोग, अश्लील और अप्रचलित शब्द न आने चाहिये और अत्यन्त नीच, ग्राम्य अथवा प्रान्तीय भाषा का उपयोग कदापि न करना चाहिए।

२—लम्बे-लम्बे समासों का प्रयोग न करना चाहिए और एक ही भाव को बार बार दुहराना न चाहिए। भाव को उपयुक्त पदों से व्यक्त करना चाहिए और वर्णनीय विषय के लाघव और गौरव के विचार से छोटे-बड़े पद लाना आवश्यक है। वाक्य-विन्यास और पद-स्थापन-प्रणाली का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए।

३—बहुत सी असमापिका क्रियाओं द्वारा अधिक वाक्यों को न जोड़ना चाहिए और दो वाक्यों के मिलाने के स्थान में एक बहुत बड़ा और दूसरा बहुत छोटा न होना चाहिए। तत्सम और तद्भव शब्दों का परस्पर समास नहीं होना चाहिये। रचना में क्रोध, विस्मय, विषाद, शील, हर्ष, प्रमाद, निश्चय और ढीठता आदि अर्थ वाले पदों के दुहराने में पुनरुक्ति दोष नहीं होता।

४—यमक, अनुप्रास आदि शब्दालंकारों के बाहुल्य से रचना

को क्लिष्ट न बनाना चाहिए। रचना में अनेक सम-कारक-पद एक वाक्य में आवें तो अन्तिम पद के पूर्व संयोजक या वियोजक अव्यय लाना चाहिए और पहले को छोड़ कर शेष पदों के पहले अल्प-विराम लगाना चाहिए। इन सब बातों का अनुसरण करने से रचना सुन्दर हो सकती है। पाठक इसको भली प्रकार समझ लें। उपर्युक्त बातों का प्रतिपालन करना रचना के लिए परमावश्यक है।

शीर्षक

हर एक पुस्तक, समाचार पत्र, विज्ञापन तथा सूचना पत्र के ऊपर दो-चार शब्द मोटे-मोटे अक्षरों में अवश्य लिखे रहते हैं, इन्हीं शब्दों को हिन्दी में 'शीर्षक', अँगरेज़ी में ' Heading ' और उर्दू में 'सुर्खी', कहते हैं। इनसे लेख का भाव विदित हो जाता है। उसका विषय शीघ्र ही समझ में आ जाता है।

अतएव लेख का शीर्षक बहुत सोच-समझ कर रखना चाहिए। सब से मुख्य बात शीर्षक में ही होती है। इसके पढ़ते ही तुरंत पता चल जाता है कि अमुक लेख में क्या विषय है। इसलिए शीर्षक चाहे छोटा हो चाहे बड़ा हो, परन्तु वह गम्भीर और भावपूर्ण अवश्य हो। जैसे:—

'अनुवाद और व्याख्या', 'हिन्दी भाषा का इतिहास', ' मुद्रा-राक्षस ', 'पद्य-सरोवर ' ' गद्य-रत्नावली ' ; ' वीर केशरी शिवाजी' आदि।

उपर्युक्त शीर्षकों को पढ़ते ही शीघ्र ही पता चल जाता है कि अनुवाद और व्याख्या करने का ढंग है, हिन्दी भाषा का इतिहास है, मुद्राराक्षस नाटक है, कवियों की पद्यों का समूह है,

सुन्दर गद्य के लेखों का समूह है और शिवाजी की जीवनी का वर्णन है।

रचना में शीर्षक चुनने का ज्ञान होना बहुत आवश्यक है क्योंकि बिना शीर्षक के लेख का रचना में कोई आदर नहीं। अतएव शीर्षक रचना का एक आवश्यक अंग है। इसलिए अनुकूल शीर्षक चुनने की योग्यता उत्पन्न करने के लिए अच्छे-अच्छे लेखकों की रचनाओं को पढ़ते समय उनके निश्चित शीर्षक की महत्ता और अनुकूलता तथा उनके औचित्य पर विचार करना चाहिए। लेख को बिना पढ़े हुए शीर्षक निर्धारित न करना चाहिए। शीर्षक फड़कते हुए शब्दों में होना चाहिए, क्योंकि फड़कते हुए शब्द ही मनुष्य को आकर्षित करने वाले हुआ करते हैं। शीर्षक विषयानुसार ही निर्धारित करना रचना में उत्तम गिना जाता है।

अभ्यास

१—शीर्षक किसे कहते हैं? इसका निर्धारित करना रचना में क्यों आवश्यक होता है, सतर्क उत्तर दीजिये।

२—निम्नलिखित शीर्षकों में से प्रत्येक दशा में किस वर्णन का आभास मिलता है?

'काश्मीर-सुषमा', 'मानुषी अंग तथा स्वास्थ्य रक्षा', 'रामेश्वर-धाम की तीर्थयात्रा', 'एक स्त्री का आत्मघात', 'हलदी-घाटी' का युद्ध' और 'भारत के सपूत' आदि।

३—शीर्षक निर्धारित करने में किन-किन बातों की आवश्यकता है?

१—अन्वय

शब्दों को ठीक-ठीक क्रमानुसार रखना अन्वय कहलाता है, जैसे कर्त्ता कहाँ होना चाहिए, कर्म, करण आदि कारक,

क्रिया विशेषण आदि अव्यय तथा क्रिया कहाँ आनी चाहिए। गद्य में तो यह बातें क्रम से पाई ही जाती हैं, परन्तु पद्य में नहीं, क्योंकि छन्दोभङ्ग बचाने के लिए, तुक मिलाने के लिए और पद्य में गति या लय ठीक रखने के लिए शब्दों के स्थान परिवर्तित कर दिये जाते हैं। अतएव यहाँ हम पद्य के ही अन्वय करने का ढंग वर्णन करते हैं।

पद्य का अन्वय करने में हमें पहले शब्दों का क्रम ठीक कर देना चाहिए और तोड़े-मरोड़े शब्दों के शुद्ध रूप कोष्ठकों के अन्दर रख देने चाहिएँ। यदि कोई शब्द छिपे हुए हैं तो उन्हें भी यथास्थान कोष्ठकों के भीतर प्रकट कर देना चाहिए। इसमें अर्थ लिखने की आवश्यकता नहीं है।

उदाहरण :—

(१) रहिमन, यों सुख होत है, बढ़त देखि निज गोत।
ज्यों बड़री अँखियाँ निरखि, आँखिन को सुख होत॥
—कविवर रहीम।

अन्वय—रहिमन (कहते हैं कि) निज गोत (को) बढ़त देखि, यों सुख होत है; ज्यों बड़री अँखिया (को) निरखि, आँखिन को सुख होत (है)।

(२) इहीं आस अटक्यौ रहतु, अलि गुलाब कैं मूल।
ह्वै हैं फेरि बसंत ऋतु, इन डारिनु वे फूल॥
—कविवर बिहारी लाल।

अन्वय—अलि गुलाब कैं मूल, इहीं आस अटक्यौ रहतु; इन डारिनु वे फूल बसंत ऋतु (में) फेरि ह्वै हैं।

(३) कूरम पै कोल, कोल हूँ पै शेष कुंडली है,
कुंडली पै फबी फैल सुफन हजार की।

कहै पद्माकर, त्यौं फनन फबी है भूमि,
भूमि पै फबी है थित रजत-पहार की॥
रजत-पहार पर शंभु सुरनायक हैं,
शंभु पर ज्योति जटाजूट है अपार की।
शंभु जटा जूटन पै चंद की छुटी है छटा,
चंद की छटान पै छटा है गंग धार की।

—कवि पद्माकर।

अन्वय—पद्माकर कहै, कूरम पै कोल (है) कोल पै हूँ, शेष कुंडली है, (और) कुंडली पै हजार सुफन की फैल फबी (है)। भूमि त्यौं फनन (से) फबी है (जैसे कि) रजत-पहार की थित भूमि पै फबी है, रजत-पहार पर सुर नायक शंभु हैं (और) शंभु पर अपार जटाजूट की ज्योति है। शंभु (की) जटाजूटन पै चंद की छटा छूटी है, और चंद की छटान पै गंगधार की छटा (शोभित) है।

अभ्यास

१—नीचे लिखे पद्यों का अन्वय करो :—

(क) दिन दस आदरु पाइकै, करि लै आपु बखानु।
जौ लगि काग ! सराध पखु, तौ लगि तौ सनमानु॥

(ख) " सिच्छक हौं सिगरे जग को,
तिय, ता को कहा अब देति है सिच्छा।
जे तप कै परलोक सुधारत,
संपति की तिनके नहिं इच्छा॥
मेरे हिए हरि के पद-पंकज,
बार हजार लै देखि परिच्छा।

औरन को धन चाहिय, बावरि,
बाँभन को धन केवल भिच्छा " ॥

(ग) तेहि बासर बसि प्रातहि चले सुमिरि रघुनाथ।
राम-दरस की लालसा, भरत सरिस सब साथ ॥

२—अनुवाद

एक भाषा में कही हुई बात को दूसरी भाषा में बदल देने को अनुवाद या ' तर्जुमा ' कहते हैं । इसको दूसरे शब्दों में इस प्रकार भी कह सकते हैं कि किसी एक क्लिष्ट भाषा में कही हुई बात को दूसरी सरल भाषा में उस बात को कह देना 'अनुवाद' कहलाता है ।

अनुवाद दो प्रकार का होता है :—

(१) शब्दानुवाद ।

(२) भावानुवाद ।

(१) शब्दानुवाद—पद्य या गद्य वाक्यों के जटिल शब्दों के बदले में सरल प्रचलित शब्द रख कर गद्य वाक्य लिख देने का नाम ' शब्दानुवाद ' है ।

(२) भावानुवाद—गद्य या पद्य के भाव को लेकर स्वतन्त्र वाक्य रचना करने का नाम ' भावानुवाद ' है । शब्दानुवाद से भावानुवाद अधिक सरल और सुन्दर होता है । शब्दानुवाद में एक-एक शब्द का अनुवाद करना पड़ता है । इससे वर्णित बात की स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है । अतएव इससे भावानुवाद करना अधिक अच्छा है । अनुवाद का यथार्थ में ध्येय भी यही है एक भाषा की वर्णित बात का भाव दूसरी भाषा में प्रकट कर दिया जाय ।

अनुवादक को दोनों भाषाओं का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है। अनुवाद की भाषा मुहाविरेदार फड़कती हुई होनी चाहिए। आज कल अंगरेज़ी, बँगला, उर्दू आदि भाषाओं की अनेकों पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद हो रहा है।

अनुवाद के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

उदाहरण :—

(१) सूर्य्यवंशावतंश श्रीरामचन्द्र जी ने अनायास ही शिव-धनु पर ज्या रोपण कर वैदेही के हृदय को सहसा आकर्षित कर लिया।

शब्दानुवाद—सूर्यवंश में शिरोमणि अर्थात् इस वंश के राजाओं में सर्व-श्रेष्ठ वीर रामचन्द्र जी ने सहज ही में महादेव के धनुष की डोरी चढ़ा कर उसे खींचा, तो उनके वीरत्व को देख कर सीता जी उन पर मोहित हो गईं।

भावानुवाद—श्रीरामचन्द्र जी से धनुष टूटने के अद्भुत कार्य को देख कर सीता जी उन पर मोहित हो गईं।

(२) श्री गुरु चरन-सरोज-रज निज मन-मुकुर सुधारि।
बरनों रघुबर बिमल-जस जो दायक फल-चारि॥

शब्दानुवाद—गुरु के कमल रूपी चरणों की रज से अपने मन रूपी दर्पण को साफ़ करके अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष नामक चारों फलों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) के देने वाले श्रीरामचन्द्र जी के सुन्दर यश का वर्णन करता हूँ।

भावानुवाद—पहले मैं गुरु जी की बंदना करता हूँ, तत्पश्चात् चारों फल (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) देने वाले श्रीरामचन्द्र जी के सुन्दर यश का वर्णन करता हूँ।

(३) चलितं चित्तं चलितं वृत्तम् चलितं जीवन यौवनम् ।
चलाचलं हि निखिलमेकोधर्मः सुनिश्चलः ।

शब्दानुवाद—चित्त भी चंचल है, धन भी चंचल है, और जिन्दगी तथा यौवनावस्था भी चंचल है, संसार की लगभग सभी सुन्दर वस्तुएँ चलायमान हैं परन्तु केवल एक धर्म ही ऐसी वस्तु है, जो स्थिर है ।

भावानुवाद—संसार में सभी वस्तुएँ चलायमान और क्षण-भंगुर हैं परन्तु एक धर्म ही स्थिर और तीनों कालों में रहने वाला है ।

(४) उदाहरण के लिए हम अँगरेज़ी गद्य के कुछ अंश हिन्दी में अनुवाद करके लिखते हैं :—

(a) "Of all the forces that have worked and are still working to mould the destinies of human race, none certainly is more potent than the manifestation of Laws of Nature; and no search has been dearer to the human heart as the study of the stupendous phenomena of Nature."—
Vivekanand.

हिन्दी अनुवाद :—मनुष्य के भाग्य को योग्य स्थिति में लाने के लिये, अभी तक जो जो बातें विदित हुई हैं या हो रही हैं, उनमें से प्राकृतिक नियमों को जानने या उनका रहस्य समझने के समान और कोई बात श्रेष्ठ नहीं समझ पड़ती । और मनुष्यों के लिये सृष्टि के भव्य स्वरूप का निरीक्षण करने की अपेक्षा और कोई दूसरी बात प्रिय नहीं जान पड़ती ।

—विवेकानन्द

(b) " The measure of goodness or badness of an act is almost always its expediency or inexpediency, and that conscience deals with accustomed morality and not with expediency."

हिन्दी अनुवाद :—भले या बुरे कार्य का निर्णय सामयिक आवश्यकता से किया जा सकता है न कि अन्तःकरण के संकेतों से। अन्तःकरण आवश्यक कार्य करने का संकेत नहीं करता, वह केवल प्रचलित धर्म या कार्य जिसे करने का उसे अभ्यास हो गया है— करने का इशारा किया करता है।

(c) The nation is an organism in struggle to survive, and its success in that struggle depends on the strong increase of the best elements of its population.

हिन्दी अनुवाद—इस कर्म क्षेत्र संसार में प्रत्येक राष्ट्र अपने अस्तित्व के लिए युद्ध कर रहा है। विजय का प्राप्त होना उसके लोक समुदाय की व्यक्तिगत उत्तमता पर निर्भर है।

(d) " God's Law in Nature is higher than the written word of man, however it is claimed to be inspired, and that when it comes to a contest between the two then it is the law that cannot be forged that should be followed—that Law of Nature which is supremely and undeniably the Law of God "—

Annie Besant.

हिन्दी अनुवाद—परमात्मा का बनाया हुआ प्रकृति का

नियम मनुष्य के बनाये हुए नियमों से सदैव अधिक माननीय हैं, फिर वे नियम चाहे कैसे ही ब्रह्मज्ञानी मनुष्य के बनाये हुए क्यों न हों। और जहाँ इन दोनों नियमों में मतभेद हो वहाँ वही नियम माना जाना चाहिए जिसे कोई दोष दूषित न कर सकता हो। ऐसा अभेद, अटल और अमिश्रित केवल प्रकृति का नियम है, जो कि निसन्देह परमब्रह्म परमात्मा का नियम है।

(५) उदाहरण के लिए अँगरेज़ी कुछ पद्यों के नमूने अनुवादित करके दिए जाते हैं :—

(a) Freedom's battle once begun.
Though baffled often, is even won.'

हिन्दी अनुवाद—स्वतंत्रता का युद्ध यदि एक दफा आरम्भ हो जाता है, तो उसमें अन्त में विजय अवश्य होती है, यद्यपि उसमें बीच में शिथिलता भले ही आ जावे।

(b) Once printing may not suffice,
Though printing be not in vain;
And the memory failing once or twice,
May learn, if we print again.

हिन्दी अनुवाद—यदि किसी विषय का दोबारा लिखना व्यर्थ न हो तो उसका एक बार ही लिखना काफी नहीं है। यदि हम उसे दोबारा लिख दें तो एक दो बार पढ़कर भूल जाने वाली स्मरण शक्ति उससे लाभ उठा सकती है।

(c) If everyone looks to his own reformation,
How very easy to reform a nation.

हिन्दी अनुवाद—यदि किसी राष्ट्र का प्रत्येक जन अपने सुधार का प्रबन्ध करे तो उस राष्ट्र का सुधार बहुत ही सहज हो जाय।

(d) Here rests his head upon the lap of earth;
A youth to fortune and to fame unknown;
Fair science frowned not on his humble birth;
And melancholy marked him for her own.

हिन्दी अनुवाद—यहाँ पृथ्वी माता की गोद में उसका मस्तिष्क विश्राम कर रहा है अर्थात् ग्रे की कब्र इस स्थान पर बनी हुई है, जिसमें उसे दफन किया गया था। वह दरिद्र तथा प्रशंसारहित था। यद्यपि उसका जन्म छोटे (दलाल) परिवार में हुआ था, तो भी उस पर विद्या देवी की महान् कृपा थी, परन्तु उदासीनता ने उसके ऊपर अपना अधिकार जमा रखा था।

नोट :—यह पंक्तियाँ "Grey's Elegy" नामक पद्य में से ली गई हैं।

(६) नीचे लिखे हुए वाक्यों का अनुवाद करो :—

(क) बिना भाई के संसार एक अरण्य मात्र है।

(ख) उसके हाथ ब्राह्मण के रक्त से दूषित हो गये।

(ग) जीवन व्यर्थ नष्ट की चिन्ता होते ही मैं एक मात्र अधीर हो जाता हूँ।

अनुवाद

(क) वन में वास करने से जितना कष्ट होता है, बिना भाई के संसार में भी उतना ही कष्ट होता है।

(ख) उसने एक ब्राह्मण को मार डाला।

(ग) यह बात जब मेरे ध्यान में आती है कि हाय! मेरा जीवन यों ही नष्ट हुआ, एक भी अच्छा काम न कर पाया, तो मैं अत्यन्त घबड़ा जाता हूँ।

अनुवाद करने में अग्रलिखित बातों पर ध्यान रखना आवश्यक है :—

१—जिस गद्य तथा पद्य का अनुवाद करना हो, उसे कई बार ध्यान से पढ़ो फिर उसके सम्पूर्ण भावों को भली प्रकार समझ लेना चाहिये।

२—उसके वाक्यों के भावों को, जो मिश्रित या संयुक्त वाक्यों में है और कुछ गम्भीर हैं, उनको स्पष्ट कर अपने छोटे-छोटे वाक्यों में लिखना चाहिये।

३—जिस लेख तथा कविता का अनुवाद करना है उसके कोई भाव छूटने न पावें।

४—अनुवाद की भाषा सरल और स्पष्ट वा मुहाविरेदार होनी चाहिए और उसमें साधारण वाक्यों का प्रयोग करना चाहिए।

५—अनुवाद में चुन कर ऐसे शब्द रखने चाहिये जो विशेष अवसर पर विशेष भावों को भली प्रकार व्यक्त करते हों। अधिकांश अनुवाद में भावानुवाद ही लिखना चाहिये।

६—अनुवाद की भाषा में वह सरलता तथा स्वाभाविकता हो जो कि मौलिक लिखे हुए लेखों में होती है अर्थात् अनुवाद की भाषा पढ़ने से यह ज्ञात न हो कि यह अनुवाद है वरन् पढ़ने में भाषा में एकरूपता का प्रवाह होना चाहिए। जैसा कि अपनी लिखी हुई चीज़ में होता है।

अभ्यास

१—अनुवाद किसे कहते हैं? इसके कितने भेद हैं! सोदाहरण स्पष्ट समझाओ।

२—अग्रांकित पंक्तियों का शब्दानुवाद और भावानुवाद दोनों पृथक्-पृथक् करो।

(अ) नैया मेरी तनक सी, बोझी पाथर भार।
चहुँदिशि अति भौंरैं उठत, केवट है मतवार॥
केवट है मतवार, नाव मँझधारहिं आनी।
आँधी उठत प्रचंड, तेहु पर बरसत पानी॥
कहि गिरिधर कविराय, नाथ हो तुमहिं खिवैया।
उठइ दया को डाँड़, घाट पर आवैं नैया॥

(ब) पुत्र हरिश्चन्द्र ! सावधान; यही अन्तिम परीक्षा है। तुम्हारे पुरुषा इक्ष्वाकु से लेकर त्रिशंकु-पर्यन्त आकाश में नेत्र भरे खड़े हुए एक टक तुम्हारा मुख देख रहे हैं। आज तक इस वंश में ऐसा दुःख किसी को नहीं हुआ था। ऐसा न हो कि इनका सिर नीचा हो, अपने धैर्य का स्मरण करो।

(स) टूटै टूटन हार तरु वायुहिं दीजत दोष।
त्यों अब हर के धनुष को हम पर कीजत रोष॥
हम पर कीजत रोष काल-गति जानि न जाई।
होनहार ह्वै रहै मिटै मेटे न मिटाई॥
होनहार ह्वै रहै मोह मद सब को छूटै।
होय तिनूका वज्र-वज्र तिनुका सम टूटै॥

(३) नीचे लिखी हुई अँग्रेज़ी गद्य तथा पद्य का हिन्दी अनुवाद करो :—

(1) (a) Life is not a bed of roses, but neither need it be a field of battle. Some people waste their lives in wishing for what they know they cannot have, in regretting what they cannot avail, and talking of what they do not understand.

In many cases what we call evil is good misapplied or carried to excess. A wheel or even a cog, out of place, throws the whole machinery out of gear, and if we place ourselves out of harmony with the constitution of the universe, we must expect to suffer accordingly. Courage in excess becomes foolhardiness; affection, weakness; thrift, avarice. It is proverbial that what is one man's meat is another man's poison.

(b) The lecturer's work is to win the hearers to study rather than to give out cut and dried opinions. I am acting as a sign post to show you the road along which your own feet must carry you.

(c) Fundamentally, as in almost every aspect of the two civilizations, no true comparisons can be instituted between the orient and the occident. Each starts from a different origin, aims at a different object, and arrives at a different end. It is possible, however, to define certain qualities of dissimilarity in the two arts, and by means of these to realise some of the broad distinguishing features of Indian painting.

(a) Ambition must wait for the years,

Ere hoping to win the approval
Of a world that looks on through its fears.

(b) Beauty is truth, truth beauty
That is all ye know on earth, and all ye need to know.

(c) If thou art worn and hard beset
With sorrow, that thou wouldest forget
If thou would'st read a lesson, that would keep
Thy heart from fainting, and thy soul from sleep
Go to the woods and hills ! No tears
Dim the sweet look that nature wears.

(५) निम्नलिखित कहावतों का अर्थ लिखो और उन पर लेख भी लिखो।

(1) Might is right.
(2) The paths of glory lead but to the grave.
(3) Cleanliness is next to Godliness.
(4) A little knowledge is dangerous thing;
(5) Misfortunes never come alone.

(६) निम्नलिखित का भावार्थ दो पंक्तियों में लिखो :—

(a) The glories of our blood and state,
Are shadows, not substantial things.
There is no armour against fate ;
Death lays his icy hand on kings.

(b) Dust unto dust and under dust to lie.
(c) Dust thou art, and to dust thou returnest.
(d) The increased birth-rate is only another proof of the (Indian) people.

Everywhere it has been seen that the inhabitants of the poorest quarters are the most prolific.

(e) " Slaves suckle slaves; pure and enthusiastic women bring forth saints and heroes. All history attest the fact that great men had great mothers.

(७) निम्नलिखित अवतरणों का हिन्दी में अनुवाद करो :—

(क) येषां न विद्या न तपो न दानम् ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः
ते मृत्यु लोके भुविभार भूता मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति ॥

(ख) एक शाहंशाह की सल्तनत में बड़ा अमनो अमान था। वहाँ की सारी रिआया बड़ी बाग़ बाग़ थी। वहाँ के बाशिन्दा ख़ूब मेल-जोल से रहते थे। वहाँ पर रहजनों और कज्ज़ाकों का नामोनिशां भी न था। वह सल्तनत अज़हद तारीफ़ के लायक थी।

३–वाच्यार्थ या अर्थ

दिये हुए शब्दों का जो सीधा-सादा अर्थ निकलता है, उसे वाच्यार्थ कहते हैं। अर्थ में कठिन-कठिन शब्दों के अर्थ अन्वय स्पष्ट कर दिये जाते हैं। क्लिष्ट वाक्यों के गुप्त गम्भीर भावों को सरल वाक्यों में बदल दिया जाता है। उपमा, रूपक आदि अलंकारों तथा मुहाविरों को साधारण रीति से समझाया जाता है। वाच्यार्थ में नया भाव लाने की आवश्यकता नहीं है और दिया हुआ कोई भाव छोड़ना न चाहिए। यदि कोई प्रसंग हो तो उसे थोड़ा सा खोल देना चाहिए। जहाँ तक हो सके ऐसा स्पष्ट अर्थ अपने शब्दों के द्वारा देना चाहिए, जिसमें कोई बात

छूटने न पावे। यदि कोई युक्ति-विशेष हो तो उसका साधारण अर्थ दे देना चाहिए।

जैसे :—(क)

आगे चना गुरु मात दिये ते लिये तुम चाबि हमें नहिं दीने।
श्याम कही मुसकाय सुदामा सों चोरी कि बानि में हौजु प्रवीने॥
गाँठरी काँख में चापि रहे तुम खोलत नाहिं सुधारस भीने।
पाछिली बानि अजौं न तजो तुम वैसे ही भाभी के तंदुल कीने॥

प्रसंग

द्वापर में सुदामा नामक एक दरिद्री ब्राह्मण थे। वह भगवान् कृष्ण के सहपाठी थे। श्रीकृष्ण भी उन्हें बड़े भाई के सदृश मानते थे। भिक्षा से जब पूर न पड़ा तो सुदामा जी अपनी स्त्री के अनुरोध से द्वारिकापुरी में भगवान् कृष्ण के पास पहुँचे। चलते समय उनकी स्त्री ने थोड़े से चाँवल भेंट के लिए बाँध दिये थे, क्योंकि और कुछ उनके पास न था। चावलों की भेंट को ना चीज़ समझ कर सुदामा जी लज्जा वश देते न थे, तब कृष्ण ने उनको उलाहना दिया।

अर्थ

"हँस कर भगवान् कृष्ण ने कहा कि पढ़ते समय (जब गुरु आज्ञा से जंगल में लकड़ी बीनने गये थे) गुरु माता ने जो चना दिये थे आपने हमें नहीं दिये थे; चुरा के आप ही ने खा लिये थे। आप चोरी करने में बड़े चतुर हैं। आपने पिछली टेव अब तक नहीं छोड़ी। भाभी के दिये हुए अमृत के रस में सने हुए चावलों को भी आप काँख में दबाये हुए बैठे हो खोलते नहीं हो।"

(ख) " आप दुखी न हों, इस राज्य को भरत को दे दें। हम सुख राज्य किंवा प्राण यहाँ तक कि स्वर्ग की भी इच्छा नहीं करते; हम सत्यबद्ध हैं, आपके सत्य को पालन करेंगे। पिता देवताओं से भी अधिक पूज्य हैं सो हम उन पितृदेव की आज्ञा पालन करने में कुछ भी कष्ट नहीं समझेंगे। चौदह वर्ष के पश्चात् लौट कर हम पुनः आप के श्री चरणों की बंदना करेंगे।"

प्रसंग

कैकई से वचन बद्ध होकर भी राजा दशरथ श्री रामचन्द्र जी को वनवास देने में हिचकिचाते हैं। वह बड़े ही व्याकुल हैं। उस समय रामचन्द्र जी उन्हें समझाते हैं :—

अर्थ

" हे पिता ! आप प्रसन्नता पूर्वक भरत को राज्य दे दीजिये। मैं सांसारिक सुख क्या स्वर्ग की भी इच्छा नहीं रखता, यहाँ तक कि मुझे प्राणों की भी परवा नहीं है। मैं सत्य से बँधा हुआ हूँ। सत्य का पालन करूँगा। भला देव तुल्य पूज्य पिता की आज्ञा मानने में कभी दुःख हो सकता है। चौदह वर्ष बाद लौट कर आपके सुन्दर चरणों का पूजन करूँगा।"

अभ्यास

१—नीचे लिखे अवतरणों का वाच्यार्थ लिखो :—

(क) कैसे छोटे नरनि तें, सरत बड़नि के काम।
मढ्यो दमामा जात कहुँ, लै चूहे के चाम॥

(ख) बेर-बेर बेर लै सराहैं बेर बेर बहु,
रसिक बिहारी देत बन्धु कहँ फेर फेर।

चाखि चाखि भाषैं यह बहुते महान मीठौ,
लेहु तौ लषण यों बखानत हैं हेर हेर॥
बेर-बेर देवें बेर सवरी सुबेर बेर,
तौऊ रघुबीर बेर बेर तिहि टेर टेर।
बेर बेर जनि लखो बेर बेर जनि लावो,
बेर बेर जनि लावो बेर लावो कहैं बेर बेर॥

(ग) प्रीति वही प्रशंसनीय है जा निःस्वार्थ हो। किसी उपकार अथवा उत्तमता की आशा से प्रीति करना प्रेम का निकृष्ट मार्ग है। निज प्रीति पात्र के अनजान में और उससे अपमानित होने पर जो प्रेम ध्रुव समान अटल रहता है, विबुधों की दृष्टि में वही उत्तम और उत्कृष्ट गिना जाता है।

४—भावार्थ

भावार्थ या भाव का संक्षेपार्थ, आशय, तात्पर्य या तात्पर्यार्थ, मतलब, अभिप्राय, सारार्थ, सरलार्थ भी कहते हैं। इन शब्दों में प्रायः थोड़ा ही थोड़ा अन्तर है। इनमें भाव का ही देना आवश्यक होता है; परन्तु एक-एक शब्द का अलग अर्थ देना आवश्यक नहीं होता। इन सब का अभिप्राय यह है कि दी हुई बात के आशय को लिखा जाये। इन सब में शब्दों के अर्थों की चिन्ता न करनी चाहिए। केवल लेखक के भाव को अपने थोड़े से शब्दों में व्यक्त कर देना चाहिए। लेखक के विचारों को भावार्थ वाला ही स्पष्ट बतला सकता है क्योंकि वह शब्दों की ओर कम ध्यान देता है, वह केवल भावों को ही खोजता है। वह अलङ्कारों आदि की गुत्थियाँ सुलझाने में वाक्यों की क्लिष्टता, अन्तर्कथाएँ व प्रसंगों की दुरूहता दूर करने में बहुत सिर नहीं

मारता, वह केवल इन सब के भाव को दो एक शब्दों द्वारा ही प्रकट कर देता है। वह वे भाव जो लेखक के हृदय की बातें, शब्दों के भीतर छिपी हैं, वह स्पष्ट उन्हें अपने शब्दों में खोल कर रखता है। कोई बात जो वाच्यार्थ से प्रकट नहीं होती वह इन अर्थों में प्रकट कर दी जाती है। भावार्थ को जहाँ तक हो सके बड़ा न करना चाहिए। इसको छोटा ही रखना आवश्यक है। जैसे :—

सीस पगा न झँगा तन में प्रभु ! जानै को आहि, बसै केहि ग्रामा।
धोती फटी-सी लटी-दुपटी अरु पाँय उपानह की नहिं सामा॥
द्वार खरो द्विज दुर्वल देखि रहो चकि सो बसुधा अभिरामा।
पूछत दीनदयाल को धाम बतावत आपनो नाम सुदामा॥

भावार्थ—एक क्षीण शरीर ब्राह्मण जो फटे वस्त्र पहिने हुए नंगे पैरों है वह दरवाज़े पर खड़ा हुआ दीनदयाल श्रीकृष्ण चन्द्र जी का नाम पूछ रहा है और अपना नाम सुदामा बतला रहा है।

अभ्यास

१—नीचे लिखे अवतरणों का भावार्थ लिखो :—

(क) कहि रहीम संपति सगे, बनत बहुत बहु रीति।
विपति कसौटी जे कसे, तेही साँचे मीत॥

(ख) सेस गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरंतर गावैं।
जाहि अनादि अनंत अखंड अछेद अभेद सुबेद बतावैं॥
नारद से सुक व्यास रटैं पचिहारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥

५—व्याख्या

व्याख्या में बहुत कुछ लिखने की आवश्यकता है। इसमें

वाच्यार्थ और भावार्थ दोनों ही शामिल हैं। व्याख्या में किसी दिए हुए छन्द या अवतरण का पूर्णरूपेण प्रकरण या प्रसंग बताया जाता है। इसमें जटिल शब्दों और क्लिष्ट वाक्यों के अर्थों को समझाना चाहिए। समझाने में आवश्यकतानुसार अपनी ओर से उदाहरण भी दे देना चाहिए। उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का पूर्ण विवरण देना चाहिए। यदि अन्तर कथाओं की ओर संकेत हो तो उन्हें संक्षिप्त रूप से अंकित करना चाहिए। फिर उन गूढार्थों अथवा व्यंग्यार्थों को लिखना चाहिए, जो शब्दों में ऊपर से स्पष्ट नहीं होते अथवा जो लेखक के मन में गुप्त भाव हैं। व्याख्या का साधारण अर्थ विशद रूप से समझाना है। व्याख्या लिखने में कमी न करना चाहिए। किसी अवतरण अथवा छन्द का आशय अथवा भावार्थ लिखने के उपरान्त उससे किसी प्रकार की यदि शिक्षा मिलती हो उसे भी अंकित करना चाहिए। कभी-कभी भावार्थ अथवा तात्पर्यार्थ पहले लिखकर फिर और व्याख्या की जाती है और कभी-कभी पूर्ण व्याख्या करने के उपरान्त भावार्थ तथा तात्पर्यार्थ आदि लिखना पड़ता है। व्याख्या में विशेष शब्दों का भी विवरण देना चाहिए। व्याख्या करने में जिन-जिन बातों की आवश्यकता पड़ती जाती है उन सब का यथायोग्य ही समावेश करना पड़ता है। व्याख्या में प्रत्येक बात को खोल-खोल कर स्पष्ट किया जाता है। किसी की व्याख्या पढ़ने से पाठकों को उसके सम्बन्ध में कुछ जानने की अभिलाषा नहीं रहती। व्याख्या ही रचना को सौन्दर्य्य देने वाली होती है। अतएव छात्रों को व्याख्या पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

जैसेः—(क) "पुत्रवती युवती जग सोई।
रघुवर भक्त जासु सुत होई॥

नतरु बाँझ भल बादि बियानी ।
राम बिमुख सुत ते हितहानी ॥
तुम्हरेहिं भाग्य राम बन जाहीं ।
दूसर हेत तात कछु नाहीं ॥"

व्याख्याः—जब लक्ष्मण जी श्रीरामचन्द्र जी को सीता जी सहित वन जाने के लिए तैय्यार देखते हैं तो वह श्रीरामचन्द्र से अनुरोध करते हैं कि मैं भी आप के साथ वन चलूँगा। मुझे भी अपने साथ ले चलिए। श्रीरामचन्द्र जी लक्ष्मण जी को बहुत समझाते हैं, परन्तु वह प्रेम-वश नहीं मानते। वह बारम्बार वन ले चलने का ही अनुरोध करते हैं। तब श्रीरामचन्द्र जी उनकी भक्ति देखकर कहते हैं कि अच्छा जाओ तुम अपनी माता से मेरे साथ वन चलने के लिए आज्ञा माँग आओ। इतना सुनते ही लक्ष्मण जी अपनी माता सुमित्रा के पास जाते हैं और वहाँ पहुँच कर अपनी माता से आज्ञा माँगते हैं तब उनकी माता उनको कैसा मनोहर उत्तर देती हैं—वह कहती हैं कि हे पुत्र लक्ष्मण! संसार में पुत्रवाली वही स्त्री है जिसका कि पुत्र श्रीरामचन्द्र जी का भक्त हो (यदि उस स्त्री का पुत्र ऐसा नहीं है तो) उसने तो वृथा ही प्रसूत की पीड़ा को सहन किया अर्थात् व्यर्थ ही पुत्र उत्पन्न किया क्योंकि श्रीरामचन्द्र जी से विमुख रहने वाले पुत्र से उसके हित की हानि होती है (ऐसा पुत्र किसी को सुख नहीं दे सकता और न स्वयं ही सुख पा सकता है) इन सब बातों के होते हुए तुम्हारे लिए दूसरी बात यह अच्छी है कि रामचन्द्र जी तो तुम्हारे भाग्य से ही वन को जा रहे हैं। हे पुत्र लक्ष्मण! उनके वन जाने का तुम्हारे अतिरिक्त और दूसरा कारण नहीं है (देखो, तुम शेषावतार हो, शेष के ऊपर पृथ्वी है और पृथ्वी पर राक्षसों का बोझ बढ़ रहा है। वह राक्षसों को

मारेंगे तो तुम्हारा बोझ हलका हो जायगा। इसमें तुम्हारा ही भला है) इससे हे पुत्र! जो तुमने सोचा है वह ठीक है।

उदाहरण—(ख)

" राम इस बात को सुन कर अत्यन्त क्रोधित हुए और कहने लगे—वत्स! तुम हमारे सामने यह बात फिर न कहना, इस बात के सुनते ही, ध्यान आते ही मैं बहुत लज्जित होता हूँ!"

व्याख्याः—अन्तःपुर में सीता के मनोरंजन के लिये जिस समय चित्रकार रामचन्द्रजी के कार्यों का चित्र-पट दिखा रहा था, उस समय लक्ष्मण सीता जी के अग्नि-परीक्षा काण्ड की ओर संकेत करके उसकी चरचा करने लगे। अपने पहिले किए हुए कठोर व्यवहार से दुःखित होकर रामचन्द्र जी लक्ष्मण जी से प्रेम-पूर्वक बोले—"ऐसे सरल और पवित्र स्वभाव वाली सीता जी की अति कठोर अग्नि-परीक्षा हुई। हमारे सामने तुम्हारे जैसे भ्रातृ-भक्त भाई द्वारा ऐसी बात कहा जाना ठीक नहीं। इस अग्नि-परीक्षा का जब मुझे ध्यान आता है, मेरा हृदय अत्यन्त दुःख से भर जाता है और बड़ी लाज आती है; अतः अब इस बात को फिर मत कहना।"

अभ्यास

१—नीचे लिखे गद्य की व्याख्या करो :—

दुर्गा अजीतसिंह की ओर संकेत करके—"ज्वर ही नहीं किन्तु आज मेरी दशा ही विचित्र है, प्राणनाथ! आज मुझे मेरा अन्त समय प्रतीत होता है, मेरा प्राण घुटा जाता है।"

२—नीचे लिखे की व्याख्या इस प्रकार करो कि कोई भाव छूटने न पावें।

(क) घाम धूम नीर औ समीर मिले पाई देह,
ऐसो घन कैसे इत काज भुगतावेगो ?
नेह कौ संदेसो हाथ चातुर पठैवे जोग,
बादर, कहोजी, ताहि कैसे के सुनावेगो ?
बाढ़ी उत्कण्ठा, जक्ष बुद्धि बिसरानी सब,
वाही सों निहोरो, जानि काज कर आवेगो।
कामातुर होत है सदाई मति-हीन, तिन्हें,
चेत औ अचेत माहिं भेद कहाँ पावेगो ॥

अर्थ संदर्भादि के भेद

एक ही पद्य में अर्थ, सरलार्थ और भावार्थ आदि का स्पष्टी करण।

बहुधा परीक्षाओं में पद्यों का कभी अर्थ, कभी सरलार्थ, कभी भावार्थ आदि पूछा जाता है। हमारे अबोध विद्यार्थी सब का एक ही आशय मान कर पद्य का अर्थ मात्र लिख देते हैं। और अपनी समझ में सब कुछ ठीक होने पर भी नम्बर बहुत कम तथा कभी कभी बिलकुल ही नहीं पाते। अतएव हम उनके पथ-प्रदर्शन के लिए एक ही पद्य के विविध अर्थों के नमूने देते हैं।

मानुष हौं तो वही 'रसखानि' बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पशु हौं तौ कहा बस मेरो चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन ॥
पाहन हौं तौ वही गिरि को जो धरो कर छत्र पुरन्दर धारन।
जो खग हौं तौ बसेरो करौं मिलि कालिंदी कूल कदंब की डारन ॥

संदर्भ

रसखानि कवि कृष्ण-प्रेम में निमग्न हो भगवान् से प्रार्थना करता है।

अर्थ

यदि मैं मनुष्य होऊँ तो वही जिससे ब्रज-मण्डल में गोकुल गाँव के गोपों के साथ निवास करूँ। मैं 'पशु-योनि' में भी उत्पन्न हो सकता हूँ, क्योंकि जन्म लेना मेरे अधिकार में नहीं, परन्तु इतना चाहता हूँ, कि पशु होने पर नित्य नंद की गायों में चरता रहूँ। यदि पत्थर होना पड़े तो उसी पहाड़ का जिसे भगवान् ने इन्द्र के कारण अपने हाथ का छाता बना लिया था। यदि पक्षी बनना पड़े तो यमुना किनारे के कदम्बों की डालियों में बसेरा लूँ।

आशय

रसखानि कृष्ण-भक्ति में तल्लीन है। उसने भगवान् की लीला देखने के लिए पुनर्जन्म की लालसा भी बना रखी है। उसकी इच्छा है कि मैं गोकुल के ग्वालों में जन्म लूँ। यदि कर्म-वश जड़ जीवों में भी जन्म लेना पड़े तो नन्द बाबा की गायों में से एक गाय होऊँ। गोवर्द्धन पर्वत का एक पत्थर बनूँ। और कालिंदी के किनारे कदम्बों पर बसेरा लेने वाला एक पक्षी बनूँ।

अभिप्राय

रसखानि का अंतरात्मा कृष्ण-रंग में रँगा हुआ है। वह उनकी चरित्र लीला की दर्शनाभिलाषा से पुनर्जन्म की भी परवाह नहीं करता। वह जड़-चेतन में से किसी भी योनि में जन्म लेना सहर्ष स्वीकार करता है।

सार

रसखानि का हृदय कृष्ण-प्रेम से परिपूर्ण है। वह उस प्रेम का आनन्द पुनर्जन्मों में से छूटने के लिए मनुष्य, पक्षी, पशु और पत्थर में से किसी भी योनि में जन्म लेने को तैयार है।

सरलार्थ

रसखानि कवि कृष्ण-प्रेम ही को सब कुछ समझता है। अतः प्रेम का नाता बनाये रखने के लिए वह प्रार्थना करता है कि इस नाशवान् शरीर से अलग होने पर यदि मुझे मनुष्य योनि में उत्पन्न होना पड़े तो मैं गोकुल के ग्वालों में उत्पन्न होऊँ। मनुष्य बनना भी मेरे अधिकार से बाहर की बात है। इसलिए यदि मनुष्य-शरीर न मिले, कर्मानुसार पशु ही बनूँ तो मेरी प्रार्थना है कि नंद बाबा की गायों में ही रहूँ। यदि पत्थर ही बनूँ तो गोवर्द्धन पर्वत का ही बनूँ, जिसे भगवान् ने स्वयं अपने हाथ में छाते की तरह लेकर इन्द्र-वर्षा से व्रज की रक्षा की थी, और यदि पक्षियों में जन्म लूँ तो यमुना जी के किनारे के कदम्बों पर बसेरा करूँ, जिससे आप का प्रेम सुलभ हो जाय।

संक्षिप्तार्थ

रसखानि कहता है कि पुनर्जन्म में मैं यदि मनुष्य होऊँ तो गोकुल के ग्वालों में निवास करूँ। यदि पशु बनूँ तो नंद की गायों के बीच चरता फिरूँ। पत्थर होऊँ तो गोवर्द्धन पर्वत का जिसे उठा कर भगवान् ने इन्द्र-वर्षा से व्रज की रक्षा की थी। यदि पक्षी बनूँ तो यमुना के किनारे के कदम्बों पर बसेरा करूँ।

भावार्थ

कृष्ण ने गोकुल के गायों के साथ रहकर अपनी लीलाएँ की थीं। नंद बाबा के यहाँ रहकर गायें चराई थीं। गोवर्द्धन पर्वत

से ब्रज की रक्षा की थी और कदम्ब के पेड़ों पर चढ़ कर वंशी बजाई थी। क्योंकि इन वस्तुओं का कृष्ण-लीला से विशेष-सम्बन्ध है। इसलिए रसखानि इनमें से कोई भी वस्तु बनने की इच्छा करके कृष्ण-प्रेम प्रदर्शित करता है।

व्याख्या

रसखानि कृष्ण पर मुग्ध है। वह जानता है कि मैं मर्त्य हूँ; इस लिए मेरी मृत्यु अवश्य होगी। पुनर्जन्म का भी उसे विश्वास है; अतः कृष्ण से प्रार्थना करता है कि यदि मेरा जन्म मनुष्य-योनि में हो तो मैं गोकुल के ग्वालों के साथ ब्रज में बास करूँ। यदि भाग्य-वश पशु होऊँ तो नंद बाबा की गायों में चरता रहूँ। यदि पत्थर ही बनूँ तो उसी गोवर्द्धन पर्वत का जिसे आपने उठा कर इन्द्र-प्रकोप से होने वाली वर्षा से ब्रज-वासियों की रक्षा की थी। और यदि प्रारब्ध के अनुसार पक्षी ही बनना पड़े तो यमुना किनारे के कदम्बों की डालियों पर घोंसला बनाऊँ।

विशेष

कृष्ण ने गोकुल-वासी ग्वालों के साथ मिल कर रास क्रीड़ाएँ की थीं, नन्द बाबा के यहाँ रहकर उनकी गायें चराई थीं; और यमुना-किनारे के कदम्बों पर चढ़ कर अनेक बार बंशी बजाई थी। इसलिए इन्हीं वस्तुओं में उत्पन्न होकर उक्त कवि भी कृष्ण-प्रेम की चासनी चाखना चाहता है।

अलङ्कार

‘बसौं ब्रज; गोकुल गाँव के ग्वारन; कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन’ में क्रमशः ब ग और ‘क’ का अनुप्रास अलंकार है।

अंतर्कथा

ब्रजवासी इन्द्र की पूजा किया करते थे। कृष्ण ने उसकी

पूजा बन्द करा दी। इस से अप्रसन्न होकर इन्द्र ने व्रज के ऊपर घोर जल-वृष्टि की। व्रजवासी व्याकुल हुए। तब कृष्ण भगवान् ने गोवर्द्धन को अपनी कनिष्ठा अंगुली पर उठा कर व्रज की रक्षा की, निदान इन्द्र हार मान कर बैठ रहा।

अभ्यास

नीचे लिखी पद्यों के अर्थ को विविध अर्थों में लिखो :—

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहुँ सिद्धि नवो निधि को सुख नंद की गाइ चराइ बिसारौं॥
'रसखानि' कबौं इन आँखिन सों व्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिक हौं कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर बारौं॥

६—अनुलेख

अनुलेख का साधारण अर्थ 'बोलकर लिखाने' का है। अनुलेख में अध्यापक या दूसरा कोई आदमी कुछ बोलता जाता है और विद्यार्थी उसे लिखते जाते हैं। याद रखना चाहिए कि जो कुछ हम सुनते हैं वह कान की शक्ति से कम और बुद्धि की शक्ति से अधिक, समझते हैं। जब हम किसी व्यक्ति को ऐसी भाषा बोलते सुनते हैं जिसको हम नहीं जानते हों तो उसके शब्द और अक्षर हमें साफ़ नहीं सुनाई देते इसका कारण यह है कि हम उस भाषा को समझते नहीं हैं। इसलिए अनुलेख की शुद्धि के लिए यह आवश्यक है कि जो कुछ बोला जा रहा है उसे हम समझते हों। इसी को 'इम्ला' तथा 'इबारत' भी कहते हैं।

अनुलेख में जो कुछ लिखना होता है उसे पहले एक बार या दो बार पढ़कर सुना दिया जाता है, ताकि विद्यार्थी लोग उसका

विषय समझ लें, तब थोड़ा-थोड़ा कर के बोला जाता है। बोलने में इस बात का ध्यान रक्खा जाता है कि जो शब्द-समूह एक बार बोला जाय वह सुसम्बद्ध हो। और प्रत्येक शब्द-समूह को तीन तीन बार बोला जाय। परन्तु अध्यापकों को चाहिए कि वह छात्रों से अनुलेख लिखते समय 'न बोलने' की हिदायत कर दें। यदि ऐसा न किया जायगा तो छात्र बीच में बोल उठेंगे और अनुलेख लिखते त्रुटियाँ करेंगे। अनुलेख में बोलने का ढँग इस प्रकार होना चाहिए जैसे निम्नांकित वाक्य में जितने-जितने अंश एक बार बोलने चाहिएँ उनके अन्त में एक-एक खड़ी लकीर लगी है—

भरत बड़े धर्मात्मा। और दृढ़ स्वभाव के व्यक्ति थे। उन को अयोध्या लौटने पर। जब रामचन्द्र जी के वन गमन की बात। मालूम हुई। तो वह अपनी माता कैकेयी से। बड़े रुष्ट हुए। और कहने लगे कि तू। माता नहीं। तू तो सर्पिणी है। तैंने तो बिना अपराध के ही। हम सबों को डँस लिया। मैं भाई की गद्दी पर। कदापि न बैठूँगा।

यदि हम यही वाक्य असम्बद्ध अंशों में इस प्रकार विभाजित करें—

भरत बड़े। धर्मात्मा और दृढ़। स्वभाव के व्यक्ति थे। उन को अयोध्या। लौटने पर जब। रामचन्द्र जी के वन। गमन की बात मालूम। हुई तो वह अपनी। माता कैकेयी से बड़े। रुष्ट हुए और कहने लगे कि तू माता। नहीं तू तो सर्पिणी। है तैंने तो बिना अपराध। के ही हम सबों। को डँस लिया मैं। भाई की गद्दी। पर कदापि न बैठूँगा।" तो इस प्रकार अर्थ का अनर्थ हो जाता है। बोलने में शुद्धि रखना अध्यापक का कार्य है, अतः हम इतना ही कह सकते हैं कि अनुलेख में छात्रों

को ध्यान पूर्वक सुनना चाहिए कि कौन से अक्षर सस्वर और कौन से अस्वर बोले जा रहे हैं ; जैसे:—

'निरपराध' शब्द में द्वितीय अक्षर 'र' सस्वर बोला जायगा, 'परस्पर' शब्द में 'स' की ध्वनि अस्वर होगी। यदि अक्षर-शुद्धि और शब्द-शुद्धि का भली प्रकार ज्ञान हो गया है तो अनुलेख में त्रुटियाँ नहीं होंगी।

अभ्यास

१—नीचे लिखे अवतरणों में से एक साथ बोले जाने वाले अंश छाँटो:—

(क) नहीं यह गगन-स्पर्शी धाम,
दीप्तमय रत्नों से अभिराम,
जहाँ प्रभु ले सकते विश्राम,
दैन्य दुःख छाया यहाँ अपार।
आ गए कैसे करुणागार॥

(ख) श्रीकृष्ण का चरित्र अत्यन्त पवित्र और निष्कलंक था। वे प्रेमी थे, रसिक थे और अपनी मधुर मुरली की तान में गोपों, गोपियों और गौओं को रिझाते थे। दीन, दुर्बलों की सहायता और दुष्टों का दमन करना तो उनका बचपन से ही स्वभाव था।

वार्तालाप

वार्तालाप का साधारण अर्थ 'बातचीत' करने का है। यह रचना का एक मुख्य अंग है। इसके द्वारा भी मनोरंजन किया जा सकता है। इसी के द्वारा जटिल से जटिल विषयों को समझा सकते हैं। इसकी रचना के लिए बड़ी आवश्यकता

होती है। इसका अभिप्राय यह है कि दो चार पात्रों में परस्पर बात-चीत कराकर किसी बात का वर्णन किया जाए। साहित्य की सभी बातों में जैसे गल्प, उपन्यास, नाटक, कहानी या प्रहसन आदि में वार्तालाप की आवश्यकता होती है। अतएव स्वतंत्र रीति से छोटे-छोटे वार्तालाप लिखने का अभ्यास डालना चाहिये। इसी को अंगरेज़ी में Dialogue कहते हैं।

गल्प की तरह से वार्तालाप में भी पहले आधार और कथानक की आवश्यकता होती है। फिर कथानक के पात्रों में आपस में बात-चीत कराकर सम्पूर्ण कथानक के विषय को समझाना पड़ता है। स्थान और स्थिति को आदि में पृथक् अंकित कर दिया जाता है। इसी प्रकार कोई मुख्य घटना होती है, तो उसे कोष्ठक से घेर कर उसी जगह पर अंकित कर देते हैं, जहाँ बात-चीत के बीच में वह हुई हो।

नीचे नमूने के लिये एक वार्तालाप का आधार, कथानक और थोड़ा सा अधूरा वार्तालाप दिया जाता है। इसी प्रकार शेष छात्रों को करना चाहिए।

आधार—विद्या पढ़ने के लाभ।

कथानक—'कृष्ण' और 'द्रोपदी' दो भाई-बहिन हैं। कृष्ण द्रोपदी को स्कूल में पढ़ने चलने के लिए कहता है। द्रोपदी उसे पढ़ने न जाने के लिए कहती है। कृष्ण द्रोपदी को पढ़ने की उपयोगिता समझाता है। द्रोपदी पढ़ने जाने के लिए तैयार हो जाती है।

वार्तालाप—स्थान—'दोनों के' रहने का घर।

(कृष्ण बाहर से आता है)

कृष्ण—(गंभीर वाणी से) द्रोपदी! द्रोपदी?

(द्रोपदी आती है)

द्रोपदी—आ गया भैया ! क्यों अभी से पढ़ने चलते हो ?

कृष्णा—चलो चलें, दस बज गए, वहाँ स्कूल खुल गया होगा।

द्रोपदी—अरे ! भैया, पढ़ लिख के क्या होगा। चलो माँई के घर चलें। सुना है कल वह राजमहल से आई हैं। एक दिन पढ़ना न हुआ तो न सही।

कृष्णा—हाँ, तुम्हारी दृष्टि से न सही। मैं पढ़ने में नागा करना पाप समझता हूँ।

द्रोपदी—(हँस कर) पाप !

कृष्णा—हाँ पाप ! तुम्हें सन्देह है ?

द्रोपदी—क्या बात है ! एक दिन न पढ़ने से पाप ! यह भी क्या रामायण का पाठ हो गया।

कृष्णा—क्या बच्चों की सी बातें करती हो ? यह नित्य पढ़ने का ही परिणाम है कि तुम अपने यहाँ कितने ही वकील, कितने ही डाक्टर और कितने ही सरकारी नौकर देखती हो ? क्या तुम्हारे भी घर में कोई ऐसा आदमी है ? तुम्हारे यहाँ तो सब मूर्ख और धन-हीन ही दिखलाई देते हैं।

द्रोपदी—और तुम ?

कृष्णा—मैं ? देखती नहीं ? तुम्हारी तरह मैं मूर्ख नहीं ? मैं प्रति दिन पढ़ने जाता हूँ। चिट्ठी-पत्री लिख लेता हूँ, कड़े से कड़ा सवाल निकाल सकता हूँ। इतने दिन हो गये, स्कूल से नागा तो क्या, कभी स्कूल-समय में छुट्टी भी नहीं लेता हूँ। यहाँ तक जितनी परीक्षा हुई हैं उन सब में तो प्रथम श्रेणी में पास हुआ हूँ। तुमको तो 'काला अक्षर भैंस बराबर है' क्यों न ?

द्रोपदी—अरे भाई ! यह सब जो तुम कहते हो, ठीक है परन्तु इसको इतना क्यों बढ़ाते हो कि पास हो गया, हत्या हो गई ज़मीन फ़ट गई, आसमान टूट पड़ा ।

कृष्ण—तुम्हारे तो दिमाग़ में गोबर भरा है। तुम्हारी अक्ल तो चरने गई है। पढ़ने के सम्बन्ध में एक दिन का आलस्य जो हानि पहुँचाता है, वह दस दिन के पढ़ने से भी पूरा नहीं होता है। उसके नियम में अन्तर डालना, वास्तव में विद्या की हत्या करना, तुम्हारी दृष्टि में पाप नहीं ? मेरी अक़ल तो यह कहती है कि अविद्या जीवन ही संसार का सब से बड़ा नरक है। उस नरक में झोंकने वाला काम तुम्हारी दृष्टि में पाप नहीं।

द्रोपदी—हाँ, यह तो ठीक है। क्या विद्या ऐसी वस्तु है ? क्या यही जीवन को अच्छा बनाने वाली है ?

कृष्ण—हाँ विद्या ही मनुष्य जीवन का अलंकार है। इसीकी महिमा से मनुष्य संसार में आदरणीय होते हैं। इसी से मनुष्य ऊँचे ऊँचे पदों पर पहुँचते हैं। विद्या ही जीवन को गौरवशाली बनाती है। विद्या धन की समानता संसार में कोई धन नहीं कर सकता। इसको कोई ले नहीं सकता, छीन नहीं सकता। यह ऐसा अपूर्व धन है जो व्यय करने से दिन दूना रात चौगुना बढ़ता है।

(अपूर्ण)

इस प्रकार वार्तालाप दोनों ही प्रकार की घटनाओं पर चाहे वह काल्पनिक हो चाहे वह सत्य हो भली प्रकार रचा जा सकता है। वार्तालाप की रचना में अग्रलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए :—

(क) वार्तालाप की बातों में सुसम्बद्धता तथा स्वाभाविकता हो, मानो वह सचमुच हुई हों। उनमें कृत्रिमता का चिह्न भी न हो।

(ख) भाषा सरल हो, जो जन साधारण की बोली है, जो सरलता से समझी जा सकें।

(ग) बातें संक्षेप में हों, अधिक लम्बी व्याख्यान के रूप में न होनी चाहिएँ।

(घ) वार्तालाप से वे बातें साफ़-साफ़ प्रकट हो जायँ जिनको लेखक समझाना तथा प्रकट करना चाहता है।

(ङ) वार्तालाप में पात्रों की स्थिति, उनका कोई काम या भाव—हँसना, क्रोध करना आदि पात्र के नाम के सामने कोष्ठक में बंद करके अंकित कर देना चाहिए।

अभ्यास

१—वार्तालाप करने की आवश्यकता किस प्रकार की रचनाओं में पड़ती है ?

२—वार्तालाप-रचना में किन-किन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है और क्यों ?

३—वार्तालाप में आधार और कथानक की क्यों आवश्यकता होती है ?

४—निम्नांकित आधारों पर वार्तालाप की रचना करो, जो बड़ा सरस, सरल तथा रोचक हो।

(क) सत्य बोलना।

(ख) इतिहास पढ़ने से लाभ।

(ग) व्यायाम करने से लाभ।

सातवाँ अध्याय

पत्र-लेखन

पत्र-लेखन रचना का मुख्य अंग है। यह हमारी नित्य-प्रति की आवश्यकता है। इनसे हमारा बहुत काम चलता है। लेख, निबन्ध और पुस्तकादि लिखने वालों की संख्या तो परिमित होती है; किन्तु प्रायः पत्र लिखाने लिखने का काम तो समाज के हर एक सभासद को पड़ता ही है। पत्रों के द्वारा हम घर बैठे मित्रों और सम्बन्धियों से बात करते हैं, बड़े-से-बड़े व्यापार चलाते हैं और जीवन के अनेक प्रयोजनों को सिद्ध करते हैं। पत्रों के ही द्वारा हम किसी की पूछी हुई बातों का उत्तर दे सकते हैं। पत्रों में कामकाजी साधारण बातों से लेकर बड़े बड़े ऐतिहासिक, दार्शनिक, सामाजिक और नैतिक विषयों का उल्लेख करना पड़ता है। लड़के लिखना-पढ़ना सीखते ही सबसे प्रथम पत्र लिखना सीखना चाहते हैं। इससे यह न समझना चाहिए कि पत्र लिखना बिलकुल उस श्रेणी की रचना है, जो प्रारम्भिक शिक्षा पाने वाले लड़कों को ही सीखना चाहिए। पत्र लिखना जितना सरल है उतना ही कठिन भी है। उच्च श्रेणी के पत्र योग्य लेखक ही लिख सकते हैं, उन्हें निबन्ध-रचना के सम्पूर्ण नियमों की जानकारी आवश्यक है। चाहे तो पत्र निजी हों या चाहे व्यावसायिक हों, ये पत्रों के दो भेद हैं। पत्रों में सौष्ठव, गौरव अथवा गम्भीरता पैदा करने के लिए रचना के पहले लिखे दोनों गुण आकर्षण और स्पष्टता का सदा ध्यान रखना चाहिए। पत्रों की साधारण योग्यता तो हर एक अक्षराभ्यासी के लिए अपेक्षित है, अतएव मुख्य बातों का उल्लेख किया जाता है।

१—पत्र-सम्बन्धी शिष्टाचार अर्थात् सभ्यता।

२—मुख्य विषय।

(१) शिष्टाचार के लिए यह देखना चाहिए कि हम जिनको पत्र लिख रहे हैं वह मान्य, पूज्य, सम्बन्धी, आत्मीय या परिचित हैं। प्रचलित नियमानुसार उनके लिए वैसी ही प्रशस्ति (सरनामा) लिखना चाहिए।

(२) हिन्दी में पत्र लिखने की दो रीतियाँ प्रचलित हैं :—

(क) पुरानी रीति (ख) नई रीति।

दोनों प्रकार की पुरानी अथवा नई प्रणालियों में निम्नांकित बातों का उल्लेख अवश्य ही आ जाता है जैसे :—

(१) पत्र-लेखक कौन है ?

(२) पत्र किस स्थान से लिखता है ?

(३) पत्र किस को लिखता है ?

(४) जिसको पत्र लिखता है वह कहाँ रहता है ?

(५) पत्र कब लिखा गया ?

(६) कुछ प्रारम्भिक शिष्टाचार के सम्बोधन के शब्द जिसे प्रशस्ति (सरनामा) कहते हैं।

(७) हाल।

(८) कुछ समाप्ति पर शिष्टाचार पूर्वक विदा के शब्द।

(९) पत्र पहुँचने का पता।

पुराने ढंग के व्यापारी, ज़मींदार, पण्डित तथा अन्य लोग अब भी पुरानी प्रथा के अनुसार पत्र लिखते हैं और नये विचार के लोग नये ढंग से शिक्षा पाये हुए अथवा उनसे सम्पर्क रखने वाले—नवीन परिपाटी से पत्र लिखते हैं। इस प्रणाली के पत्रों में मिति और हाल को छोड़कर सभी बातें पत्र के आदि में सरनामे में लिख दी जाती हैं। प्रशस्ति के बाद हाल और अन्त में

'इति शुभम्' लिखकर मिति लिखी जाती है। बहुधा प्रशस्ति में शिष्टाचार के शब्दों की भरमार रहती है। अब अधिकांश इस प्रणाली के पत्रों का प्रचार कम होता जा रहा है। किन्तु फिर भी इनका प्रचार कुछ न कुछ है ही। नये ढंग के पत्रों में प्रशस्ति बहुत थोड़ी होती है और तुरन्त मतलब की बातें प्रारम्भ कर दी जाती हैं। आजकल इसी का अधिक प्रचार हो गया है और होता जा रहा है।

पुरानी प्रथा के सरनामें इस प्रकार के होते हैं :—

सब से पहले किसी देवता या ईश्वर के नाम लिखते हैं जैसेः—

श्री कृष्णायनमः, रामायनमः। बड़े को सिद्ध श्री सर्वोपमा विराजमान सकल गुण निधान श्री.........शुभ स्थान......... योग्य लिखी..................की नमस्कार, प्रणाम, दण्डवत (आदि प्रणाम वाची शब्द)।

नाम से पहिले पदवी, अवस्था, योग्यता अथवा केवल सम्मान के लिए 'विद्यानिधि' 'वयोवृद्ध', 'परम प्रतापान्वित', 'विद्वद्‌वृन्द-शिरोमणि' आदि एक वा कई विशेषण और जोड़ देते हैं।

पुरानी प्रथा में नाम के साथ श्री-श्री लिखने की भी प्रथा है। अलग-अलग न लिख एकबार 'श्री' लिखकर उसके आगे जितनी श्री लिखनी हों उतने का अंक बना देते हैं; जैसे :— श्री ४।

श्री लिखने का नियम यह है गुरु को ६, बड़ों को ५, शत्रु को ४, मित्र और बराबर वालों को ३ सेवक को २ और स्त्री को १।

'अत्र कुशलम् तत्रास्तु' अथवा 'आपकी कृपा से', 'भगवान् श्री कृष्णचन्द्र आनन्द-कन्द की कृपा से', श्री गंगा जी की कृपा से', 'यहाँ कुशल है'............आप की कुशल सदैव चाहते

हैं········लिखकर 'आगे समाचार यह है', अथवा समाचार एक बाँचना जी ', अन्त में पत्र शीघ्र भेजिये ', ' उत्तर दीजिये ', तथा शुभम्भूयात, 'इतिशुभम्' 'शुभमस्तु और तिथि।

छोटों और बराबर वालों को 'सिद्ध श्री ' की जगह 'स्वस्ति श्री ' तथा प्रणाम की जगह 'आशीर्वाद ' 'आशीष ', जै रामजी की ,' 'जै श्रीकृष्ण जी की ,' ' जै गंगाजी ,' 'राम-राम' तथा 'परम पिता परमात्मा से' आदि लिखते हैं।

नीचे पुराने ढंग के पत्र का एक पूर्ण उदाहरण दिया जाता है :—

स्वति श्री श्री श्री सर्वोपमान विराजमान योग्य सकल गुण निधान! विद्वद्वृन्द शिरोमणि मित्रवर श्रीमान् पंडित शिवप्रकाश आगरा निवासी को ज्वालाप्रसाद का सदरबन से नमस्कार प्राप्त हो। अत्र कुशलं तत्रास्तु। आप का कृपा पत्र प्राप्त हुआ, समाचार जाना गया। चिरंजीव उमाशंकर के पुत्र-जन्म के शुभ संवाद से मन को विशेष आनन्द हुआ। आशा है, ऐसे ही अपने लोगों के कुशल वृत्त से सूचित करने की कृपा करते रहेंगे। श्री चाचाजी से हमारा दण्डवत् प्रणाम यथा योग्य कहना। इति शुभम्।

(मिति क्वार सुदी पञ्चमी, संवत् १९९२ वि०)

नई प्रणाली के पत्रों में पाँच अंश होते हैं :—

(१) स्थान लिखने वाले का।

(२) तिथि या तारीख।

(३) प्रशस्ति।

(४) हाल।

(५) समाप्ति।

इन सब के लिखने के लिए अलग-अलग निश्चित स्थान होते हैं।

बड़ों को—'महामहिम,' 'पूज्यपाद,' 'पूज्य चरणेषु,' 'मान्यवर,' 'महा-मान्यवर,' 'श्रद्धास्पद,' 'श्री चरणेषु,' 'प्रशस्ति में लिखकर अन्त में' 'कृपापात्र,' 'प्रणत,' 'दास,' 'सेवक,' 'दर्शनाऽभिलाषी,' 'कृपैषी,' 'स्नेह-भाजन' आदि लिखकर अपना नाम लिख देते हैं।

बराबर वालों को—'प्रियवर,' 'प्रियबन्धु,' 'प्रियमित्र,' 'विद्यार्थी जी,' शर्मा जी,' आदि उपनाम भी नीचे लिख देते हैं, कोई-कोई नाम भी प्रियवर रामसिंह जी भी लिख देते हैं।

नीचे आपका 'मित्र,' 'स्नेही,' या केवल 'आपका' या 'भवदीय' लिखकर अपना नाम लिख देते हैं।

छोटों को—'चिरंजीव,' 'स्नेहास्पद,' आयुष्मान्,' आदि लिखकर अन्त में 'हितैषी,' शुभ चिन्तक,' आदि शब्द लिखते हैं।'

स्त्री अपने पति को—'प्राणपति,' 'प्राणाधार,' प्राणनाथ,' प्राण वल्लभ आदि पद लिखकर नीचे केवल 'दासी,' 'सेविका,' आदि लिखती है।

सरनामा के पाछे—यदि पत्र का उत्तर देना हो तो 'आपका पत्र मिला, आनन्द हुआ'। आपका पत्र पढ़कर आनन्द हुआ'। पत्र पढ़ते ही आँखों से आनन्दाश्रुओं की धारा बह निकली। यदि कोई आश्चर्य की बात हो तो 'पत्र पढ़ते ही दंग रह गया'। आश्चर्य का पारावार न रहा। और यदि कुछ चिन्ता-जनक या दुःखद बात हुई तो ' पत्र को पढ़कर बड़ी चिन्ता हुई'। दुःख का पारावार न रहा,' 'बहुत दुःख हुआ' आदि लिखकर पत्र के विषय से वाक्य रचना को मिला देते हैं।

पत्र साफ़-साफ़ और सुन्दर अक्षरों में लिखना चाहिए।

नई प्रथा के पत्रों का ढाँचा

उदाहरण :—

पत्र पिता के नाम

ओ३म्

(१) स्थान — आगरा,

(२) तिथि — ३ अक्टूबर सन् १९३५ ई०।

(३) प्रशस्ति — पूज्यपाद पिताजी !

चरण छूना।

(४) हाल —

आप की कृपा से कुशल पूर्वक आ पहुँचा। यहाँ पर मुझे पंडित लेखराज का कोई पता नहीं लगा। इस कारण मैं होटल में ठहरा हुआ हूँ।

तारीख ६ अक्टूबर को स्कूल खुल जाएगा, आशा है स्कूल में भर्ती हो जाऊँगा। और बोर्डिङ्ग में जगह भी मिल जायगी। यदि वहाँ किसी तरह से जगह न मिली तो स्कूल के पास ही मकान तलाश कर लूँगा।

स्कूल में भर्ती होने के बाद आगे फिर लिखूँगा। कृपा करके पत्रोत्तर शीघ्र दीजिएगा। चि० भाई, बहिन को प्यार और माताजी को चरण छूना पहुँचे। इति।

(५) समाप्ति —

आपका

आज्ञाकारी पुत्र

'ज्वालाप्रसाद'

पत्र मित्र के नाम

ओ३म्

प्रयाग,

४ नवम्बर, सन् ३५ ई०

प्रियवर प्रभू !

तुम्हारा पत्र आया। पढ़कर अपार हर्ष हुआ। परन्तु तुम्हारे चि० शिब्बोमल का रुष्ट होकर चला जाना पढ़कर बहुत रंज हुआ। खैर, यह बात अच्छी हुई कि तुम अपनी ज़मींदारी का मुक़-दमा जीत गये। चलो अच्छा है कि अब तुम्हें सब प्रकार शांति है। तुमने मेरे आने के लिये लिखा है। मैं तुम्हारे यहाँ दिवाली की छुट्टियों में आ सकता हूँ, इससे पहले मेरा आना कदापि नहीं हो सकता। कोई दस दिन हुए होंगे पिता जी के पास से मेरे पास एक पत्र आया था, उसमें उन्होंने तुम्हारे लिए आशीर्वाद लिखा था और तुम्हारा सब हाल पूछा था। उसका मैंने अभी कोई उत्तर नहीं दिया। अब मैं उनको लिख दूँगा। पत्र का उत्तर देना। इति।

तुम्हारा,

श्यामाचरण

नीचे प्रशस्ति और समाप्ति के कुछ शब्द दिये जाते हैं :—

लेख्य	प्रशस्ति	समाप्ति
गुरु	श्री मान्यवर	आपका दास
	पूज्यतम	आपका चरण सेवक
	श्रद्धास्पद	आपका आज्ञाकारी

पिता	मान्यवर	आपका आज्ञाकारी
	पूज्यतम	आपका प्रियपुत्र
फूफा	परम मान्य	भवदीय सेवक
मामा आदि	महानुभाव	,, ,,
बड़ा भाई	पूज्यवर भ्राता जी	आपका स्नेह भाजन
स्वामी	प्रभुवर	आपका दास
	स्वामिवर	आपका सेवक
	महानुभाव	,, ,,
पति	प्रिय प्राणनाथ	आपकी दासी,
	श्री आर्यपुत्र	,, ,,
	प्राणेश्वर	आपकी सेविका,
	प्राणधन	आपकी (नाम)
	जीवनधन	आपकी अनुगामिनी
	हृदय-धन	आपकी प्यारी
	प्राणाधार	आपकी टहलिनी
प्रतिष्ठा में बड़ा	मान्यवर	आपका कृपाभिलाषी, ,, कृपाकांक्षी ,, कृपा पात्र
शिष्य	आयुष्मान् (नाम)	तुम्हारा हितैषी: ,, शुभचिन्तक,
पुत्र	प्रियवत्स (नाम) चिरञ्जीवी (नाम)	तुम्हारा हितेच्छु,
छोटा भाई	चिरञ्जीवी (नाम) प्रिय (नाम)	तुम्हारा प्रिय भ्राता,
नौकर	प्रिय (नाम)	आपका या तुम्हारा,

स्त्री	प्राणप्रिये	तुम्हारा अभिन्न,
	प्राणेश्वरी	जीवन धन,
	प्राणवल्लभे	प्राणेश्वर,
	प्यारी	तुम्हारा प्रेमी या स्नेही
प्रतिष्ठा में छोटा	प्रिय महाशय	आपका शुभचिन्तक,
मित्र	प्रिय मित्र सुहृद्वर प्रिय	आपका प्रिय मित्र
दुकानदार	श्रीयुत महाशयजी	भवदीय,
राज सम्बन्धी अधिकारी	मान्यवर महाशय	प्रार्थी सेवक
निमन्त्रण में	श्रीयुत	कृपाभिलाषी
	श्रीमान्	विनयी
	परम प्रिय महाशय	दर्शनाकांक्षी
	श्रीमान्यवर	

पता लिखना

'पता-लिखना' पत्र लेखन कला का मुख्य अंग है। यों तो कुल पत्र ही स्पष्ट और सुन्दर अक्षरों में लिखना चाहिए; परन्तु पता लिखने में बड़ी सावधानी रखनी चाहिए। पत्र लिख कर लिफ़ाफ़े में बन्द कर देते हैं और लिफ़ाफ़े के ऊपर स्पष्ट अक्षरों में ठीक रीति से पता लिखते हैं। पुराने ढँग के लोग पत्र के ऊपर भी बहुत बड़ा सरनामा लिख देते हैं। नाम के साथ पदवी आदि के अतिरिक्त और कुछ न लिखना चाहिए। नाम के नीचे स्थान लिखो। यदि पत्र डाँक से भेजना हो तो डाकख़ाना और ज़िला

भी होना आवश्यक है। यदि कार्ड पर खुला हुआ पत्र हो तो उस के पीछे पता लिखना चाहिये।

पता—

उदाहरण (१)

सेवा में—

टिकट

प्रेषक—
एन० आर० रूतैल
विशारद,
सदरधन,
आगरा।

श्रीयुत् बा० श्यामलाल जी गुप्ता,
ए० ए०, एल-एल० बी०, एल० टी०;
हेडमास्टर
डी० ए० वी० हाईस्कूल,
आगरा।

उदाहरण (२)

टिकट

प्रेषिका—
सुशीला
कचेहरी घाट,
आगरा।

श्रीमती कृष्णा देवी 'पमार'
हेड अध्यापिका,
नार्मल स्कूल,
बरेली।

मुख्य विषय

पत्र लिखते समय ध्यान में रखने योग्य बातें

(१) यदि पत्र में उत्तर लिखना है तो आये हुए पत्र को पढ़ो और उत्तर देने योग्य बातें अलग एक काग़ज़ पर लिख लेनी चाहिये।

(२) पत्र में जो कुछ तुम्हें अपनी तरफ़ से लिखना है, उसे भी एक काग़ज़ पर लिख लेना चाहिये।

(३) फिर एक-एक बात को पृथक्-पृथक् परिच्छेदों में पूरी लिखना चाहिए।

(४) पत्र अधिक लम्बा न होना चाहिये।

(५) पत्र की भाषा स्पष्ट और मधुर होनी चाहिये।

(६) पत्र में वही वातावरण की स्वाभाविकता हो जो तुम्हारी बात-चीत में होती है।

(७) पत्र समाप्त करने से पहिले अपने संकेतों और पत्र को मिलालो। कोई आवश्यक बात छूट गई हो उसे पूरा कर लो। फिर उचित शब्दों के साथ उसे समाप्त करो।

(८) पत्र में कोई कहानी, निबन्ध या उपदेश लिखना हो तो उसे इस तरह मिलाओ जिससे यह न जान पड़े कि यह व्यर्थ ही आडम्बर लाद दिया है। इनके लिखने में क्रम बद्धता होनी चाहिये।

(९) पत्र किसी के ऊपर लिखवाया है तो उसे नियमानुसार पूरा करो। यदि कोई उससे उपदेश, नीति या सार निकलता हो, उसे फिर इन शब्दों के साथ 'सारांश यह है' 'भाव यह है' 'तात्पर्य यह है' लिखकर फिर उस पर ध्यान ले

जाओ जिसको पत्र लिख रहे हो। फिर उचित रीति से पत्र को समाप्त कर दो।

अभ्यास

१—अपने छोटे भाई को एक पत्र लिखो और बताओ कि जुआ खेलना बुरा है।
२—अपने बड़े भाई को पत्र लिखो और ख़र्च माँगो और यह भी बताओ कि तुम को ख़र्च की क्यों आवश्यकता पड़ी?
३—पत्र लिखने की आज कल कितनी शैलियाँ प्रचलित हैं? प्रत्येक को स्पष्ट समझाओ।
४—अपने पिता को एक पत्र लिखो जिसमें परीक्षा में पास हो जाने की चर्चा हो।

पुरानी प्रथा के पत्रों के नमूने

(१) गुरु को

सिद्धि श्री ६ सकल शुभ गुणालंकृत विद्वद्वर शिरोमणि शुभस्थान पनवाड़ी विराजमान श्री गुरुदेव चरण कमलों को आगरे से शिष्याधम विनयी श्यामलाल का साष्टांग प्रणाम पहुँचे। यहाँ आपकी दया से सब कुशल है, आपकी कुशल-क्षेम सदा परमेश्वर से चाहता हूँ। श्रीमान् ने जो कृपा पत्र द्वारा इस सेवक को आज्ञा दी कि तुम दशहरे की छुट्टियों में मेरे पास हो जाओ। इससे मैं लाचार हूँ क्योंकि दशहरे की छुट्टियों में मेरा आना नहीं हो सकता। इन छुट्टियों में मैं लड़की के लिए लड़का तलाश करने जा रहा हूँ। इससे मैं दिवाली की छुट्टियों में आप के पास ज़रूर-ज़रूर आऊँगा। कामकाज चिट्ठी पत्री देना और

कृपा दृष्टि रखिएगा। और श्रीमती माता जी से मेरा चरण छूना कहिएगा। इति शुभम्। मिती कार्तिक बदी ५, संवत् १६६२ वि०

सेवा में :— श्रीमान् पंडित गौरी प्रसाद शर्मा गांव पनवाड़ी डा० खा० अछनेरा ज़िला-आगरा	टिकट

(२) प्रतिष्ठा में बड़े को

सिद्धि श्री उन्नाव शुभस्थान सर्वगुणालंकृत मान्यवर पंडित होशियार सिंह को आगरे से कृपाराम का नमस्ते पहुँचे। दोनों ओर ईश्वर कुशल करें। एक विषय में आपको कुछ कष्ट देता हूँ। आशा है कि आप कृपा करके मेरे लिए उसका उद्योग करेंगे। अपरंच आप दो महीने के अन्दर मेरे लिये चार आदमियों का एक पास जो आगरे से सेतुबंद रामेश्वर तक हो, लेकर भेज दीजिए। मैं आप का बड़ा कृतज्ञ हूँगा। पत्र का उत्तर दीजिए। इति। मिती कार्तिक सुदी १२, संवत् १६६२ वि०।

सेवा में :— बाबू होशियार सिंह जी शर्मा, हेड गुड्स क्लर्क, रेलवे स्टेशन उन्नाव, ज़िला उन्नाव (E. I. R.)	टिकट

छोटों के नाम पत्र

(३) शिष्य को

स्वति श्री १ आगरा शुभ स्थाने सर्व शुभलक्षण युक्त चिरंजीवी श्री राजेन्द्रप्रसाद योग्य लिखी मेरठ से द्वारिका प्रसाद का आशीर्वाद बाँचना। यहाँ सब आनन्द है, श्री भगवान् तुमको चिरायु करें। तुम्हारा आनन्ददायक पत्र बहुत दिन से नहीं आया, चित को चिन्ता है। उचित है कि शीघ्र अपना कुशल-वृतांत लिख भेजो। अपरंच हाल यह है कि तुम्हारे पिता जी ने आने का कहा था न मालूम क्यों नहीं आये। उनको मेरे पास ज़रूर ही भेजना क्योंकि उनकी मुझे बहुत याद आती है। अधिक क्या लिखूँ, पत्र का उत्तर देना। शुभम्। मिती अगहन बदी ४, संवत् १९९२ वि०।

मिले :—
राजेन्द्रप्रसाद शर्मा,
विद्यार्थी क्लास ९,
सज्जौन्स हाई स्कूल,
ज़िला आगरा (यू० पी०)

टिकट

नई प्रथा के पत्रों के नमूने

पत्र गुरु को

नमक मंडी, आगरा।

जून ५ सन् १९३५ ई०।

श्रीमान् मान्यवर गुरुजी, सादर प्रणाम !

आज आप का पत्र पाकर हर्षित हुआ। चिरंजीवी

गौरीशंकर के यज्ञोपवीत में आने का यथाशक्ति उद्योग करूँगा।

आप का दास,
बालेश्वर प्रसाद

POST	CARD	टिकट
	सेवा में :— पंडित शोभाराम जी, कायस्थ बाड़ा मेरठ यू० पी०	

मित्र को

कानपुर
मित्रवर—बन्दे
२५ सितम्बर ३४ ई०

आप तो ऐसी खर्राटे की नींद सोए कि पत्रों की कानों पर भुनभुनाहट भी न मालूम पड़ी। दो-तीन पत्र भेज चुका, किन्तु आपने तो कुम्भकर्ण की तरह छः महीने की रात कर दी कि कानों पर ढोल बजते ही रहे। ऐसा नहीं है तो क्या आप मुझसे अप्रसन्न हो गए या भाभी जी ने पत्रोत्तर के लिये भी मनाई कर दी और या आपको हम जैसे अनावश्यक व्यक्तियों को पत्र लिखने के लिए समय ही नहीं मिलता। भाई क्षमा करना और भाभी जी से भी मेरी ओर से क्षमा याचना कर लेना।

यहाँ तो कोई नई बात नहीं हुई और जो कुछ भी थी

पहले के पत्रों में लिख चुका। अब आप अपने शहर के समाचार लिखना। पत्रोत्तर शीघ्र ही देना।

आपका—अभिन्न
गणेश बिहारी

सेवा में :—	टिकट
शंकर सहाय शर्मा, c/o हरिदेव शास्त्री, मोहन भवन मोहिनी रोड, लाहौर	

मित्र को (उत्तर)

लाहौर
२७ सितम्बर

मित्रवर !

खूब व्यंग किया। यहाँ तक कह डाला कि 'भाभी जी से क्षमा याचना कर लेना' पत्र में तो अब क्या लिखूँ। मैं एक खास काम-बस कानपुर आही रहा हूँ। वहाँ जितने आपने पत्र भेजे हैं उतने ही दिन ठहर कर आपकी नाक में दम कर दूँगा। बस।

आपका—अभिन्न मित्र
शंकर सहाय शर्मा

प्रार्थना पत्र

सेवा में,

प्रिन्सिपल महोदय आयुर्वेदिक कालेज
बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटी
बनारस

माननीय,

सेवा में सविनय निवेदन है कि मैं आपके कालेज में प्रविष्ट होना चाहता हूँ। उसके लिये किस बात की जरूरते हैं और वहाँ के नियमादि क्या हैं। मैं इन सब बातों से अनभिज्ञ हूँ। ऐसी अवस्था में क्या आप मेरे पास अपने विद्यालय की नियमावली भेजने की दया करेंगे।

इसके लिये मैं आपका बड़ा कृतज्ञ होऊँगा।

ताः—५-५-३५ ई०

आपका आज्ञाकारी
दयाशंकर शर्मा
शीतल घाट
प्रयाग

उपर्युक्त प्रार्थना पत्र का उत्तर

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
आयुर्वेद कालेज

पत्र संख्या—१४३ ता० १३-५-३५ ई०

महाशय,

आप का पत्र सं०.........ता० ५-५-३५ का यथा समय प्राप्त हुआ। उत्तर में सूचित है कि ।=) भेजने पर यहाँ की नियमावली मिल सकती है।

कालेज प्रति वर्ष ६ जुलाई को खुलता है। प्रवेश होने के लिए विद्यार्थी को चरित्र तथा परीक्षा संबन्धी प्रमाण पत्र साथ लाना चाहिए।

भवदीय :—
रामाशंकर
अध्यक्ष

	टिकट
पं० दयाशंकर शर्मा शीतल घाट प्रयाग (यू० पी०)	

(५) छुट्टी के लिये प्रार्थना पत्र

(क)

सेवा में,

प्रधानाध्यापक
डी० ए० वी० हाईस्कूल
लाहौर

श्रीमान् जी,

निवेदन यह है कि सोमवार ता० ८–६–३५ को मेरे भाई का विवाह होना निश्चित हुआ है। बरात दिल्ली जायगी। उसके जाने का समय रविवार को १२ बजे की देहली एक्सप्रेस से नियत है। बरात में मेरा भी जाना अनिवार्य है क्योंकि पिता

जी की ऐसी ही आज्ञा है। ऐसी अवस्था में मैं सोमवार, मंगलवार, बुधवार अर्थात् ता० ८, ९, १० को स्कूल में उपस्थित न हो सकूँगा। आशा है इन दिनों की मेरी छुट्टी स्वीकार करके आप मुझे अभारी बनायेंगे।

ता० ६—९—३५ ई०

आपका आज्ञाकारी शिष्य—
रामनाथ
कक्षा ८ अ

(ख)

सेवा में,

प्रधानाध्यापक
डी० ए० वी० हाईस्कूल
लाहौर

मान्यवर जी,

निवेदन यह है कि रामनाथ, आपके स्कूल की कक्षा ८ अ का विद्यार्थी अचानक ही आज अस्वस्थ हो गया है। ऐसी अवस्था में वह आज ता० ८-९-३४ को स्कूल में उपस्थित नहीं हो सकता। कृपा कर आज के दिन की उसको छुट्टी स्वीकृत कर दीजिये। कष्ट के लिये धन्यवाद !

ता० ८ सितम्बर ३५ ई०

भवदीय—
रमाशंकर अग्निहोत्री
(अभिभावक रामनाथ कक्षा ८)

व्यावसायिक पत्र

(क)

जैन-प्रेस; आगरा
सं० १४०

ता० ८ अक्टूबर सन् १९३५ ई०

श्रीयुत मैनेजर महोदय,
श्याम-काशी प्रेस, मथुरा।

प्रिय महाशय,

आप का कृपा पत्र सं० २३५ ता० ५ अक्टूबर, सन् १९३५ का ठीक समय पर मिला। उत्तर में निवेदन है कि हमने आपके पत्र को स्थानीय स्कूलों के प्रधानाध्यक्षों के पास भिजवा दिया है। उन लोगों से उत्तर मिलने पर आपको सूचित करूँगा।

भवदीय
पद्मचंद जैन

पता

श्रीयुत मैनेजर साहब, श्याम-काशी प्रेस, मथुरा	टिकट

(ख)

श्रीयुत सम्पादक महोदय,
'मतवाला' आगरा।

महाशय,

कल ७ अक्टूबर को बाबू राम प्रसाद 'गोयल' के आने पर युवक-संस्था के सम्बन्ध में यहाँ एक वृहत् सभा हुई।

स्वागत-समिति का चुनाव हो गया है। गोयल जी को १०,०० रुपयों की थैली भेंट करने का निश्चय किया गया है। चन्दा ज़ोरों से वसूल किया जाने लगा है। सभा-भवन में ही ८००) रु० एकत्रित हो गये थे।

आगरा ७ अक्टूबर। ३५।

भवदीय
लेखराज शर्मा

पता

सेवा में :—
श्रीयुत्,
हरि शंकर जी गुप्त
सम्पादक 'अर्जुन'
दिल्ली

टिकट

बुकसेलर के लिए

ओ३म्

मान्यवर,

मथुरा
८-१०-३५

कृपया निम्न लिखित पुस्तकें वी० पी० द्वारा उचित कमीशन काट कर भेज दीजिए। मेरा पता पुस्तकों के नीचे लिखा हुआ है।

१—बिहारी-सतसई (लाला भगवान दीन)
२—सटीक कवितावली (ला० भगवानदीन)
३—प्रेम-द्वादसी (प्रेम चन्द)

४—रसज्ञ-रंजन (महावीर प्रसाद द्विवेदी)
५—जायसी-ग्रन्थावली (रामचन्द्र शुक्ल)

भवदीय—
रामभूषण शर्मा

POST	CARD	टिकट
पता— रामभूषण शर्मा चौक	मैनेजर, साहित्य-रत्न-भण्डार, ठंडी सड़क, आगरा।	

समाचार पत्र में छापने के लिए

ओ३म्

बाग़ मुज़फ़्फ़र ख़ाँ (आगरा)
१२-१०-३५

मान्यवर सम्पादक जी,

पंच समाचार-पत्र में निम्न-लिखित दुःखद घटना छापने की कृपा कीजिए—

२५ रु० 'पारितोषिक'

उस मनुष्य को मिलेंगे, जो मेरे पुत्र का पता लगा दे। हुलिया इस प्रकार है :—

आयु लगभग १० साल, रंग गोरा, मस्तिष्क पर फोड़े का चिन्ह, नाक छिदी हुई, कान में लौंग पहिने, मुँह पर मामूली चेचक के दाग़, क़द, लम्बा है।

२५) के अतिरिक्त धन्यवाद पूर्वक मार्ग-व्यय भी दिया जायगा।

श्रीराम 'उपाध्याय'
बाग़ मुज़फ़्फ़र ख़ाँ,
आगरा

	टिकट
सेवा में— सम्पादक 'पत्र' कार्यालय, ठंडी सड़क, आगरा।	

निमन्त्रण-पत्र

* ॐ *

श्रीमान्...जी

परम पिता परमात्मा के परम अनुग्रह से मेरे भतीजे आयुष्मान् रामसिंह का यज्ञोपवीत-संस्कार कार्तिक सुदी १०, सं० १९९२ वि० तदनुसार २५ अक्टूबर १९३५ ई० को होना निश्चित हुआ है। दूसरे दिन ब्रह्मभोज होगा। आपसे सादर सप्रेम प्रार्थना है कि आप बाल-गोपाल सहित पधार कर उत्सव की शोभा बढ़ाएँ।

सदरबन
ता० ६ अक्टूबर, १९३५

विनीत
रामनिवास शर्मा

कार्य-क्रम

२५ अक्टूबर—७ बजे प्रातःकाल, हवन।
२५ अक्टूबर—६ " " उपवीत संस्कार प्रारम्भ।
२५ अक्टूबर—६ " सायंकाल प्रीति भोज।
२६ अक्टूबर—११ " प्रातःकाल, ब्रह्मभोज।
२८ अक्टूबर—८ " सायंकाल, कुटुम्ब भोज।

सूचना-पत्र

आगरा-नगर-निवासियों को सहर्ष सूचना दी जाती है कि पं० जवाहिरलाल 'नेहरू' १० अक्टूबर को आपके नगर में ८ बजे प्रातःकाल को रेल से स्टेशन आगरा-सिटी पर पधारेंगे। वह कांग्रेस-भवन में ठहराये जावेंगे। सायंकाल को ६॥ बजे वज़ीरपुरे हैविट पार्क में उनका व्याख्यान होगा। सभापति का आसन श्री स्वामी मनोहरलाल जी ग्रहण करेंगे। आप भाइयों से प्रार्थना है कि एक बड़ी संख्या में पधार कर 'नेहरू' जी का स्वागत करें और बड़ी शान्ति से उनका व्याख्यान सुन कर लाभ उठावें।

रमाशङ्कर शर्मा बी०ए०
स्वागत-मन्त्री

कहानी या गल्प-रचना

(क)

रचना के लिए छोटी-छोटी कहानी या गल्प लिखना भी आवश्यक है। इनके लिखने से रचना बहुत जल्दी आ जाती है। इनसे कल्पना शक्ति सहज ही में जाग्रत हो जाती है और स्मरण शक्ति का भी विकास होता है। लिखना बोझ नहीं मालूम होता, इनसे लिखने की रुचि बनी रहती है। बच्चों को कहानियाँ सुनने

और कहने का बड़ा चाव रहता है वे उनको बड़े ध्यान से सुनते हैं और अपने साथियों को सुनाने का अभ्यास करते हैं। अतएव इनके लिखने में बालकों का मन भी खूब लगता है। इसलिए कहानियाँ लिखना रचना सीखने का एक सरल उपाय है।

कहानियाँ कुछ तो ऐतिहासिक होती हैं और कुछ गढ़ी हुई। जो कहानी गढ़ी हुई होती हैं उन्हें गल्प कहते हैं। किन्तु चाहे वह बनावटी हों या सच्ची हों, परन्तु उनका उद्देश्य मन प्रसन्न करने के अतिरिक्त साथ-साथ शिक्षा देने का भी होना चाहिए।

प्रत्येक कहानी या गल्प में कथानक और आधार अवश्य ही होते हैं। गल्प या कहानी की घटनाओं का संक्षेप में वर्णन करना 'कथानक' कहलाता है। कथानक वास्तविक में बहुत थोड़ा होता है, और कथानक का 'आधार' उससे भी थोड़ा होता है। बहुत थोड़े शब्दों में कही जाने वाली बात को आधार मानकर पहले कथानक की रचना की जाती है फिर उसी के आधार पर कहानी रची जाती है। जिसके लिखने तथा गढ़ने में हमको अपनी कल्पना शक्ति से बड़ा काम लेना पड़ता है। तरह-तरह की घटनाओं को सोच कर उस कथानक को बढ़ाना होता है। इसको 'कथा की स्थापना करना' कहते हैं। कथा की स्थापना हो जाने पर उस कथा में जितने व्यक्तियों का हाल बहुत या थोड़ा आता है उनका नामकरण किया जाता है। फिर यही व्यक्ति कथा या गल्प के पात्र कहलाते हैं। उस कथानक में आई हुई घटनाओं के लिए स्थान निश्चित करके उनका भी नामकरण किया जाता है; जैसे :—

'एक ग़रीब किसान धनवान् हो गया' (आधार)

कथानक—एक किसान बहुत ग़रीब था परन्तु वह खेती में बहुत परिश्रम करता था। एक साल ईश्वर की माया से उसके

इतना अनाज हुआ कि यह अपने गाँव में सब से धनवान् हो गया।

अब इसमें कल्पना शक्ति तथा स्मरण शक्ति द्वारा भिन्न-भिन्न घटनाओं को सोचकर और इस कथा में स्थान देकर इस कथानक को बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार कथा की स्थापना की जा सकती है तथा स्थान व पात्रों आदि के नामों को निश्चय करके कुल ढाँचा तैयार किया जा सकता है: जैसे :—

ढाँचा—१—(स्थान) आगरे में अकुनेरे के पास दौलताबाद गाँव।

२—(पात्र) मुंशीलाल।

३—(घटना)—उसके पिता का मरते समय समझाना।

४—(स्थिति)—खेती करके पेट पालना।

५—(घटना) एक साल खूब वर्षा का होना, खेतों को अच्छी तरह जोतना, कठिन परिश्रम से खेती की देख-रेख करना, गाँव में सबसे अधिक अनाज पैदा होना।

६—(पात्र) 'सूखा' के मरने पर।

७—(घटना) मुंशी का एक धनवान् के रूप में होना।

उपर्युक्त बातों को स्वतन्त्रभाषा में कहानी के रूप में लिखना।

उदाहरण १—आगरे में अकुनेरे के पास एक दौलताबाद गाँव है। वहाँ पर एक सूखा ग़रीब किसान रहता था। जब वह मरने लगा तो अपने पुत्र मुंशी को समझाकर कहने लगा कि देखो 'परिश्रम से रोटी खाना चाहिए'। इतना कहते ही वह मर गया। उसके बाद मुंशी ने अपनी खेती में ख़ूब परिश्रम किया। उस साल वर्षा भी ख़ूब हुई। खेतों में ख़ूब अनाज हुआ। उसके खेती में परिश्रम करने का यह

फल हुआ कि उसके सब गाँव वालों से अधिक अनाज पैदा हुआ और गाँव वाले उससे कहने लगे कि तू तो सूखा के मरते हीं बड़ा धनवान् हो गया। तब मुंशी गाँव वालों से कहने लगा, क्या तुम नहीं जानते कि परिश्रम करने का फल अच्छा ही होता है'। मैं पहले एक गरीब किसान था जो अब अपने परिश्रम से ही धनवान् हो गया हूँ।

उदाहरण २—(आधार) 'हिम्मत कभी न हारना चाहिए'।

कथानक—एक कौए को प्यास लगी उसने एक घड़े में थोड़ा सा पानी भरा देखा। अपनी प्यास बुझाने के लिए कौए ने घड़े में कंकड़ डालना आरम्भ कर दिया। कुछ देर के बाद पानी घड़े के ऊपर आ गया। तब कौए ने इस प्रकार पानी पीकर अपनी प्यास बुझाई।

ढाँचा—१—(स्थान) एक जगल।

२—(पात्र) प्यासा कौआ।

३—(घटना) पानी की तलाश करना।

४—(स्थिति) हिम्मत बाँध कर पानी पीना।

५—(घटना) घड़े में कंकड़ डालना, कंकड़ों से पानी घड़े के किनारों पर आ जाना, कौए का तृप्त होकर पानी पीना।

६—हिम्मत न हारना चाहिए।

स्वतन्त्र भाषा में कहानी-लिखना

जंगल में एक कौए को बहुत प्यास लगी। वह पानी की तलाश में मारा-मारा फिरता रहा। अन्त में उसने एक घड़े में थोड़ा सा पानी देखा। कौआ यह सोचकर कि मैं इसमें से पानी नहीं पी सकता उसने उसमें कंकड़ डालना आरम्भ कर दिया।

वह बड़ी हिम्मत से बड़ी देर तक घड़े में कंकड़ डालता रहा। आख़िरकार कंकड़ों से घड़े का पानी किनारे तक आ गया। तब कौए ने तृप्त होकर पानी पिया और अपनी प्यास बुझाई। यदि वह हिम्मत हार कर बैठ जाता तो प्यासा ही मर जाता। यह सब हिम्मत का ही फल है। किसी ने सच कहा है कि "हिम्मत कभी न हारना चाहिए"।

कहानी रचना के नियम

कहानी रचना के लिए तीन नियम अधिक उपयोगी हैं; जैसे—

(१) कहानी बच्चों को स्वयं पढ़कर सुनावें या मौखिक कहें, अथवा छात्रों में से किसी से पढ़वावें।

(२) सुनाई हुई कहानी पर प्रश्न करके कहानी का ढाँचा तैयार करें अथवा करावें।

(३) बच्चों को कहानी का ढाँचा देकर उसके सहारे कहानी लिखवावें।

कहानियों पर संकेत बनवाकर ढाँचा तैयार करना

उदाहरण—१—एक तालाब के किनारे कुछ लड़के खेल रहे थे। सहसा उनका ध्यान तालाब में रहने वाले मेंढकों की ओर गया। उनको चटपट एक खेल सूझा। वे उन पर पत्थर फेंकने लगे। कई मेंढकों के बहुत चोट आई। उनमें एक बूढ़ा बुद्धिमान् मेंढक था। उसने बच्चों को समझाया कि इस निर्दयता के काम को बंद करो क्योंकि जो काम तुम्हारे मन-बहलाव का साधन है वही हमारी मृत्यु का कारण है। दूसरों को दुःख पहुँचाना भले लड़कों का काम नहीं है। लड़कों ने उसका कहना मान लिया और पत्थर

फेंकना बन्द कर दिया। इससे सब मेंढकों की जान बच गई।

उपर्युक्त कहानी पर प्रश्न करके संकेत निश्चय करना चाहिए; जैसे :—

(प्र०) अध्यापक—तालाब के किनारे लड़के क्या कर रहे थे?
(उ०) विद्यार्थी—वहाँ कुछ खेल रहे थे।
(प्र०) अ०—लड़कों का ध्यान खेलते-खेलते कहाँ गया?
(उ०) वि०—तालाब में रहने वाले मेंढकों पर गया।
(प्र०) अ०—लड़कों को फिर क्या सूझा?
(उ०) वि०—उनको चटपट एक खेल सूझा।
(प्र०) अ०—लड़के मेंढकों पर क्या करने लगे?
(उ०) वि०—वे उन पर पत्थर फेंकने लगे।
(प्र०) अ०—पत्थरों से मेंढकों पर क्या हुआ?
(उ०) वि०—कई मेंढकों के बहुत चोट आई।
(प्र०) अ०—उन मेंढकों में एक बूढ़ा मेंढक कैसा था?
(उ०) वि०—उन मेंढकों में एक बूढ़ा बुद्धिमान् मेंढक था।

(प्र०) अ०—उसने लड़कों को क्या समझाया?

(उ०) वि०—उसने कहा कि इस निर्दयता के काम को बंद करो क्योंकि जो काम तुम्हारे मन-बहलाव का साधन है वही हमारी मृत्यु का कारण है।

(प्र०) अ०—फिर मेंढक ने लड़कों से क्या कहा?

(उ०) वि०—देखो दूसरों को दुःख पहुँचाना भले लड़कों का काम नहीं है।

(प्र०) प्र०—लड़कों ने उसके कहने पर क्या किया ?

(उ०) वि०—लड़कों ने उसका कहना मान लिया और पत्थर फेंकना बंद कर दिया।

(प्र०) प्र०—इसका परिणाम क्या हुआ।

(उ०) वि०—सब मेंढकों की जान बच गई।

प्रश्नों द्वारा निकाले हुए सांकेतिक ढाँचे का क्रम

(१) तालाब के किनारे लड़के खेल रहे थे।
(२) बच्चों का ध्यान मेंढकों पर गया।
(३) मेंढकों को देखकर बच्चे पत्थर मारने लगे।
(४) पत्थरों से बहुत से मेंढकों के चोट लगी।
(५) एक बूढ़े बुद्धिमान् मेंढक ने लड़कों को समझाया।
(६) लड़कों का निर्दयता का काम करना।
(७) यह काम लड़कों के मन-बहलाव का होना।
(८) यही काम मेंढकों की मृत्यु का होना।
(९) दूसरों को दुःख पहुँचाना अच्छा नहीं।
(१०) मेंढक का कहना मान कर लड़कों का पत्थर फेंकना बंद कर देना।
(११) पत्थर न फेंकने से मेंढकों की जान बचना।

नोट :—उपर्युक्त संकेतों के सहारे कहानी-रचना की जावे। प्रत्येक कहानी के इसी प्रकार संकेत निश्चय करके लिख लेने चाहिए। और संकेतों के द्वारा स्वतन्त्रभाषा में कहानी को पूरा करना चाहिए। यदि कोई कहानी या उपदेश पद्य में है तो उसका आशय समझकर उस पर संकेत-वाक्य बना लेने चाहियें. फिर गद्य में उन्हें लिख लेना चाहिए।

(ख)

संकेतों के द्वारा कहानी-रचना

दिए हुए संकेतों के द्वारा कहानी लिखने का अभ्यास करना

चाहिए। इससे रचना में बहुत सहायता मिलती है। स्मरण और कल्पना शक्ति की जाग्रति होती है।

उदाहरण १—एक आदमी की चोरी हो गई थी।
२—उसके नौकरों में से एक ने चोरी की थी।
३—उसने उनको बराबर लम्बाई की छड़ियाँ दीं।
४—चोर की छड़ी दो इंच बढ़ जायगी।
५—चोर ने दो इंच छड़ी काट डाली।
६—आदमी ने इस तरह चोर को पकड़ लिया।

कहानी-रचना

एक आदमी की चोरी हो गई थी। उसके नौकरों में से ही एक नौकर ने चोरी की थी। उसने चोरी का पता लगाने के लिए अपने नौकरों को बराबर लम्बाई की छड़ियाँ दीं। और कहा कि जो चोर होगा उसी की छड़ी दो इंच बढ़ जायगी। उसका जो नौकर चोर था इस डर से अपनी छड़ी को दो इंच काट डाला। अंत में उसने सबकी छड़ियाँ देखीं तो बराबर पाईं परन्तु उस चोर नौकर की ही छड़ी दो इंच कम पाई। इस तरह उस आदमी ने अपनी बुद्धिमानी से चोर को पकड़ लिया।

(ग)

अधूरी कहानियों का पूरा करना

अधूरी कहानियों के पूरा करने में छात्रों को अपने मस्तिष्क से काम लेना पड़ता है। परन्तु साथ ही मनन करने और विचारने की शक्ति भी प्रबल होती है। यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक विद्यार्थी कहानी को एक ही प्रकार से पूरा करे। उसको अपनी रुचि-अनुसार पूरा करना चाहिए जिससे उनकी रुचि वैचित्र्य

का भी पता लग जायगा और साथ ही एक कथानक के अनेक रूपों का भी अनुभव हो जायगा जैसे :—

अधूरी कहानी।

उदाहरण :—एक कुत्ता मुँह में रोटी का एक टुकड़ा लिये हुए नदी में तैरता जाता था। अपनी परछाईं देख कर समझा कि दूसरा कुत्ता भी रोटी का टुकड़ा लिये हुए जा रहा है, जैसे...

पूर्ति की हुई कहानी

(१)

एक कुत्ता मुँह में रोटी एक का टुकड़ा लिये हुए नदी में तैरता जाता था। अपनी परछाईं देख कर समझा कि दूसरा कुत्ता भी रोटी का टुकड़ा लिये हुए जा रहा है जैसे उसकी रोटी का टुकड़ा छीनने के लिए मुँह खोला, तो गाँठ का टुकड़ा भी चला गया। सच है—लालच में आदमी मारा जाता है।

(२)

एक कुत्ता.........जैसे ही उसके मुँह में पानी भर आया। उसने दूसरे कुत्ते के मुँह से रोटी का टुकड़ा छीनने के लिए जो अपना मुँह खोला तो उसके मुँह की रोटी का टुकड़ा नदी में गिर गया। नदी में कोई दूसरा कुत्ता न था। लालची कुत्ते ने अपना टुकड़ा भी खो दिया।

सच कहा है :—

"आधी तज सारी को धावै,
आधी रहे न सारी पावे।"

नोट :—उपर्युक्त अधूरी कहानी की पूर्ति अनेक प्रकार से हो सकती है। परन्तु भाव सब का एक ही आ जाता है। इससे रचना में छात्रों को बड़ी सहायता मिलती है। इसका अभ्यास भली प्रकार करना आवश्यक है।

अभ्यास

(१) कहानी या गल्प रचना के लिए क्यों आवश्यक है? आधार और कथानक किसे कहते हैं?

(२) अपनी पाठ्य पुस्तक में से किसी कहानी को उसके संकेत निश्चय करके अपनी स्वतंत्र भाषा में उस कहानी को लिखो।

(३) एक ऐसी कहानी लिखो जिसका यह सार निकले— " लालच बुरी बला है "।

(४) एक ऐसी कहानी बनाओ 'जिसमें झूठ बोलने की आदत हो और उसकी झूठ से कई बार लोग धोखा खा चुके हों। फिर एक दिन सच्ची बात होने पर सब ने झूठी समझी हो इससे उसको हानि पहुँचती हो'।

(५) नीचे दिये हुए संकेतों से कहानी रचना करो :—

(क) एक दिन एक लोमड़ी बहुत प्यासी थी।

(ख) उसने एक बाग़ की दीवाल पर लटकते हुए पके अँगूरों का गुच्छा देखा।

(ग) वह उनको तोड़ने के लिए बहुत उछली-कूदी।

(घ) पर उनको खा न सकी।

(ङ) अँगूर खट्टे हैं।

(६) नीचे दी हुई अधूरी कहानी को भिन्न-भिन्न प्रकार से पूरा करो :—

एक किसान के तीन लड़के थे। जब वह मरने लगा, तो उनको अपने पास बुला कर कहा—" खेत में मैंने नौ सौ रुपये गाड़ रक्खे हैं। मेरे मरने के बाद तुम लोग उनको खोद कर आपस में बाँट लेना"। इसके बाद उसने उनको बिदा किया। कुछ दिनों बाद किसान........।

(७) एक आलसी मनुष्य की कहानी लिखो।

(८) निम्नलिखित विषयों पर कहानियाँ लिखो :—

(क) सन्तोषी सदा सुखी।

(ख) चुग़ली खाना बुरा है।

(ग) साँच को आँच नहीं।

(घ) पिता की आज्ञा मानना।

(ङ) बिना बिचारे जो करे सो पाछे पछिताय।

(च) मेल से रहना अच्छा है।

(छ) आपस की फूट बुरी होती है।

(ज) घमंडी का सिर नीचा।

प्रबन्ध-रचना

प्रबन्ध किसे कहते हैं ?

परिभाषा—यह बात सिद्ध हो चुकी है कि गद्य लेखकों की कसौटी है, तो इसलिए अब हमें मानना पड़ेगा कि प्रबन्ध गद्य की कसौटी है। भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास प्रबन्धों ही में संभव है, अतएव साहित्य में प्रबन्धों का स्थान बहुत उत्कृष्ट है। किसी की योग्यता और विद्वता का अनुमान उसके लिखे हुए प्रबन्धों को देखने से सरलता से चल सकता है। पर प्रबन्ध की परिभाषा बड़ी अनिश्चित है, और हिन्दी में तो प्रबन्धों की ओर अभी थोड़े ही समय से ध्यान दिया जाने लगा है। इस भाषा में अब तक जो प्रबन्ध (गद्य प्रबन्ध) लिखे गए, वे प्रारम्भिक अवस्था के थे। इसलिए उनके स्वरूप और प्रकार भी पृथक्-पृथक् थे। किसी में तो बड़ी क्लिष्ट भाषा में गूढ़ से गूढ़ विचार बहुत संक्षेप में भरे मिलेंगे, किसी में अनेक प्रकार की विवेचनापूर्ण बातें, किसी में कथोपकथन, किसी

में कुछ, किसी में कुछ लिखा मिलता है। इस तरह के प्रबन्धों को देख कर प्रबन्ध की परिभाषा का निर्णय करना बड़ी टेढ़ी खीर है। कोई विद्वान् ऐसी रचना को प्रबन्ध मानते हैं, जिनमें हृदय के उद्गार भरे हों—भले ही वह रचना क्रम और नियम के विरुद्ध हो। कोई विस्तारपूर्वक लिखी हुई संबद्ध रचना को प्रबन्ध बताते हैं, और कई विद्वानों के मत से प्रबन्ध वह रचना है, जिसमें पृथक्-पृथक् मतों का विचार करके कोई सिद्धान्त स्थिर किया गया हो। इस कथन से यह बात भली प्रकार प्रकट होती है कि उपर्युक्त परिभाषाएँ उपयुक्त माननीय नहीं। प्रबन्ध ऐसे भी होते हैं जिनमें हृदय के भाव हों, ऐसे भी जिनमें किसी विषय का बृहत् और संबद्ध विवेचन हो, और ऐसे भी जिनमें अलग-अलग मतों का विचार करके कोई सार निकाला गया हो। वास्तव में प्रबन्ध उस लेख को कहना चाहिए जिनमें किसी विषय पर विस्तारपूर्वक और पांडित्यपूर्ण विचार किया गया हो। पर विस्तार भी लम्बा न होना चाहिए।

प्रबन्ध लिखना कोई साधारण बात नहीं, क्योंकि उसमें थोड़े में बहुत सी बातें बतलानी पड़ती हैं। इस बात का ध्यान रखना पड़ता है, कि कोई व्यर्थ बात उसमें न आने पावे। ऐसा लेख वही लिख सकता है, जिसका ज्ञान बढ़ा-चढ़ा हो और जो अपना अभिप्राय थोड़ी सी बातों ही में लिख सकता हो। इनको निबन्ध भी कहते हैं।

निबन्ध रचना में किन-किन बातों की आवश्यकता है ?

निबन्ध-रचना के लिए नीचे लिखी बातें जानना आवश्यकीय हैं, जैसे :—

(क) वस्तु अर्थात् वर्णित विचार की जानकारी।

(ख) भाषा तथा शैली।

(ग) निबन्ध का ढाँचा ।
(घ) प्रारम्भ ।
(ङ) विस्तार ।
(च) समाप्ति ।
(छ) प्रबन्ध के भेद ।
(ज) लिखने की रीति ।

(क) वस्तु अर्थात् वर्णित विचार की जानकारी

वस्तु अर्थात् वर्णित विचार का साधारण अर्थ विषय का है । अतएव यहाँ विषय का ही उल्लेख करना मुख्य है । इस कारण प्रबन्ध रचना के लिए विविध विषयों की जानकारी आवश्यक है । विषय की पूर्ण जानकारी के बिना, रचना का कैसा ही अभ्यासी हो, लेख नहीं लिख सकता । हम यहाँ पर अनेक बातों का तो वर्णन नहीं कर सकते । किन्तु रचना का आदर्श और विषय की जानकारी का मार्ग दिखा सकते हैं । विषय का पूर्ण ज्ञान होने के लिए पुस्तकें पढ़ना, सत्संग, देशाटन, व्यवहार-कुशलता तथा कल्पना, विवेचना, विचार, निरीक्षण, अनुभव आदि शक्तियों का ठीक-ठीक प्रयोग करना आदि अनेक साधन हैं । इससे किसी वस्तु को देखो-भालो, कोई कहानी सुनो-समझो, कोई जीवन चरित्र पढ़ो-लिखो, प्रत्येक वस्तु के सम्बन्ध में सोचो-विचारो आदि साधनों से अनेक विषयों की जानकारी ज्ञात हो जायगी । फिर जाने हुए विषय को प्रबन्ध-रचना के रीत्यनुसार लिखने का अभ्यास करना चाहिए ।

वस्तु की जानकारी से यह तात्पर्य है कि जिस वस्तु पर निबन्ध लिखना है वह वस्तु क्या है, कहाँ से आई, किस काम की है, लोक में इसका क्या प्रभाव है, आदि बातों की पूर्ण

जानकारी होनी चाहिए। यदि कोई कहानी तथा जीवन चरित्र है तो उसमें यह जानना ज़रूरी है कि यह कहानी तथा जीवन चरित्र किसका है, वह कैसा व्यक्ति है, इसका लोक में क्या मान है, यह स्वार्थी है या परोपकारी, आदि बातों की जानकारी होनी चाहिए। हमारे कहने का तात्पर्य यही है कि हमको जिस विषय पर निबन्ध लिखना है, उसकी भली प्रकार जानकारी होनी चाहिए।

यह सत्य है कि विषय की बिना पूर्ण जानकारी के निबन्ध-रचना में भाषा का माधुर्य तथा स्वाभाविकता का लोप हो जायगा। अधूरी जानकारी के निबन्धों का साहित्य में कोई आदर नहीं होता? यह इसी प्रकार फीके लगते हैं जैसे कि बिना तेज का पुरुष। इससे निबन्ध-रचना में विषय की अभिज्ञता ही रचना का मुख्य अंग है।

(ख) भाषा तथा शैली

भाषा—भाषा वह साधन है जिसके द्वारा हम अपने विचार प्रकाशित करते हैं। इसके दूसरे शब्दों में यों भी कह सकते हैं कि भाषा हमारे विचारों की ध्वनिमयी मूर्ति है, अथवा उनका बाह्य रूप है। वास्तव में भाषा वही है जो बोली जाय। परन्तु यहाँ पर हमारा तात्पर्य लिखित भाषा से है कथित से नहीं। कथित अर्थात् बोलचाल की भाषा लिखित भाषा से पृथक् होती है। अर्थात् भाषा में बहुधा व्याकरण और मुहाविरों का अधिक ध्यान नहीं रक्खा जाता, यद्यपि विद्वानों की कथित भाषा में ये बातें नहीं होतीं। पर लिखित भाषा में व्याकरण के नियमों को मानना पड़ता है और भाषा विशुद्ध रखने का भी भली भाँति प्रयत्न किया जाता है। छात्रों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए, कि वह अपने प्रबन्धों में साहित्यिक भाषा का प्रयोग

करें, जिस भाषा का प्रयोग अच्छे-अच्छे लेखकों ने किया है—वह ग्रामीण भाषा अथवा अपनी बोलचाल की भाषा का प्रयोग न करें क्योंकि ऐसी भाषा में न तो मधुरता होती है और न शुद्धता होगी—इसके लिए कोष कंठाग्र करने की आवश्यकता नहीं। हाँ, कोष से आवश्यकतानुसार सहायता लेनी चाहिए क्योंकि इससे अच्छे-अच्छे मुहाविरों और शब्दों का प्रयोग भली प्रकार ज्ञात हो जाता है।

प्रारम्भ में लेखकों को उपयुक्त शब्द ढूँढ़ने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। परन्तु जब उनका शब्द-भाण्डार बड़ा हो जाता है और शब्दों का प्रयोग उनकी समझ में आ जाता है, तो उपयुक्त शब्द सरलता पूर्वक ही उनके मुँह में से निकलते आते हैं। रचना में शब्दों की तीन शक्तियों (जैसेः—लक्षणा, अभिधा और व्यंजना) से काम लेना चहिये। इन तीनों शक्तियों का प्रयोग आवश्यकता-नुसार ही करना अच्छा होता है। यदि किसी एक ही शक्ति का प्रयोग रचना में बारबार कर दिया जाय तो भाषा की स्वाभा-विकता जाती रहती है। शब्दों के विचार से कई प्रकार की शैलियाँ हो सकती हैं। तीन शैलियाँ तो तीनों शक्तियों के भिन्न-भिन्न प्रयोग करने से हुईं। अब इसके अतिरिक्त एक शैली वह है, जिसमें शब्द बहुत हों और अर्थ थोड़ा, दूसरी जिसमें शब्द थोड़े और अर्थ बहुत हो और तीसरी वह जिसमें न शब्द कम हों, न भाव। इन शैलियों में से छात्रों को अन्तिम शैली की शरण लेनी चाहिए। द्वितीय शैली बड़े अभ्यास और अध्ययन से आती है। प्रथम शैली श्रेष्ठ नहीं समझी जाती।

वाक्य—रचना में बड़े-बड़े वाक्यों का लिखना अच्छा नहीं होता, क्योंकि ऐसा होने से पढ़ने वालों के मन वाक्यांशों की भूल भुलैयों में पड़ जायेंगे और मुख्य बात ग्रहण न कर

सकेंगे। इसलिए विद्यार्थियों को रचना में सदा छोटे-छोटे वाक्यों का ही प्रयोग करना चाहिए। वह ऐसे वाक्य जिनका अर्थ सरलता से न समझा जा सके कदापि न लिखें।

पद—रचना में शब्दों से जड़े हुए वाक्य और वाक्यों से जड़े हुए पद लिखना चाहिए। पद वाक्यों से इस प्रकार जड़ा हो जैसे कि शब्दों से जड़ा हुआ वाक्य होता है। जैसे वाक्य में से एक शब्द बीच से निकाल देने से वाक्य निरर्थक हो जाता है। इसी प्रकार पद के बीच में से एक वाक्य निकाल दिया जाय तो वह निरर्थक हो जाता है। इसलिए शृङ्खलित वाक्यों के पद छोटे-छोटे लिखने चाहिए जिनसे अभिप्राय और सार स्पष्ट ज्ञात हो जाय। अब छात्रों को भाव प्रकाशन के लिए आवश्यकतानुसार विराम आदि चिह्नों से सुसज्जित सरल और सुबोध तथा अलंकृत भाषाओं का प्रयोग करना चाहिए। परन्तु भाषा की स्वाभाविकता का प्रत्येक दशा में ध्यान रखना आवश्यकीय है।

(ग) निबन्ध का ढाँचा

किसी प्रकार का निबन्ध लिखना हो, लिखने से पूर्व उसे उचित भागों में विभाजित कर लेना चाहिए। इस प्रकार विषय को विभाजित करने से बड़े-बड़े लेखकों को भी बड़ी सरलता हो जाती है, पर नये लेखक तो इसके बिना ठीक लिख ही नहीं सकते। ऐसा करने से लेखक सीमा के भीतर रहेगा और विषय के अंग प्रत्यंग पर प्रकाश डाल सकेगा। ठीक समय के भीतर उचित पंक्ति और पृष्ठों में प्रबन्ध को पूरा कर देगा और क्रम भी ठीक बैठ जायगा। लिखना आरम्भ करने से पूर्व लेख के विषय पर गहरी दृष्टि डालकर उसके सम्बन्ध में जितनी बातें ध्यान में आवें, एक काग़ज़ पर नोट कर लेना चाहिए और फिर हमारे साहित्य की भाषा शुद्ध हिन्दी है। इसमें अधिकांश संस्कृत शब्दों

का बाहुल्य न हो। जहाँ तक हो सके सब शब्द हिन्दी के ही हों जब उसी अर्थ के हिन्दी शब्द न मिलते हों अथवा किसी अवसर पर हिन्दी शब्दों की अपेक्षा विदेशी शब्द ही अधिक उपयुक्त हों तो भाषा में विदेशी शब्दों का भी समावेश कर देना चाहिए। परन्तु यह शब्द व्याकरण के अनुशासन से संयत हों। इसलिए निबन्धों की भाषा सरस, सरल, स्पष्ट तथा शुद्ध व्याकरण से गढ़ी हुई होनी चाहिए।

शैली—शैली का वर्णन हम पहले कर चुके हैं परन्तु यहाँ पर भाषा के साथ शैली का वर्णन करना आवश्यकीय है। प्रत्येक लेखक का भाषा को प्रयुक्त करने का ढंग अनोखा होता है। यही उसकी शैली कहलाती है। कोई सरल शब्द प्रयोग करता है, कोई जटिल: कोई छोटे-छोटे वाक्य लिखता है, कोई बड़े-बड़े; कोई ठेठ संस्कृत के शब्द लिखता है, कोई विदेशी शब्दों का प्रयोग करता है; कोई सुबोध भाषा लिखता है, कोई अलंकृत: किसी रचना में शब्द-बाहुल्य होता है, भावों और विचारों की कमी और किसी में शब्दों का अभाव और भावों की भरमार। ये ही पृथक् पृथक् शैलियाँ हैं।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि एक ही लेखक अलग-अलग लेखों में अथवा एक ही लेख में भिन्न-भिन्न शैलियों का प्रयोग करता है। जैसे गोस्वामी तुलसी दास के रामचरितमानस, गीतावली तथा कवितावली की शैलियाँ विभिन्न हैं। बहुधा यह देखा गया है कि प्रारम्भिक अवस्था में लेखकों की शैली शब्द प्रधान होती है। उनकी रचना पढ़ने से साफ़ विदित होता है कि उन्होंने भावों की श्रेष्ठता और सूक्ष्मता की ओर उतना ध्यान नहीं दिया है जितना शब्दों के छाँटने में। जब उनका अधिकार धीरे-धीरे भाषा के ऊपर बढ़ जाता है, तो उपयुक्त शब्द बिना प्रयास ही उनके मस्तिष्क में से निकलते आते हैं।

यदि मान लो कि रचना-चमत्कार ही का दूसरा नाम शैली है तो यह चमत्कार शब्दों की योजना से, वाक्यांशों के प्रयोग से, वाक्यों की बनावट से और उनकी ध्वनि से उत्पन्न होता है। भाषा उन अर्थवाले शब्द-समूहों का नाम है, जो एक विशेष क्रम से प्रयुक्त होकर हमारे मन की बात दूसरे के मन तक पहुँचाने और उसके द्वारा उन्हें प्रभावित करने में समर्थ होते हैं। इसलिए शब्दों पर पहिले विचार किया जायगा। हालाँकि शब्द, वाक्य और पदों का पहले वर्णन कर चुके हैं परन्तु यहाँ पर हम छात्रों की सुविधा से इनके अन्तर्गत मुख्य-मुख्य बातों का उल्लेख किये देते हैं।

शब्द—लेखक की सारी सम्पत्ति शब्द ही है। इन्हीं को सुन्दर रूप से सुसज्जित करके वह अपना मनोरथ सिद्ध करता है। इसलिए यह परमावश्यक है, कि शब्दों के चुनाव में बहुत होशियारी से काम लेना चाहिए। चतुर लेखक वही है जो अवसर के अनुसार ठीक शब्दों का प्रयोग कर सकता है। इसके लिए शब्द-भाण्डार तो बड़ा होना ही चाहिए, अलग-अलग पर्यायवाची शब्दों में जो साधारण भेद होता है वह भी ज्ञात करना आवश्यक है। शब्दों का इस प्रकार का उपयुक्त प्रयोग सीखने के लिए छात्रों को चाहिए, कि अच्छे-अच्छे लेखकों की रचनाएँ ध्यानपूर्वक अध्ययन किया करें। विद्वान लोगों की वार्तालाप से भी बहुत से प्रयोग सीखे जा सकते हैं। परन्तु याद रखना चाहिए कि यह अनुभव शनैः शनैः ही प्राप्त होता है। क्रमानुसार ठीक-ठीक ढाँचा बाँध लेना चाहिए। बिना ढाँचे के विद्यार्थियों को कोई निबन्ध न लिखना चाहिए क्योंकि बिना ढाँचे के निबन्ध लिखने में बड़ी कठिनता पड़ती है और विषय का क्रम बेक्रम हो जाता है। इससे निबन्ध ढाँचे से ही लिखना आवश्यकीय है।

(घ) प्रारम्भ

प्रायः लेख का प्रारम्भ करना बहुत कठिन मालूम पड़ता है, और ढाँचे के बहुत से शीर्षकों को देखकर लेखक निश्चय नहीं कर सकता कि कहाँ से आरम्भ करें। वस्तुतः यह काम कठिन भी है, क्योंकि यदि किसी अप्रधान वस्तु से प्रारम्भ करें तो पाठकों का हृदय पहले ही से मुरझा जाता है; यदि सब से प्रधान बात पहले ही लिख दें और अन्त तक उसका निर्वाह न बन पड़े तो दुर्बलता विदित होती है। मुख्य प्रयोजन यह है कि आदि से अन्त तक विषय ऐसा जकड़ दिया जावे कि पाठकों का चित्त उससे न हटे, ज्यों ज्यों आगे बढ़े त्यों त्यों ज़ंजीर की कड़ियों की तरह आनुपूर्वी से विषय फैलता जावे और अन्त के निकट फिर सिकुड़ने लगे, यहाँ तक कि समाप्त होने तक पाठकों के चित्त में यह भाव उत्पन्न हो जावे कि इस विषय में जो कुछ जानना था सब हो गया। इससे मन में एक प्रकार का आनन्द सा आ जाता है।

श्रेष्ठ लेखक कई प्रकार से अपना निबन्ध प्रारम्भ करते हैं।

(१) मोटी तरह से अपने निबन्ध का विषय बतला देना, जैसे इस विषय पर मैं कुछ कहना या लिखना चाहता हूँ, अथवा इस विषय की यह परिभाषा है अथवा अर्थ है। ध्यान रहे कि पाठकों को जिस बात के ज्ञान करने की सम्भावना है उसी से लेखक को प्रारम्भ करना चाहिए, ऐसी बात कभी न लिखे जिसे पाठक न जानते हों या जिसके पढ़ने से उनका चित्त लेख पर न ठहर सके।

(२) कोई छोटी सी कहानी या कथा लिखना। कहानी ऐसी हो जो तुम्हारे निबन्ध पर घटित होती हो जो पाठक का ध्यान बँधा देती हो। और विषय पर भली भाँति सम्बन्धित

हो। अर्थात् वह विषय को साफ़-साफ़ प्रकट करती हो, परन्तु बहुत लम्बी चौड़ी न हो।

(३) किसी अच्छी कहावत या कवि के वचन का लिखना। इसका भी सम्बन्ध लेखन-विषय से पूरा-पूरा होना चाहिए।

(४) कभी-कभी विषय का एक दम—प्रारम्भ करना। यह प्रायः ऐसी दशा में किया जाता है जब लेख्य-विषय लेखक व पाठक दोनों को अच्छी तरह ज्ञात हो।

उपर्युक्त कथन के ढँगों में से कौन सा ढँग किस विषय पर लगाना चाहिए। इसका कोई मुख्य नियम नहीं बतलाया जा सकता। तात्पर्य यह है कि विभिन्न लेखक एक ही लेख को विभिन्न प्रकार से आरम्भ करते हैं। कोई विषय की भूमिका बाँधकर, कोई परिभाषा कहकर, कोई किसी बात कहावत या कवि-वाक्य को कह कर, कोई विषय का सार कह कर और कोई घटना का मध्य पकड़ कर लेख आरम्भ कर देते हैं। इन सब का उल्लेख आगे उदाहरणों में दिया जायगा।

(ङ) विस्तार

प्रारम्भ करने के बाद सूची के प्रत्येक उपशीर्षक को देखकर वाक्य-समूह या अनुच्छेद (पैराग्राफ़) की रचना होनी चाहिए। एक वाक्य-समूह के वाक्यों में पारस्परिक और आनुपूर्व सम्बन्ध होना चाहिए। एक वाक्य-समूह में वर्णित भावों को छोटे बड़े के अनुसार अनुच्छेद छोटा और बड़ा होता है। भाव बड़े के कारण कभी-कभी एक भाव, एक से अधिक अनुच्छेदों में लिखा जाता है। इस प्रकार सूची के हर एक उपशीर्षक पर अनुच्छेद-रचना करनी चाहिए। और जिस प्रकार एक अनुच्छेद के सब वाक्यों में

पारस्परिक-आनुपूर्व सम्बन्ध होता है, उसी भाँति एक विषय के सब अनुच्छेदों में पारस्परिक-आनुपूर्व सम्बन्ध होता है। किसी भाव की पुष्टि में कोई कहावत, किसी कवि का वचन अथवा कोई उदाहरण लिखना उचित हो, लिख देना चाहिए। परन्तु उदाहरण संक्षिप्त हो और विषय से पूरा सम्बन्ध रखता हो।

(च) समाप्ति

अपने शीर्षकों को पैराग्राफों (अनुच्छेदों) में लिखते-लिखते जब सब लिख चुको तो लेख को समाप्त करो। निबन्ध की समाप्ति में भी कुछ कठिनता रहती है अर्थात् अगर एक दम समाप्त कर दोगे तो पाठकों को प्रतीत होगा कि तुम बोझ सा लेकर गिर पड़े हो और उनके अब तक उत्साहित चित्त में एक धक्का सा लगेगा। इस दोष को दूर करने के लिए अन्त के अनुच्छेद में पूर्व लिखी हुई बातों का सारांश या उनका फल दिखलाओ, या उस विषय से जो कोई शिक्षा मिलती हो उसे लिख दो, या उससे अगर कोई बुराई निकलती हो तो उससे बचने का उपाय बतलाओ; अगर आवश्यकता हो तो कभी-कभी अपनी राय भी प्रकट करो, परन्तु याद रहे कि अन्त का अनुच्छेद सब का सार है और उसके लिखने में जैसी चतुरता दिखलाओगे वैसा ही अच्छा प्रभाव पाठकों के ऊपर पड़ेगा। इसीलिए उसे अत्यन्त बलयुक्त व प्रभाव-शाली शब्दों में लिखना चाहिये। लिखे हुए निबन्ध को एक बार फिर पढ़ जाओ। जहाँ जहाँ पर विरामादि चिह्न छूट गये हों अथवा कोई व्याकरण और मुहाविरों की भूल हो गई हो, ठीक कर लो। इस तरह निबन्ध की समाप्ति करना चाहिए।

(छ) निबन्ध के भेद

वस्तु-भेद से निबन्ध बीसियों प्रकार के हो सकते हैं—ऐतिहासिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक, राजनीतिक, सामाजिक, वर्णनात्मक, तुलनात्मक, आदि। निबन्ध में जिस प्रकार के विषय का विवेचन किया जायगा उसी प्रकार का वह निबन्ध कहलायेगा। पर साधारणतः निबन्धों के चार भेद माने जाते हैं—(१) वर्णनात्मक (Descriptive), (२) विवरणात्मक या कथात्मक (Narrative) (३) व्याख्यात्मक या विचारात्मक (Reflective) (४) तार्किक (Argumentative)। अन्य सभी प्रकार के निबन्ध इन्हीं के अन्तर्गत आ जाते हैं।

(१) वर्णनात्मक

किसी वस्तु, स्थान, दृश्य, समय आदि का सामान्य रूप में वर्णन करना—जिसे आँखों से देखा है, कानों से सुना है अथवा और किसी रीति से जाना है। छात्रों को चाहिए कि सूक्ष्म वेक्षण की बान डालें। वर्णनों में केवल कुछ वस्तुओं के नाम गिना देने से काम न चलेगा—उनका संबन्ध चित्र-सा उपस्थित करना चाहिए जैसे :—

'सन्ध्या समय का वर्णन', 'बसन्त ऋतु का वर्णन', 'नीम का पेड़', 'यमुना की छटा', ताज महल आदि।

(२) विवरणात्मक या कथात्मक

इन निबन्धों में किसी घटना आदि का क्रमबद्ध वर्णन करना पड़ता है। ऐतिहासिक लेख, जीवन चरित्र, यात्रा वर्णन, दिनचर्य्या वर्णन आदि इस शीर्षक के अन्तर्गत आ सकते हैं। इस प्रकार के निबन्धों में घटनाओं का क्रमानुसार वर्णन होना चाहिए, और यथाशक्ति उनके कारण भी बताने चाहिए।

यदि संभव हो और आवश्यकता समझी जाय, तो मिलता-जुलता हुआ कोई उदाहरण दे देना भी बुरा नहीं। प्रायः ऐसा करने से कोई गूढ़ बात स्पष्ट ही हो जाती है। साथ ही साथ थोड़ी बहुत टीका-टिप्पणी भी होनी चाहिए। जैसे :—महाराणा प्रताप, शिवाजी, पं० मदन मोहन मालवीय आदि।

(३) व्याख्यात्मक या विचारात्मक

निबन्धों में किसी अमूर्त्त (Abstract) विषय के ऊपर अपने विचार प्रकट करने पड़ते हैं, जैसे :—चिन्ता, आशा, क्रोध, धैर्य्य, दया आदि। प्रायः विद्यार्थीगण इस प्रकार के निबन्धों का प्रारम्भ परिभाषा से करते हैं—चिन्ता क्या है? आशा क्या होती है? क्रोध किसे कहते हैं? धैर्य्य क्या होता है? दया किसे कहते हैं? परन्तु यह ढँग बहुत अच्छा नहीं। परिभाषा तो तभी देनी चाहिए, जब विषय बहुत कठिन हो। साधारण विषयों की परिभाषा देना ठीक नहीं। इसका निर्णय तो प्रत्येक विद्यार्थी को अपनी योग्यतानुसार ही करना पड़ेगा। प्रायः इस प्रकार के विषयों के सम्बन्ध में गुणों और दोषों का विवेचन किया जाता है, हानि-लाभ दिखाये जाते हैं और एक आध उदाहरण भी दिया जाता है।

(४) तार्किक

सद्-असद्-विवेकिनी बुद्धि तथा युक्ति (तर्क) द्वारा सत्यासत्य का निर्णय, अच्छे बुरे का निर्णय, अनुकूल और प्रतिकूल सम्मतियों का निर्णय, सार-असार का निर्णय जिन लेखों में किया जाय, वह तार्किक वा आलोचनात्मक वा विवेचनात्मक निबन्ध कहलाते हैं। किसी ऐतिहासिक घटना को तर्क पर तोल कर उसके सत्यासत्य का निर्णय इसी भेद में आ जाता है। जैसे :—परीक्षा, तलवार, मरना ही जीना है, सृष्टि कैसे उत्पन्न होती है आदि।

(ज) लिखने की रीति

(१) जैसे-जैसे तुम्हारे मस्तिष्क में विचार आते जाएँ उन्हें शीघ्र लिखते जाओ। इन लिखे हुए विचारों पर फिर से दृष्टि डाल लो।

(२) जितना समय तुम्हारे पास हो उसका कम से कम छठा भाग ढाँचा तैयार करने में लगाओ। फिर ढाँचे के अनुसार अपने संकलित विचारों को कई भागों में विभाजित कर लो और देखो, कौन बात किस भाग में डाली जा सकती है। ऊपर ढाँचे में जो विचार जिस भाग में आये हैं उस भाग में उन विचारों की क्रम संख्या लिख दी गई है। निबन्ध ढाँचे के अनुरूप ही लिखना चाहिए।

(३) निबन्ध की प्रत्येक बात को उसकी आवश्यकता और उपयोगिता की दृष्टि से ही स्थान दो। ऐसा न हो कि अनावश्यक बातों को अधिक स्थान दे दिया जाये और आवश्यक बातों को कम और विषय से विषयान्तर की ओर न जाना चाहिए। स्पष्ट लिखो, जो कुछ लिखो उसका आशय ठीक होना चाहिए।

(४) भाषा सरल और व्याकरण के अनुसार बिलकुल विशुद्ध होनी चाहिए। बहुत जटिल शब्द या वे शब्द जिनके अर्थ तुम्हें न ज्ञात हों मत लिखो। और इस बात का प्रयत्न मत करो कि बहुत लिखो, वरन् इस बात की कोशिश करो कि जितना लिखो, बहुत सुन्दर तथा अच्छा लिखो। फिर पीछे पढ़े हुए शीर्षक, विराम चिन्ह, अनुच्छेद और शैली आदि प्रकरणों में अध्ययन की हुई बातों को स्मरण रखो और जहाँ जिस बात की आवश्यकता हो उन्हें

प्रयोग में लाओ। जब निबन्ध पूरा लिख जावे तब उसे दुबारा पढ़ लेना चाहिए और जो त्रुटि उसमें रह गई हो उसे ठीक कर दो। अतएव छात्रों को उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए निबन्ध-रचना करनी चाहिए।

निबन्धों के नमूने

अब आगे सब प्रकार के निबन्धों के कुछ नमूने दिये जाते हैं। इनमें से कुछ तो ढांचे के रूप में हैं, कुछ पूर्णरूप में हैं, और कुछ दोनों में हैं। पहले के कई नमूने के दोनों रूप दिये गये हैं, पर आगे चल कर एक ही एक रूप। ढांचे को विस्तृत कर पूरा निबन्ध सरलतापूर्वक लिख सकते हैं। और प्रत्येक के साथ में दिये हुए अभ्यासों से भी पूर्ण लाभ उठाना चाहिए।

(१) वर्णनात्मक

गाय

ढांचा

(१) जाति—चौपाया, अन्य चौपायों से भेद, सींग, खुर फटे, दांतों की एक ही पंक्ति।

(२) निवास—सब देशों में, मनुष्यों के साथ, पालतू जीव।

(३) भोजन—घास, पत्तियां, भूसा, कर्बी, अनाज और खली।

(४) स्वभाव—बहुत सीधा, बच्चों पर प्यार।

(५) संतान—१०-१२ तक, साधारणतः तीसरे वर्ष।

(६) लाभ—दूध, दही, गोबर, बच्चे, खाल, हाड़, मांस।

(७) हानि—देवता रूप परस्पर की लड़ाई, वैमनस्य।

गाय

(१) गाय एक घरेलू पशु है, जिसको चतुष्पद कहते हैं। यह

बच्चा देने वाली और उनको दूध पिलाने वाला जानवर है। हाथी, घोड़ा और गधा आदि अन्य चौपायों से इसमें यह विभिन्नता होती है कि इसके सींग होते हैं, और चारों खुर फटे होते हैं तथा दाँतों की केवल एक पंक्ति नीचे की ओर होती है, परन्तु घोड़ों, गदहों और खच्चरों तथा हाथी में ये बातें नहीं होतीं।

(२) गाय सब देशों में पाई जाती हैं और आबहवा के अनुसार छोटी, बड़ी, दुधारी और सूखी होती है। प्रायः यह पालतू होती है और मनुष्यों ही के बीच रहती है। यह ग्राम्य पशु है, योरोप की गाय भारतवर्ष की गाय से बड़ी होती हैं। उनके कूबड़ नहीं होता है।

(३) इसका मुख्य भोजन, घास, पत्तियाँ और भूसा आदि हैं, अतएव इसके पालने में अधिक व्यय नहीं होता। दयालु मनुष्य और विशेषतः दूध के लोभी इसे अनाज, खली, और नमक भी खिलाते हैं। गाय को महुवा बहुत प्यारा लगता है। कहावत है :—

'सीधी गाय मिलौंदे खाय, दौड़-दौड़ महुवा ते जाय'।

(४) गाय का स्वभाव बहुत सीधा होता है। कोई-कोई मारती भी है, पर बहुत कम। चरने के लिए छोड़ देने पर सायंकाल को अपने घर पर आ जाती है। इसको अपने बच्चों पर बड़ी ममता होती है। सन्ध्या समय थनों में दूध भरे हुए बच्चों के लिए रभाँती हुई दौड़ती चली आती है। इसकी सिधाई को देखकर ही सीधे आदमी के लिए 'गौ आदमी' कहते हैं। परन्तु इसके सामने यदि कोई इसके बच्चे को सताता है, तो यह क्रोधित होकर मारने दौड़ती

है। भेड़िया आदि हिंसक पशुओं से भी अपने बच्चों की रक्षा कर लेती है और भेड़िए को मार डालती है।

(५) गाय प्रायः तीसरे वर्ष बच्चा देती है और अगर ठीक समय पर बच्चा जनती जावे तो दस-बारह बच्चे तक दे सकती है।

(६) गाय से मनुष्य को बहुत बड़े-बड़े लाभ हैं इसका दूध पीते हैं और उससे दही, मक्खन, घी, छाछ, मिठाइयाँ आदि भी बनाते हैं। इसके गोबर से मकान लीपते हैं और सुखा कर कंडे भी बनाते हैं या उसे खाद के काम में लाते हैं। इसके बच्चों अर्थात् बछड़ों को जो बड़े होकर बैल कहलाते हैं वह गाड़ी और हल में जोते जाते हैं। इनसे खेती का बड़ा भारी काम निकलता है। इसकी खाल से जूते, पुर और बहुत सी चीजें बनाते हैं। इसकी हड्डियाँ खेत में पड़कर पृथ्वी को उपजाऊ कर देती हैं। बहुत जातियों के लोग इसका माँस खाते हैं, परन्तु हिन्दू लोग इसे देवता की तरह पूजते हैं और सवेरे उठ कर दर्शन करते हैं। इन सब लाभों को देख कर जहाँ तक हो सके ऐसे उपकारी जीव की वृद्धि करनी चाहिए।

(७) यवन लोग इसका माँस भक्षण करते हैं और अपने विशेष उत्सवों पर इसका बध बड़े समारोह के साथ करते हैं। इससे हिन्दू-मुसलमानों में प्रायः मारपीट हो जाती है' जानें जाती हैं, वैमनस्य बढ़ता है। यह जीव हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि सब जातियों के लिए समान रूप से उपकारी है। सबको एकसा मीठा, स्वादिष्ट दूध देती है। मुसलमान भी गाय पालते हैं और उसको हिन्दुओं से अधिक प्यार से रखते हैं। क्या ही अच्छा हो, यदि दोनों जातियाँ

इस उपकारी जीव को अपनी प्यारी वस्तु बना लेवें और उसकी वृद्धि के लिए जी-जान से लग जावें, तो फिर भारतवर्ष में दूध की नदियां बहने लगें। दोनों के बच्चे बलिष्ठ बनें और फिर भारतवर्ष में अर्जुन, भीम, हनुमान, रुस्तम, अकबर, गुलाम ऐसे अद्वितीय वीर और पहलवान पैदा होने लगें। बादशाह अकबर ने 'नरहरी' कवि का एक छप्पय सुनकर अपने शासनकाल में गौ-वध बंद कर दिया था। छप्पय यह है :—

अरिहुँ दन्त तृन धरैं ताहि मारत न सबल कोइ:
हम संतत तृन चरहिं वचन उच्चरहिं दीन होइ।
अमृत पय निज स्रवहिं बच्छ महिं थभन जरवहि:
हिन्दुहिं मधुर न देहिं कटुक तुरकहिं न पियावहिं।
कह कवि नरहरि अकबर सुनो बिनवत गउ जोरे करन—
अपराध कौन मोहि मारियतु, मुयहु चाम सेवइ चरन।

गाय देवता रूप है, बड़ी उपकारी है, इसलिए संसार में सब को ही इस पर प्रेम करना चाहिए।

अभ्यास

१—निम्नांकित दिए हुए ढांचों के आधार पर निबन्ध लिखो :—

(क) घोड़ा

(१) भूमिका—महत्व, कहां-कहां पाया जाता है।
(२) आकृति—रंग, आकार आदि की विभिन्नता।
(३) स्वभाव—जंगली जीवन, पालतू-जीवन, स्वामिभक्ति।
(४) उपयोगिता—रक्षा, शिकार, कौतुक आदि।
(५) समाप्ति—रोगी घोड़ा, उसका उपकार—मवेशियों का अस्पताल—घोड़े का मनुष्य समाज में आदर।

कथात्मक

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

१—प्रस्तावना—जन्म और वंश-परिचय।
२—शिक्षा-दीक्षा।
३—जीवन के कार्य।
४—मृत्यु।
५—चरित्र।
६—महत्व।
७—हिन्दी साहित्य में स्थान।
८—अनूठी कविताएँ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

१—भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र बंगाल के इतिहास प्रसिद्ध सेठ अमीचन्द के वंश में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता बाबू गोपालचन्द्र हिन्दी के एक अच्छे कवि थे। बाबू हरिश्चन्द्र का जन्म काशी में भाद्रपद शुक्ला सप्तमी सं० १९०७ को हुआ था। इनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। जब ये ५-६ वर्ष के थे, उसी समय अपने पिता को कविता करते देखकर इन्होंने भी एक दोहे की रचना की थी, जिसके ऊपर पिता ने आशीर्वाद दिया कि हमारे नाम को बढ़ावेगा। इसी प्रकार कच्छपकथामृत के मंगलाचरण के एक पद का भी इन्होंने बड़ा ही अनोखा अर्थ लगाया था। एक दिन पिता को तर्पण करते हुए देखकर आपने पूछा—"बाबूजी पानी में पानी डालने से क्या लाभ ?" यह सुनकर पिता ने मस्तिष्क ठोंका और कहा—'जान पड़ता है कि तू कुल बोरेगा'। समय पाकर पिता के आशीर्वाद और शाप दोनों

फलीभूत हुए। ये उपद्रवी भी अव्वल नम्बर के थे, यहाँ तक कि एक बार तीन कोस तक दौड़ते चले गए थे।

२—नौ वर्ष की आयु में हरिश्चन्द्र जी के पिता का स्वर्गवास हो गया। इससे इनकी स्वतंत्र प्रकृति को और भी स्वच्छन्दता मिल गई। प्रारम्भ में इन्हें घर पर ही हिन्दी-फ़ारसी-अँग्रेज़ी की शिक्षा दी गई। तत्पश्चात् ये क्वीन्स कालेज में भरती हुए। पढ़ने में इन्होंने कभी मन नहीं लगाया; परन्तु ये अपनी बुद्धि की तीव्रता से परीक्षाओं में सदैव उच्च स्थान प्राप्त करके अध्यापकों को आश्चर्य में डाल देते थे। उस समय काशी के रईसों में राजा शिवप्रसाद अँग्रेज़ी के अच्छे विद्वान् थे। इसलिए बाबू हरिश्चन्द्र कुछ दिनों तक उनके पास अंगरेज़ी पढ़ने को जाते रहे। तीन-चार वर्ष तक तो पढ़ने का क्रम ज्यों-त्यों करके चला, परन्तु १४ वर्ष की अवस्था में ये अपनी माता के साथ जगन्नाथजी की यात्रा को गए, और तभी से पढ़ना-लिखना छूट गया।

३—यात्रा से लौटने पर इनकी रुचि कविता और देश-हित की ओर विशेष फिरी। इनको निश्चय हो गया, कि बिना पाश्चात्य शिक्षा के कुछ नहीं हो सकता। इसलिए इन्होंने स्वयं भी पठित विषयों का अभ्यास आरम्भ किया, और मुहल्ले के लड़कों के लिए अपने घर पर एक स्कूल भी खोल दिया। यही स्कूल उन्नति करते-करते आज हरिश्चन्द्र हाई स्कूल के नाम से विख्यात है। सन् १८६८ में उन्होंने 'कवि वचन सुधा' नामक मासिक पत्र निकाला, जिसमें नये पुराने अनेकों हिन्दी कवियों के अप्रकाशित ग्रन्थ प्रकाशित हुए। धीरे-धीरे 'कवि वचन सुधा' को उन्होंने पाक्षिक और फिर साप्ताहिक कर दिया, और उसमें राज-

नीति तथा समाज सुधार विषयक गद्य लेख भी लिखने लगे। सन् १८७० में ये आनरेरी मजिस्ट्रेट बनाये गये, पर कुछ दिनों बाद इन्होंने स्वयं ही उस पद को त्याग दिया। सन् १८७३ में इन्होंने हरिश्चन्द्र 'मेगज़ीन' निकालना प्रारम्भ किया, किन्तु वह शीघ्र ही बंद हो गया। इसी वर्ष में इन्होंने 'पेनीरीडिंग क्लब' की, जिसमें भद्र लोग अच्छे विषयों पर निबन्ध पढ़ते थे और 'तदीय समाज' की, जिसमें प्रेम और धर्म सम्बन्धी विषयों पर विचार हुआ करता था, स्थापना की। दिल्ली दरबार के समय इस समाज ने गौ रक्षा के लिए एक लाख प्रजा के हस्ताक्षर करवाये थे। स्त्रियों के उपकारार्थ इन्होंने 'बाला बोधिनी' नाम की पत्रिका निकाली थी, परन्तु वह चार ही वर्ष चली। फिर इन्होंने 'कवितावर्धिनी सभा' स्थापित की, जिसमें प्रसिद्ध कवि सरदार, सेवक, दीनदयाल गिरि आदि उपस्थित होते थे। भारतेन्दु स्वयं पुस्तक रचना करते थे। तथा और और लेखकों को पुरस्कार एवं प्रशंसापत्र देकर उत्साहित किया करते थे। सन् १८८६ ई० में वैष्णव छात्रों के लिए इन्होंने तीन परीक्षाएँ नियत कीं, जिनमें उत्तीर्ण होने पर यह विद्यार्थियों को पारितोषिक भी देते थे।

४—मेवाड़-नरेश महाराणा सज्जनसिंह का इन पर बड़ा स्नेह था। उनसे मिलने यह सन् १८८२ में उदयपुर गये। वहाँ से लौटने पर बीमार पड़ गये, परन्तु बीमार दशा में भी इन्होंने पढ़ना-लिखना न छोड़ा। फल यह हुआ, कि क्षयग्रस्त हो गए और सन् १८८५ में ६ जनवरी को, चार पाँच दिन खाँसी बुखार से पीड़ित रह कर, संसार से कूच कर गए। इनकी मृत्यु से भारतवर्ष भर के विद्वानों को

दुःख हुआ था। सारे देश में शोक सभाएँ हुईं और अँग्रेज़ी, उर्दू, बंगाली, गुजराती, मरहठी आदि प्रायः सब भाषाओं के पत्रों ने महीनों शोक-चिन्ह धारण किया।

५—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र बड़े उदार पुरुष थे। कितने ही लोगों को पुरस्कार दे देकर इन्होंने कवि और सुलेखक बना दिया। ये सौन्दर्य्य के बड़े प्रेमी थे। गाने बजाने, चित्रकारी, पुस्तक-संग्रह अद्भुत पदार्थ संग्रह, सुगन्ध संग्रह, उत्तमवस्त्र, खिलौने, पुरातत्व की वस्तु, लेम्प, फोटो आदि सभी का इन्हें बड़ा शौक़ था। इनके पास कोई गुणी आ जाता, तो वह विमुख न जा सकता था। जिसने इनकी कोई चीज़ पसन्द की, वह शीघ्र उसकी भेंट की गई। दीप मालिका को ये इत्र के दीपक जलाते थे और स्नान में प्रायः सदैव गुलाब जल तेल के स्थान में इत्र का व्यौहार करते थे। इनकी यह दशा देखकर काशी-नरेश ने इन्हें समझाया भी, पर इन्होंने उत्तर दिया—'हुजूर यह धन मेरे बाप-दादों को खा गया है, अब मैं इसे खा जाऊँगा' और यही हुआ भी बीस बाईस वर्ष की अवस्था में ही तीनचार लाख की पैतृक सम्पत्ति फूँक-फाँक कर ये ऋण ग्रस्त हो गए, और इनका अन्तिम समय कष्ट में बीता। हास्य की मात्रा भी इनमें भरपूर थी और दिल्लगी की तो मूर्ति थे। इनके पास थोड़ी देर बैठने से ही—दुःख शोक जाने कहाँ उड़ जाते थे और चित्त प्रफुल्लित हो जाता था। अन्य-अन्य अच्छे पदार्थों के साथ-साथ इन्हें मद की भी लत पड़ गई थी—फिर भी अपने काव्य में इन्होंने मद की निंदा की है। अपने सम्बन्ध में प्रायः यह दोहा कहा करते थे :—

"चन्द्र टरै सूरज टरै, टरै जगत के नेम।
पै दृढ़ श्री हरिचंद को टरै न अविचल प्रेम ॥"

६—यह बड़े प्रेमी जीव थे। प्रेम योगिनी में इन्होंने अपना हृदय खोल कर रख दिया है। जिस समय ये प्रेमावेश में होते थे, इन्हें अपने शरीर की सुधि न रहती थी। हरिश्चन्द्र आधुनिक हिन्दी के जन्मदाता कहे जाते थे। केवल ३५ वर्ष इस संसार में रहकर इन्होंने लगभग १७५ ग्रन्थों की रचना कर डाली। इनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी—नाटक, (गद्य-पद्य), राजनीति, समाज-सुधार, परिहास, पाखण्ड-विडम्बना, इतिहास, यात्रा, आख्यायिका, उपन्यास, व्याख्यान आदि सभी विषयों पर इन्होंने लेखनी चलाई है और कमाल करके दिखाया है। पर सब से अधिक प्रसिद्ध इनके नाटक ही हैं—जिनमें कुछ अनुवादित हैं और कुछ मौलिक। इनकी सी सुव्यवस्थित, परिमार्जित और गठी हुई भाषा इनके पूर्ववर्ती किसी लेखक की न थी। इनके नाटकों में 'सत्य-हरिश्चन्द्र', 'मुद्राराक्षस', प्रेम योगिनी', भारत दुर्दशा', 'रत्नावली', 'विद्यासुन्दर', 'नीलदेवी' आदि अधिक सुन्दर हैं। ये नाटक केवल लिखते ही न थे, बल्कि अपने रचे हुए नाटक स्वयं खेलते भी थे। इसलिए हिन्दी नाटकों का इतना प्रचार हो सका। इनकी विद्वता और सर्व प्रियता के कारण ही पं० रामशंकर व्यास ने 'सार-सुधानिधि, में इन्हें 'भारतेन्दु' की उपाधि से विभूषित किया था, और सारे देश ने इसका अनुमोदन किया। हिन्दी को राजभाषा बनाने का सर्व प्रथम उद्योग हरिश्चन्द्रजी ने ही किया। ये आसु कवि थे—इधर बातें करते जाते थे उधर कविता लिखते जाते थे। अंधेर नगरी

एक ही दिन की रचना है। इनकी गोष्ठी में पं० प्रताप नारायण मिश्र, पं० बद्री नारायण चौधरी, अम्बिकादत्त व्यास आदि अच्छे हिन्दी प्रेमी थे। यह भारतेन्दु ही का प्रताप है कि आज हिन्दी को यह स्थान प्राप्त है, और उसमें भिन्न-भिन्न विषयों पर इतनी पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। यह मार्ग भारतेन्दु का दिखाया हुआ था और इसके लिए हिन्दी भाषा इनकी चिर-ऋणी रहेगी।

७—आधुनिक काल के कवियों में भारतेन्दु का स्थान हिन्दी-साहित्य में सबसे प्रथम है क्योंकि इन्होंने सभी प्रकार की शैलियों में अच्छी तरह लिखा है। कोई भी शैली इनसे अछूती नहीं बची।

८—इनकी रचनाएँ बड़ी ही अनूठी और रोचक हुई हैं। इनमें सुन्दरता कूट-कूट कर भरी हुई है। काव्य की भाषा अलंकृत और सुबोध है। इनकी कविता के कुछ सुन्दर नमूने पढ़िए, कैसा आनन्द आता है। पाठक और श्राताओं का मन कभी नहीं ऊबता, ध्यान पढ़ने में ही लगा रहता है। जैसेः—

दीन दयाल कहाइ कै धाइ कै, दीनन सों क्यों सनेह बढ़ायो ?
त्यौं 'हरिचन्द जू' बेदन में, करुनानिधि नाम कही क्यों गवायो ?
एती रुखाई न चाहिये तापै कृपा करि कै जेहि को अपनायो।
ऐसो ही जो पै सुभाव रह्यौ तौ गरीब नेवाज क्यों नाम धरायो॥

—(प्रेम माधुरी से)

पाद-प्रहार सों जाइ पताल न भूमि सबै तनु बोझ के मारे।
हाथ नचाइबे सो नभ में इनके उत टूटि परे नहिं तारे॥

देखन सों जरि जाहिं न लोक न खोलत नैन कृपा उर धारे।
यों काल के बिनु कष्ट सों नाचत शर्व हरौ दुख सर्व तुम्हारे॥
—(मुद्राराक्षस से)

ऐसे कवि का नाम जब तक संसार स्थिर है बराबर चला जायगा।

अभ्यास

१—इस प्रकार के निबन्धों को व्याख्यात्मक या वर्णनात्मक निबन्ध कह सकते हैं या नहीं? यदि नहीं, तो क्या कहा जाना चाहिए? उत्तर—कारण सहित स्पष्ट समझाओ।

२—नीचे लिखे महानुभावों के जीवन पर ढांचे सहित निबन्ध-रचना करो :—

क—मदनमोहन मालवीय।

ख—रवीन्द्रनाथ टैगोर।

(३) व्याख्यात्मक या विचारात्मक

व्यापार

ढाँचा

१—व्यापार किसे कहते हैं?

२—व्यापार की आवश्यकता।

३—व्यापार से लाभ।

४—व्यापार के साधन।

५—मनुष्य-जाति पर व्यापार का प्रभाव तथा इङ्गलैंड, जर्मन, जापान और अमेरिका देशों का मालामाल होना।

६—व्यापार से राज्य की जड़ जमना तथा भारत का निर्धन होना।

७—व्यापार धन का खज़ाना है।
८—व्यापार की हानि भी प्यारी है और लाभ भी प्यारा है।

व्यापार

१—एक चीज़ को एक स्थान से क्रय करके दूसरे स्थान पर विक्रय करना व्यापार कहलाता है, अथवा एक वस्तु किसी को देकर उससे दूसरी वस्तु लेना व्यापार कहलाता है। जैसे भारतवर्ष से रुई ले जाकर इङ्गलैण्ड और जापान में बेचना और इङ्गलैण्ड और जापान से कपड़ा ला कर भारतवर्ष में बेचना। ईश्वर ने सब वस्तुएँ सब देशों में पैदा नहीं की हैं, इसलिए जो वस्तु एक के खर्च से बचती है, वह दूसरे देश को चली जाती और वहाँ से उसके बदले में दूसरी वस्तु चली आती है। इस भाँति दोनों देश के निवासियों को अपने निर्वाह की वस्तुएँ प्राप्त होती हैं।

२—व्यापार करने की आवश्यकता इसलिए पड़ती है कि प्रत्येक स्थान में सभी वस्तुएँ पैदा नहीं हो सकती हैं। प्रत्येक देश की आब-हवा तथा पैदावार आदि में विभिन्नता होती है। कहीं कोई चीज़ अधिक उत्पन्न होती है और कहीं कोई चीज़ें अधिक पैदा हो सकती हैं। परन्तु सभी देशों के मनुष्यों को इन सब चीज़ों की आवश्यकता पड़ती है। सभी को कपड़े और भोजन की आवश्यकता होती है। अतएव वस्तुओं को उनके पैदावार के स्थानों से ले जा कर दूसरे देशों के बाज़ारों में बेचते हैं।

३—व्यापार कोई नवीन कार्य नहीं है। संसार में मनुष्य अनादि काल से इस काम को करते चले आते हैं। जब संसार में

सभ्यता का फैलाव नहीं हुआ था और मनुष्य पत्थर-काल के औज़ारों से पृथ्वी खोद कर अनाज पैदा करते थे, उस समय भी लेन-देन के रूप में व्यापार होता था। मनुष्य मिट्टी-पत्थर की दूसरी वस्तुओं के बदले अनाज लेते थे। सभ्यता और मनुष्य की वृद्धि के साथ ही-साथ व्यापार की भी उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई। आजकल के वैज्ञानिक युग में अनेक प्रकार की कला का आविष्कार हुआ है, जिनके द्वारा थोड़े समय में बहुत सस्ता और अधिक परिमाण में सामान तैयार होता है। यह सामान जहाज़ और रेल द्वारा विभिन्न देशों में पहुँचा दिया जाता है। आजकल प्रत्येक देश एक दूसरे से निकटतर होते जाते हैं। गमनागमन के साधन सुलभ और सस्ते हो गये हैं। इस कार्य के करने वाले को व्यापारी कहते हैं। व्यापार लाभ के लिए किया जाता है। इससे धन प्राप्त होता है। किसी स्थान से कोई चीज़ लाने के पहले व्यापारी उसकी माँग का पता लगा लेता है और फिर वहाँ से उसी के अनुसार माल की ख़रीद-फ़रोख़्त करता है। माल मँहगे हो जाने के कुछ आकस्मिक कारण पैदा हो जाते हैं; जिससे यदि व्यापारी के पास माल मौजूद है, तो वह दाम बढ़ा देता है और दूने-चौगुने दाम प्राप्त करता है। यदि देखा जाय, तो धनाढ्य लोगों की गिन्ती में व्यापारी ही सब से उत्तम दृष्टिगोचर होंगे। संस्कृत की कहावत है—'व्यापारे वसते लक्ष्मी' अर्थात् व्यापार ही में लक्ष्मी का निवास है। व्यापार से ही जातियों की उन्नति होती है। जो जातियाँ व्यापार में जितनी बढ़ी-चढ़ी हैं, उतनी ही उनकी सम्पत्ति बढ़ी हुई है और बढ़ रही है।

व्यापार करने के लिए पुरुषार्थ, परिश्रम, भौगोलिक ज्ञान और देश-भ्रमण की बड़ी आवश्यकता है। जो ग्रीष्म की गर्मी, वर्षा की असुविधा में और शीत काल की ठंडक से डरेगा, वह व्यापार नहीं कर सकता है। व्यापार के लिए यह आवश्यक है कि हम को किसी वस्तु की उत्पत्ति और खपत का स्थान ज्ञात हो। दिन रात के होने वाले परिवर्तन से हम प्रत्येक पल अवगत रहें। व्यापार में स्वतंत्रता बहुत रहती है और मनुष्य अपनी रुचि के अनुसार काम कर सकता है। उसको किसी के अधीन नहीं रहना पड़ता है। हमारे देश में व्यापार को मध्यम स्थान दिया गया है। कहावत प्रसिद्ध है—

'उत्तम खेती, मध्यम बान।
अधम चाकरी, भीख निदान॥

व्यापार में जो माल कहीं से आता है, उसके साथ ही साथ हमको उससे होने वाले लाभ, उनकी उपयोगिता और उनके बनाने की विधियों का भी ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए। इससे देश वासियों के लिए जीविका के साधन मिल जाते हैं और एक काम के लिए अनेकों स्थानों में नाना प्रकार की चीज़ों को देखने से उन सब के गुण-दोष ज्ञात हो जाते हैं और उनको फिर देश में ही पैदा करने की उत्सुकता होती और अन्त में उनको पैदा करने का प्रयत्न होने लगता है। हमारे देश में भी कपड़ा, लोहा, पेन्सिल, शक्कर, सिगरेट, ग्लास, सेंट, दियासलाई और दवाइयाँ आदि बनने लगी हैं। व्यापार में अनेक देशों का भ्रमण करना पड़ता है। इससे हमें वहाँ के निवासियों

के सम्पर्क में आना होता है। उन लोगों के आचार-विचार और धर्म का परिचय मिलता है। कूप-मंडूकता जाती रहती है। एक दूसरे के प्रति श्रद्धा, सहनशीलता और भ्रातृ-भाव पैदा होता है। सभ्यता के प्रसार में यह बड़ा ही उपयोगी साधन है। विभिन्न देशों की आब-हवा से शरीर स्वस्थ रहता है। स्फूर्ति पैदा होती है। परिश्रम करने की बान पड़ जाती है। इससे शरीर नीरोग और चित्त प्रफुल्ल रहता है। बेकारी और आलस्य पास नहीं रहती। व्यापार से धन तो प्राप्त होती ही है, इसके साथ ही देश का भी परोक्ष रूप से उपकार होता है। अकाल आदि दैवी प्रकोप के समय व्यापारी ही अपनी संचित चीज़ों द्वारा देश की जनता को लाभ पहुँचाते हैं, अन्नादि पहुँचा कर जनता के प्राण बचा लेते हैं और स्वयं पूरा-पूरा लाभ उठा लेते हैं यह सब व्यापार की ही महिमा है।

४—रेल, मोटर, जहाज़ और हवाई जहाज़ आदि व्यापार के सैकड़ों साधन प्रचलित हो गए हैं, जिनसे थोड़े ही समय में चीज़ इधर से उधर भेजी जा सकती है। तार, बेतार आदि भी व्यापार में बहुत सहायता पहुँचाते हैं। व्यापारी ही देश की समृद्धि के वास्तविक कर्त्ता-धर्ता होते हैं। वे यदि खूब धन पैदा करते हैं, तो खूब दान भी करते हैं। फोर्ड, राकफेलर, बिड़ला और ताता आदि व्यवसायियों के कारनामे पढ़ो, तो ज्ञात होगा कि किसी देश के सुधार में व्यापारी का क्या स्थान है? प्रत्येक देश के लिए व्यापार कल्याणकर है। भारत के नवयुवकों को भी इस ओर झुकना चाहिए।

५—व्यापार से मनुष्य जाति पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है। मनुष्य की योग्यता की परीक्षा व्यापार से ही होती है। इँगलैंड, जर्मन, जापान और अमेरिका आदि देशों के निवासी व्यापार के ही कारण इतने वैभवशाली हुए हैं। हमारे यहाँ पर आजकल छोटी से बड़ी सभी चीजें विदेशी ही दृष्टि आती हैं। आज कल उपरोक्त देश व्यापार में बड़ी वृद्धि कर रहे हैं। इसी तरह हमारे देशवासियों को भी करना आवश्यक है।

६—व्यापार के ही कारण अँगरेज़ संसार के पंचमांश पर शासन कर रहे हैं। भारतवर्ष उनके देश से कहीं अधिक बड़ा है, पर व्यापार की अवनति के ही कारण दरिद्र और पराधीन हो रहा है। एक समय था, जब भारतवर्ष भी एक व्यापारी देश था और संसार के अन्य देशों से व्यापार करता था यहाँ ही के बने कपड़े अन्य देश वाले पहना करते थे। इसके उदाहरण हम श्री सत्यनारायण की कथा में आये दिन सुना ही करते हैं। उस समय हमारा देश श्री-सम्पन्न और सभ्यता में सुप्रसिद्ध था, पर व्यापार के नष्ट होते ही सब धन-वैभव चला गया। और आजकल धन हीन देशों में भारत का पहला नम्बर है।

७—व्यापार धन का ख़ज़ाना है—यह बात बिल्कुल ठीक है। इस में तनिक ही देर में हजारों का नफ़ा नुक़सान हो जाता है। इससे व्यापार ही धन का ख़ज़ाना कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी।

८—व्यापार से व्यापारियों को हज़ारों का घाटा भी हो जाता है तो वह यही समझते हैं कि अब इस चीज में अवश्य ही

फ़ायदा होगा। वह इस बात को ध्यान में रखते हुए व्यापार करना बराबर जारी रखते हैं। वह अपने कार्य को बंद नहीं करते। फिर ईश्वर की दया से उन्हें हज़ारों का लाभ हो जाता है तब वह वैभवशाली हो जाते हैं। इसी से सिद्ध होता है कि धन की हानि भी प्यारी है और लाभ भी प्यारा है। अतएव हम अपने देश वासियों से प्रार्थना करते हैं कि वह भी व्यापार करके वैभवशाली बनें। व्यापार ही धन प्राप्त करने का एक सुगम मार्ग है।

अभ्यास

१—अपनी भाषा में देशाटन पर एक निबन्ध लिखो।

२—क्रोध, दया, धैर्य्य और चिन्ता पर ढाँचों सहित निबन्ध लिखो जो ४० पँक्तियों के लगभग हो।

(४) तार्किक-निबन्ध

रामायण

ढाँचा

१—रामायण काल।

२—रामायण का गौरव।

३—रामायण का काम।

४—स्त्रियों का सम्मान।

५—भ्रातृ-प्रेम।

६—मित्रता का आदर्श।

७—समाज का चित्र।

८—उसके चरित्रों से शिक्षा।

९—रामायण से दूसरे देश वालों का प्रेम।

रामायण

१—रामायण काल में, जिसका समय पाश्चात्य विद्वान भी कम से कम ५००० वर्ष पूर्व मानते हैं।

२—हिन्दू-समाज में रामायण का जो स्थान है, जैसी उसकी आराधना है, जैसा उसका मान है, दूसरे किसी ग्रन्थ का नहीं। राजा से लेकर रंक तक, पण्डित से लेकर सामान्य अक्षराभ्यासी तक, सब रामायण को पढ़ कर अपनी रुचि के अनुसार आनन्द प्राप्त करते हैं। हर जगह पण्डितों के द्वारा उसकी कथा कहलाते हैं।

३—महात्मा तुलसीदास के समय में धार्मिक सम्प्रदायों में बहुत मतभेद बढ़ गया था। हर एक सम्प्रदाय, एक दूसरे के मान्य देवों की घोर निंदा करते थे। आन्तरिक कलह हिन्दू-समाज को बहुत ही कमज़ोर बना रहा था। तुलसीदास जी ने जनता के सामने यह आदर्श रक्खा :—

"सिव द्रोही मम दास कहावै, सो नर मोहि सपने हुँ नहिं भावै।"

उन्होंने सामाजिक दशा का भी अच्छा मार्मिक चित्र खींचा है :—

" ढोल गँवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी।"

" कोउ नृप होउ हमें का हानी, चेरी छाँड़ि न होउब रानी।"

आदि वाक्यों से उस समय के हिन्दू-समाज के भीतरी रहस्यों का पता चलता है। भगवान श्री रामचन्द्र जी का चरित्र अक्षरशः अनुकरण करने योग्य है।

४—क्या स्त्रियों का सम्मान रामायण में नहीं किया गया, अवश्य किया गया—दशरथ का राम से प्यारे पुत्र को बन भेजना, कैकयी को प्रसन्न करने के लिए ही था न? फिर यदि सवारी में स्त्रियों को पहले बिठलाना ही सभ्यता का चिह्न हो तो उस समय का वर्णन पढ़िए जब राम, सीता और लक्ष्मण नाव में बैठने जा रहे हैं। पहले किसे बिठाला

जाता है ? सीता को। कौशल्या तथा सुमित्रा के चरित्र इतने उत्कृष्ट कैसे बन गए ? क्या कोई कह सकता है, कि निरादृत स्त्रियाँ भी ऐसा व्यवहार कर सकती हैं ? अपनी सौत का मान रखने के लिए कौशिल्या राम को वन जाने की आज्ञा देती हैं, और कौशिल्या का दुःख कम करने के लिए सुमित्रा अपने प्रिय पुत्र को राम के साथ भेजती हैं। दशरथ भी कैकेई को प्रायः अपने साथ युद्धों में ले जाते थे। रावण राक्षस था, परन्तु मंदोदरी का वह भी अत्यधिक आदर करता था, राज्य कार्य्य में उनसे सलाह लिया करता था। राम का विरोध करने पर मंदोदरी ने रावण को भरी सभा में खरी-खोटी सुनाई, परन्तु रावण ने हँस कर बात टाल दी, क्रोध नहीं किया। राम-रावण युद्ध का कारण भी एक स्त्री ही थी। पातिव्रतधर्म किस कोटि का था, यह सीता के चरित्र से प्रगट है। क्या पाश्चात्य साहित्य में ऐसा एक भी उदाहरण निकल सकता है ? सीता रावण के यहाँ पूरे एक वर्ष रही, परन्तु रावण की ओर उसने आँख उठा कर देखा तक नहीं।

५—रामायण में भ्रातृ-प्रेम के ऐसे दो उदाहरण पाये जाते हैं जो कि संसार के किसी भी साहित्य में ढूँढ़े नहीं मिलते। पहले लक्ष्मण को देखिए—बनवास उन्हें तो नहीं दिया गया था परन्तु वे राम के साथ जाने को हठपूर्वक तैयार हो गये। बात यह थी कि वे भ्रातृ प्रेम के विशेषज्ञ थे। दूसरे तनिक भरत पर भी दृष्टि डालिए—जब भरत जी अपनी ननसाल से अपने भाई शत्रुघ्न के साथ अयोध्यापुरी में आते हैं तब वह चारों ओर उदासी छाई हुई देखते हैं। अन्त में उन्हें पता चल जाता है कि उदासी का कारण

है—"सीता, लक्ष्मण और श्रीरामचन्द्र जी का वन जाना"। फिर वह अपनी माता कैकेई के पास आकर सब समाचार पूछते हैं। समाचारों के मालूम होते ही कैकेई को बहुत बुरा भला कहते हैं। फिर भ्रातृ स्नेह से गद्गद हो कर श्रीरामचन्द्र से वन में भेंट करने जाते हैं और फिर वे श्रीराम को अयोध्या में आने के लिए अनुरोध करते हैं। बहुत कुछ होने पर श्रीरामचन्द्र जी समझा देते हैं तब भरत जी लौट कर अयोध्या में वापस आ जाते हैं। और गद्दी पर श्रीरामचन्द्र जी का खड़ाऊँ रखकर स्वयं सेवक की तरह राजकार्य करने लगते हैं। क्या भरत को राज्य-गद्दी प्रिय न थी? यदि होती तो वह क्या वन में श्री राम से भेंट करने जाते और क्यों उन्हें वापिस अयोध्या लाने का प्रयत्न करते। भरत जी को भ्रातृ-स्नेह ही प्रिय था। जिसके कारण उन्होंने राजश्री को भी कुछ न समझा। भ्रातृ-स्नेह के पवित्र उदाहरण रामायण में ही देखने को मिलते हैं।

६—रामायण से ही हनुमान, अंगद, सुग्रीव और विभीषण से श्रीरामचन्द्र जी की मित्रता होने के अद्भुत उदाहरण मिलते हैं। हनुमान, अंगद, और सुग्रीव आदि वानरों की मित्रता से लंका पर चढ़ाई करके श्रीरामचन्द्र जी सीता जी को रावण का नाश करके लाये थे। फिर विभीषण से मित्रता करने पर लंका का भेद मिला और विभीषण मित्रता से ही लंका का राजा हो गया। यदि इन सब में परस्पर मित्रता न होती तो प्रत्येक के कार्य बनने में निराशा ही थी। यह सब सच्ची मित्रता के आदर्शनीय उदाहरण हैं।

७—रामायण में तुलसीदास जी ने समाज के सामने उस समय

को समाज का चित्र बड़ा ही मनोहर खींचा है, जैसेः—
भाई भरत और लक्ष्मण से स्वार्थ त्यागी होने चाहिए।
राजा दशरथ के समान प्राण और पुत्रों को देकर भी अपने
वचनों का पालन करना चाहिए। कुबरी जैसी दुष्टा स्त्री,
किस भाँति घर में फूट डलवा कर नाश करवा देती है।
दुष्टों और धूर्तों की बातों में आकर कैकई जैसी बुद्धिमान्
स्त्री भी बहक जाती है। सती सीता का कैसा पवित्र
चरित्र है श्रीराम का विभीषण और सुग्रीव के साथ
मित्रता करना राज-नीति का अच्छा उदाहरण है।

८—कुमार्ग में चलने वालों तथा अपने भाइयों को सताने वालों
को बालि और रावण के चरित्र से पाठ लेना चाहिए।
भगवान् रामचन्द्र का भीलनी के हाथ से बेर खाना, भील
के साथ घनिष्ठ मित्रता करना रात दिन नीच-ऊँच की
चिन्ता में रहने वालों को अच्छी शिक्षा देता है इसके
अतिरिक्त "ईश्वर अंशजीव अविनाशी" आदि वाक्यों
का अभिप्राय है कि किसी जीव के साथ में अत्याचार
नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह ईश्वर के ही अंश हैं।
यदि मनुष्य माया (अज्ञानता) के पर्दे को हटा दे तो वह
ब्रह्म ही (समीपस्थ) हो सकता है। कहाँ तक गिनायें—
वेदान्त, भक्ति, ज्ञान, धर्म, नीति, आचार, व्यवहार आदि
सिखाने को एक रामायण ही पर्याप्त है। जहाँ पर धर्म
शिक्षा देने का विधान हो एक रामायण ही से उसका
बहुत कुछ काम निकल सकता है। इस लिए रामायण का
पढ़ना प्रत्येक हिन्दू धर्मी के लिए परमावश्यक है।

९—रामायण से पाश्चात्य देश वासियों को बहुत स्नेह है।
इसके कई अँगरेज़ी अनुवाद हो चुके हैं। जो दूसरे देशों में

बड़ी भक्ति के साथ पढ़े जाते और इसकी शिक्षाओं पर वहाँ के निवासी चलते हैं। यह बड़ा धार्मिक ग्रन्थ है। इसको पढ़ना मनुष्य-मात्र का मुख्य ध्येय है। अतएव हम छात्रों से प्रार्थना करते हैं कि रामायण का अवश्य ही अवलोकन करके शिक्षा ग्रहण करें।

अभ्यास

१—रामायण से क्या क्या शिक्षाएँ मिलती हैं, इस पर एक निबन्ध लिखो।

२—सीता, कौशिल्या, सुमित्रा, भरत, लक्ष्मण और हनुमान पर अलग-अलग निबन्ध लिखो।

कुछ निबन्धों के ढाँचे

१—किसी देश के निवासियों पर

(१) नस्ल। (२) आकार और गठन। (३) भोजन। (४) रीति-रिवाज़ और धर्म। (५) सामाजिक-स्थिति और शिक्षा। (६) जीवन निर्वाह का ढंग। (७) उनकी सभ्यता पर विदेशी सभ्यता का प्रभाव। (८) विशेष विवरण।

२—पक्षी विशेष के लिए

(१) नस्ल। (२) कहाँ पाया जाता है? (३) रंग। (४) स्वभाव। (५) आहार। (६) आयु। (७) लाभ। (८) विशेष विवरण।

३—हाकी का खेल

(१) स्थान—खुला समतल मैदान। (२) सामान-स्टिक, चमड़े की गेंद, बाँस के पोल, जाल। (३) खेलने वाले। (४) पंच का कार्य। (५) खेल से लाभ।

४—युक्त प्रान्त में बाढ़

(१) भूमिका (२) कारण । (३) वर्णन । (४) जीवन रक्षा । (५) सहायता का काम । (६) परिणाम । (७) उपसंहार ।

५—दिवाली का त्यौहार

(१) परिचय—हिन्दुओं का त्यौहार (वैश्यों का विशेष) कार्तिक अमावस्या को । (२) तैयारी—घर की मरम्मत, सफ़ाई, सजावट, मिठाइयाँ, जुए का प्रचार । (३) लक्ष्मी-पूजा—दीपक जलाना, कीर्तन, शोभा, मिठाई खिलवाना । (४) दोष—जुआ, दुर्गति, मिट्टी का तेल । (५) लाभ—संक्रामक रोगों का नाश, वायु की शुद्धता, मच्छरों का अंत ।

६—रामलीला

(१) रामलीला क्या है ? (२) उसका खेला जाना क्यों आवश्यक है ? (३) राम-रावण के युद्ध की कथा । (४) मेले का प्रबन्ध और जनता का उत्साह । (५) दाह संस्कार तथा आतिशबाज़ी । (६) रामलीला द्वारा आर्य सभ्यता परिचय ।

७—वर्षा ऋतु

(१) वर्षा की आवश्यकता । (२) वर्षा किस प्रकार होती है । (३) वर्षा होने के पूर्व लक्षण । (४) वर्षा होने से लाभ और न होने से हानि (५) प्रकृति का सौन्दर्य्य । (६) वर्षा पर सम्पूर्ण जीवधारी निर्भर हैं ।

८—भ्रमण

(१) भ्रमण की आवश्यकता । (२) लाभ । (३) लाभदायक

कैसे हो सकता है। (४) आधुनिक काल में भ्रमण की सुविधाएँ। (५) कुछ भ्रमण करने वालों के उदाहरण।

९—दया

(१) परिभाषा—मनुष्य और पशु का भेद।

(२) आवश्यकता—सब में हमारी भाँति प्राण हैं, इसका फल दोनों को मिलता है।

(३) कुछ कथाएँ--साधु और बिच्छू, सज्जन सिपाही की दया।

(४) निर्दयता और उसका प्रभाव—इक्के वाले, गाड़ीवान, मांसभक्षी।

(५) उपसंहार—दया से संसार का कल्याण 'अहिंसा परमोधर्मः' ऋषियों के उपदेश।

१०—समाचार पत्र

(१) परिभाषा।

(२) भेद—दैनिक, साप्ताहिक, मासिक, तिमाही आदि।

(३) लेखक—अनेक स्थानों के सम्वाददाता, सम्पादक।

(४) प्राचीन कालिक दशा—दूत द्वारा समाचार, प्रजा अभिज्ञ रहती है।

(५) उपयोगिता—जातीय सभा का निर्णय, देश-विदेश का समाचार, कथाएं, विज्ञापन, व्यापार।

(६) अच्छे समाचार—पत्र के गुण—सत्यता, स्पष्टवादिता, निष्पक्षता।

११—रवीन्द्र नाथ टैगोर

(१) प्रस्तावना—संसार में टैगोर का स्थान, वंश-परिचय, वंश की विद्या-सम्बन्धी विशेषता।

(२) शिक्षा-दीक्षा—अपूर्ण शिक्षा, बालकपन से काव्य स्नेह, विलायत यात्रा ।

(३) रचे हुए ग्रन्थ—गीताञ्जलि का विशेष स्थान, नोबिल पुरस्कार, उसका गौरव और उसका प्रभाव ।

(४) अर्द्धांगिनी का स्वर्गवास—उसका कविता पर प्रभाव, विश्व-प्रेम विश्व-भारती ।

(५) समाप्ति—'टैगोर' की वर्तमान अवस्था, उनकी कृतियों का गौरव, 'सर' की पदवी, वायुयान यात्रा; प्रकृति की विशेषता ।

१२—बिहार का भूचाल

(१) बिहार प्रान्त में किस स्थान पर आया ?

(२) देश की पूर्व अवस्था ।

(३) धक्का ।

(४) दुर्दशा और हानि ।

(५) देशवासियों का कर्त्तव्य ।

(६) सरकारी सहायता ।

(७) बिहार प्रान्त पर भूचाल का प्रभाव ।

१३—छुट्टियों के दिन कैसे बिताने चाहिए

(१) प्रस्तावना—प्रत्येक स्कूल में वार्षिक गर्मी की छुट्टी १ मास से तीन मास तक होती है ।

(२) प्रायः कैसे बिताई जाती है—पुस्तकों को बाँध कर रख देने से और समय का व्यर्थ नष्ट करने से ।

(३) छुट्टी का तात्पर्य—शारीरिक व मानसिक थकावट का मिटाना और आगामी साल के लिए काम के योग्य

बनाना, इसके लिए हितकारी बातें, सबेरे का घूमना, खुली हवा में व्यायाम करना, खेलना आदि।

(४) पढ़ना—यदि गत वर्ष में परिश्रम नहीं किया और पढ़ाई में कमी रही है वह छुट्टी में पूरी हो जाना और स्वास्थ्य का भी ध्यान रखना आदि।

(५) बाहिरी विद्या—कोर्स से बाहरी पढ़ाई की पुस्तकें पढ़ना तथा कृषि का कुछ काम सीखना।

(६) दूसरे स्थान—आब-हवा बदलने के लिए दूसरी जगह जाकर वहाँ की वस्तुओं को देखना।

(७) समय—समय का नियम रखना, अधिकांश छुट्टियों में व्यर्थ समय का नष्ट होना।

(८) फल—विद्या में अभ्यास, शरीर स्वस्थ रहना आदि।

रोचक-निबन्धावली

१—मधु

(संक्षिप्त निबन्ध)

निबन्ध की सूची :—

(१) मधु क्या है ?

(२) मधु किस प्रकार एकत्रित होता है ?

(३) मधु कहाँ पाया जाता है ?

(४) मधु का स्वाद, रंग कैसा होता है ?

(५) मधु का गुण और उपयोग।

मधु

१—पुष्पों का रस जिसे मधु-मक्खी एकत्रित करती हैं 'मधु' कहलाता है। इसी को शहद भी कहते हैं।

२—मक्खियाँ पुष्पों पर बैठ कर रस को चूस लेती हैं; फिर अपने छत्तों में इकट्ठा करती हैं। जब बहुत सा मधु-एकत्रित हो जाता है, तो बहेलिया अथवा अन्य कोई मनुष्य छत्ते को तोड़ कर उसमें से मधु निचोड़ लेता है।

३—मधु-मक्खी झाड़ो, वृक्ष की खोंतर, डाली तथा घरों में कहीं भी जहाँ वह चाहती हैं अपना छत्ता रख लेती हैं।

४—मधु का स्वाद मीठा होता है। यह लाल रंग का द्रवित लसदार पदार्थ है। सर्दी से जम जाता है।

५—मनुष्य दूध या पानी में डाल कर पीते हैं, दवाई के साथ खाया जाता है।

अभ्यास

१—उपर्युक्त संक्षिप्त निबन्ध का विस्तार कर पूरा निबन्ध लिखो यह निबन्ध किस प्रकार का निबन्ध होगा ?

२—आगरा

प्रबन्ध की सूची :—

(१) ऐतिहासिक वर्णन।

(२) जलवायु और उपज, प्राकृतिक वर्णन।

(३) प्रबन्ध।

(४) दर्शनीय वस्तुएँ तथा इमारतें।

(५) कारीगरी तथा प्रसिद्ध वस्तुएँ।

आगरा

१—यह नगर संयुक्त प्रदेश में यमुना नदी के तट पर स्थित है। इसका प्राचीन नाम अकबराबाद—अकबर बादशाह का बसाया हुआ—है। यमुना जी के तट पर सुदृढ़ लाल पत्थर

का क़िला बना हुआ है। यह मुसलमान बादशाहों की राजधानी रहा। मुग़लों की यह मुख्य राजधानी था। धीरे-धीरे इसका नाम आगरा हो गया। मुग़ल बादशाह शाहजहाँ ने शहर से २ मील के फ़ासले पर ताजमहल बनवाया जो बहुत सुन्दर इमारत है।

२—यहाँ का जलवायु गर्मी में अधिक गर्म, सर्दी में अधिक सर्द है। यहाँ वर्षा भी काफ़ी होती है। इसलिए यहाँ का जलवायु मातदिल है। यहाँ पर सब प्रकार के अनाज तथा साग-तरकारियाँ पैदा होती हैं और रेती में गन्ने बहुत पैदा होते हैं।

३—नगर का प्रबन्ध म्युनिस्पिल बोर्ड करती है, यही शहर में सफ़ाई, रोशनी, पानी तथा शिक्षा का प्रबन्ध करती है। यहाँ पर कितने ही लड़कों तथा लड़कियों के स्कूल हैं, सड़कों तथा गलियों में लालटेनें लगी हैं। कई अस्पताल भी खुले हैं जिनमें इलाज किया जाता है।

४—यहाँ पर बादशाही इमारतें जैसे :—ताजमहल, मोती मसज़िद, जुम्मा मसज़िद, क़िला, रामबाग़ और एतमाद-दौला देखने योग्य हैं और राधा-स्वामियों का दयाल बाग़ भी बहुत अच्छी दर्शनीय जगह है।

५—यहाँ पर पत्थर तथा संगमरमर का काम अच्छा होता है और दरी, नैंचे, दालमोंठ और पेठा बहुत ही प्रसिद्ध हैं। यहाँ के जूते भी अच्छे बनते हैं जो दूसरी जगहों को भेजे जाते हैं।

अभ्यास

१—ऊपर दिये हुए संक्षिप्त निबन्ध का विस्तार करके पूरा निबन्ध लिखो।

२—इसी प्रकार 'इलाहाबाद' पर निबन्ध लिखो।

३—सम्राट् अशोक

निबन्ध की सूची :—

(१) वंश परिचय। (२) बाल्यकाल। (३) युवावस्था (४) विजय। (५) आकस्मिक परिवर्तन। (६) जीवन के महान् कार्य।

सम्राट् अशोक

१—वंश परिचय

भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास देखने से पता चलता है, कि सर्व प्रथम जिस शक्तिशाली वंश ने सफलता पूर्वक एक महान् साम्राज्य स्थापित किया था, वह मौर्य वंश था। इस वंश की नीव चन्द्रगुप्त ने डाली थी। ऐसा कहा जाता है कि चन्द्रगुप्त मुरा नामक एक शूद्र कन्या से उत्पन्न हुआ था, इसी कारण इस वंश का नाम "मौर्य वंश पड़ा। इसी वंश में अशोक जैसे महाप्रतापी सम्राट् ने जन्म लिया जिसने महान् कीर्ति को प्राप्त किया और अपने नाम को चिरकाल के लिए अमर बना दिया।

२—बाल्यकाल

बाल्यकाल में अशोक को वही शिक्षा मिली, जो परम्परा से क्षत्रिय-राजकुमारों को मिला करती थी। धनुष बाण चलाने और आखेट तथा शत्रुओं का वीरता पूर्वक सामना करने में वह दक्ष था। साहित्यिक शिक्षा के सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है, कि संस्कृत की शिक्षा उसे दी गई थी, परन्तु इसका उस समय अधिक प्रचार न होने के कारण पाली को—जो उस समय की

प्रचलित भाषा थी—उसने अपनाया। राजकुमार की अवस्था बढ़ने पर उनके पिता ने, जो उस समय भारत के, सम्राट् थे, यह इच्छा प्रकट की कि कुमार को भी राज-काज में भाग लेना चाहिये। कुमार भी पूर्णतया सहमत हुए। राजकुमार के प्रयत्न से वे अनेकों देश, जो मगध साम्राज्य के बाहर थे, इस बात पर विवश किये गए कि वे साम्राज्य का अधिपत्य स्वीकार करें।

३—युवावस्था

युवावस्था में सम्राट् कुमार से बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे तक्षशिला का सूबेदार नियुक्त किया। इसके बाद यह मालवा तथा उज्जैन का भी सूबेदार बनाया गया। इन स्थानों पर कुमार ने अपनी प्रतिभा, शक्ति और राज-कार्य करने की योग्यता का पूर्ण परिचय दिया। सम्राट् के देहान्त के बाद अशोक ही भारत का महाराजाधिराज हुआ और उसने मगध के सिंहासन को सुशोभित किया। इस समय तक ऐसा प्रतिभाशाली तथा महात्मा राजा मगध के सिंहासन पर आरूढ़ नहीं हुआ था।

४—विजय

अपनी शिक्षा का प्रभाव प्रत्येक मनुष्य पर पूर्णरूप से होना प्रायः स्वाभाविक ही कहा जा सकता है' परन्तु साथ ही साथ यह भी है, कि कभी-कभी ऐसी घटना भी उपस्थित हो जाती है, जो जीवन मार्ग बदल देती है। ऐसा ही आकस्मिक परिवर्तन हमें गोस्वामी तुलसीदास के जीवन में भी मिलता है। अशोक गद्दी पर बैठने के समय अपनी शिक्षा के अनुसार महाक्रूर तथा उद्दंड था। दया के भावों का तो उसके हृदय में अभाव ही था। सिंहासनारूढ़ होने के कुछ ही समय बाद उसने कलिंग पर आक्रमण करने का विचार किया और हाथी

घोड़े, रथ तथा असंख्य पैदल सेना साथ लेकर वह उस पर टूट पड़ा। कलिंग इस असंख्य सेना के बीच क्षणभर में उसी प्रकार नष्ट हो गया, जिस प्रकार कि भयंकर अग्नि में एक पतंग जल जाता है। रण-भूमि में लाशों के ढेर लगे थे, रक्त की नदियां बह रही थीं और आहतों की कराह से भूमण्डल गूँज रहा था।

५—आकस्मिक परिवर्तन

ऐसे हृदय-विदारक दृश्य का अवलोकन करते ही अशोक का हृदय पसीज उठा और उसके मन में अनेकों विचारों का आविर्भाव-तिरोभाव होने लगा। उन्होंने सोचा कि मनुष्य महत्व की आकांक्षा क्यों करता है? अपने को उच्च पद देने के लिए वह दूसरों के खाने के लिये क्यों दौड़ता है? जब कि वह जानता है, कि उसका जीवन क्षणभंगुर है और संसार में उसका कोई अस्तित्व नहीं है, तब भी वह अपने को ऊँचा बनाने के लिये क्यों फटफटाया करता है? इसी प्रकार के अनेकों विचारों ने उसके हृदय में एक घोर आन्दोलन मचा दिया। अशोक ने यकायक युद्ध रोकने की आज्ञा दी और उसी समय से यह प्रतिज्ञा की, कि आज से कभी युद्ध करके किसी प्राणी को दुःख न दूँगा, बल्कि अब धर्म विजय करूँगा। ऐसा सोच कर वे शीघ्र ही मगध वापस आए; और उन दुःखियों और घायलों को पूर्ण सहायता पहुँचाई, जो कि युद्ध में घायल हुए थे।

६—जीवन के महान कार्य

इस युद्ध के पहले महाराज को आखेट से अत्यन्त प्रेम था। उनके दरबार में मांस आदि का पूर्ण रूप से प्रचार था, और सुख की अनेकों सामग्रियाँ आठों याम उपस्थित रहा करती थीं। मधुर से मधुर गाने वाली सुन्दर से सुन्दर नर्तकियाँ वहाँ

पर उपस्थित रहा करती थीं। सम्राट् स्वयं बड़ी सजधज तथा ठाट बाट से रहा करते थे, और स्त्रियाँ ही उनकी रक्षक बनी चौबीसों घण्टे उनको चारों ओर से घेरे रहती थीं। परन्तु कलिंग के युद्ध का सम्राट् के हृदय पर ऐसा गम्भीर प्रभाव पड़ा, कि बात की बात में उन्होंने इन सब बातों को त्याग दिया और "अहिंसा परमोधर्मः" को अपना मूल मंत्र बना लिया।

उस दिन से सम्राट् ने प्रजा के साथ अत्यन्त सराहनीय बर्ताव किया, और उसके सुख तथा ऐश्वर्य के लिये जीवन भर लगे रहे। समस्त भारत में उनका राज्य था। उन्होंने बड़ी-बड़ी सड़कें बनवाईं, उनके किनारे हरे वृक्ष लगवाये, कुएँ खुदवाए तथा सराएँ बनवाईं, जिससे कि यात्रियों को किसी प्रकार का कष्ट न हो। उन्होंने बड़े-बड़े कर्मचारी नियुक्त किए, जो कि धर्म महामात्र कहलाते थे, और जिनका काम धर्म के नियमों का पालन कराना था। यदि कोई कर्मचारी प्रजा पर अत्याचार करता था, तो उसे कठिन दंड दिया जाता था। साम्राज्य में अनेकों अस्पताल खुले हुए थे, जिनमें मनुष्यों तथा पशुओं की चिकित्सा होती थी। बौद्ध धर्म की उन्नति के लिए अशोक ने सराहनीय प्रयत्न किया, और यह उन्हीं के प्रयत्न का फल है कि भारतवर्ष के बाहर आज भी यह धर्म विराजमान है। परन्तु भारतवर्ष में अशोक की मृत्यु के बाद उनका साम्राज्य तथा बौद्ध धर्म दोनों ही छिन्न-भिन्न हो गए।

अभ्यास

१—सम्राट् अशोक के चरित्र पर एक स्वतंत्र निबन्ध लिखो।

२—ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, राजा राममोहन राय पर एक-एक निबन्ध लिखो।

सूची-रहित निबन्ध

गुरु-भक्ति

एक मनुष्य के हृदय की वह पवित्र भावना जिसके कारण वह कोई बात अपने गुरु के हित के लिए करना चाहता है, गुरु-भक्ति है। इसका साधारण अर्थ तो गुरु की भक्ति है परन्तु गुरु-भक्ति वही सराहनीय है जो सच्चे हृदय से की जाती है। गुरु-भक्ति बहुत उत्कृष्ट भाव है। भक्त होना कोई साधारण बात नहीं है। माता-पिता के भक्त से गुरु-भक्त होना कठिन है। गुरु-भक्ति का स्थान सम्पूर्ण और भक्तियों से उत्कृष्ट है। जो अपने गुरु का भक्त नहीं वह माता-पिता तथा भगवान् का भी भक्त नहीं हो सकता। हिन्दू धर्म यह बताता है कि गुरु का पद माता-पिता के पद से ऊँचा है इसी बात की पुष्टि में एक शायर कहता है :—

"है माँ-बाप का रुतबा बड़ा,
सब से बड़ा रुतबा है उस्ताद का।
जो उस्ताद की खिदमत बजा लाओगे,
तो ख़ादिम से मख़दूम बन जाओगे"॥

गुरु अपने शिष्यों से कुछ कपट नहीं रखता। वह अपने शिष्यों को निष्कपट होकर सब बातें बतला कर उन्हें योग्य बना देता है। परन्तु आजकल शिष्य ऐसे बहुत कम देखने में आते हैं जो कि सच्चे मन से अपने गुरु की भक्ति करते हों। यहाँ तक कि किसी-किसी बात में तो वह अपने गुरु जी को ही कपट-रूप बातें बना कर अपना स्वार्थ कर लेते हैं। ऐसे शिष्यों की संसार में कोई गणना नहीं। वह तो बड़े नीच नर्कगामी होते हैं। इसके लिए कहावत भी है।

"गुरु सों कपट मित्र सों चोरी,
कै होय निर्धन कै होय कोढ़ी"।

परशुराम ने अपनी गुरु-भक्ति के ही कारण श्रीरामचन्द्र जी के धनुष तोड़ने पर शेषावतार लक्ष्मण से कठोर वचनों का प्रयोग किया था। गुरु-भक्त एकलव्य का हाल तो सबको विदित है जिसने कि मिट्टी का ही गुरु बना कर सच्चे हृदय से शस्त्र-विद्या अध्ययन की थी। उस गुरु-भक्ति के ही कारण वह ऐसा प्रवीण तथा योद्धा हो गया कि अच्छे-अच्छे शस्त्रविद्या-विशारद भी उसको देख कर बग़लें झाँकने लगे। यह सब गुरु-भक्ति का ही प्रभाव है। महात्मा कबीरदास भी अपने गुरु रामानन्द से ही भक्ति करने पर इतने प्रसिद्ध कवि हो गए, जिनका नाम साहित्य-संसार में सदा अमर रहेगा। भारतवर्ष का इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा है जो मनुष्य संसार में उत्पन्न होकर गुरु-भक्ति नहीं करता। वह मनुष्य, मनुष्य ही नहीं वरन् पशु है। क्योंकि गुरु ही सब कुछ है। गुरु से बड़ा संसार में कोई नहीं है। इसके लिए एक संस्कृत कवि ने कहा है :—

"गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु गुरु देवा महेश्वर।
गुरु साक्षात् परम ब्रह्म तस्मै श्री गुरुवेनमः॥"

सब बातों का सारांश यह है कि गुरु-भक्त का गुरु की भलाई का प्रत्येक क्षण ध्यान रखना चाहिए। अपने प्रत्येक काम में यह स्मरण रखना चाहिए कि उसके किसी काम से गुरु की कोई हानि न हो। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह छोटा हो या बड़ा, बूढ़ा हो या बालक, धनी हो या निर्धन, गुरु-भक्त बन सकता है। गुरु-भक्ति मनुष्यता के साथ है। संसार में गुरु-भक्ति ही मनुष्य जीवन का साफल्य उदाहरण है।

परोपकार

संसार में अपना पेट तो पशु पक्षी तक भर लेते हैं, पर चार आदमियों को खिलाकर स्वयं खाना, दूसरे के दुःख में सहायता

करना, और वह भी इस आशा से नहीं, कि उसका प्रतिफल मिले—किसी बिरले पुरुष ही का काम है। अपने हानि लाभ की तो सभी सोचा करते हैं—अपनी तथा अपने नाती-पोतों, सगे-सम्बन्धियों की उन्नति की चेष्टा सभी करते हैं, और उनके हित के लिए अपने सुखों को लात मार देते हैं—पर ऐसे कितने हैं, जो एक अनजान व्यक्ति को सुख पहुँचाने के लिए, उसका हित करने के लिए स्वयं कष्ट सहना स्वीकार करेंगे? परोपकार के नाम पर आजकल जितना अँधेर हो रहा है वह कहा नहीं जा सकता। आजकल तो प्रायः लोग अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए ही परोपकार करते हैं। यह उनका परोपकार नहीं है। यह तो केवल परोपकार का ढोंग है। परोपकार का तो यही अर्थ है कि जिसमें निःस्वार्थ होकर दूसरों की भलाई की जावे। स्वार्थ-वश दूसरे की भलाई करना परोपकार में स्थान नहीं रखता। यह तो दिखलाने का आडम्बर है।

परोपकार हमारी सभ्यता का मुख्य अँग था। इसी परोपकार की प्रवृत्ति से प्रेरित होकर ऋषि दधीचि ने अपनी हड्डियाँ वज्र बनाने के लिए दे दी थीं, जिससे वृत्रासुर मारा गया और देवताओं के दुःख दूर किये गये। राजा शिवि ने एक कपोत की रक्षा के लिए अपने शरीर का मांस दे दिया था। जटायु ने सीता की रक्षा में निःसंकोच अपने प्राण दे दिए थे। राजवीर विक्रमादित्य ने आजन्म परोपकार ही में कष्ट उठाये। यहाँ तक कि दानवीर राजा भोज के लिए स्वयं तेल की कढ़ाई में जल भुन कर भस्म हो गया था। ऐसा कौन कर सकता है? यह तो परोपकारी ही कर सकता है। ऐसे-ऐसे उदाहरण प्राचीन इतिहास में न जाने कितने मिल सकते हैं। ऋषिमुनि जो वनों में आजन्म कंदमूल फल खाकर रहते थे, शरीर पर शीत-घाम सहते

थे, क्या अपने लाभ के लिए ? संसार में शान्ति स्थापित करने के जो उपाय वे सोचा करते थे—धर्मनीति आदि विषयों के ग्रन्थों का जो निर्माण किया करते थे, सो क्या स्वार्थ के लिए ? क्या मानव जाति के कल्याण की कामना करने में उनका निजी लाभ था ? कदापि नहीं। उस समय तो सामर्थ्यवानों के लिए परोपकार ही मूलमन्त्र था। यही उनका धर्म था—यही उनकी सभ्यता थी, और इसी के बल पर हिन्दू-जाति आज तक टिकी हुई है। राजा भर्तृहरि ने भी कहा है कि—

'परोपकारार्थं फलन्ति वृक्षाः, परोकारार्थं वहन्ति नद्यः।
परोपकारार्थं दुहन्ति गावा, परोपकारार्थं सतां विभूतयः॥'

यह उक्ति काव्य की दृष्टि से भले ही ठीक हो—पर वास्तव में नहीं। वृक्षों, नदियों, गायों को क्या यह समझ हो सकती है, कि हम परोपकार कर रहे हैं ? परन्तु तर्क के लिए ऐसे ही कहा जाता है। चाणक्य क्या जानता था, कि मेरे मस्तिष्क से निकली हुई राज्यव्यवस्था—सहस्रों वर्षों के बाद भी राजनीतिज्ञों का मुख्य आधार होगी ? प्रायः बहुतों का भला इसी प्रकार हो जाता है। कोई बाग़ लगवाता है अपनी संतति के लिए, और उसके फल खाते हैं मुहल्ले वाले। तो क्या यह वास्तव में परोपकार है ? नहीं, क्योंकि इसमें उद्देश्य दूसरा था। आप अनजान में किसी को सुख पहुँचा दें, बात दूसरी है—पर परोपकारी आप तभी कहलायेंगे जब जानबूझ कर उसे सुख पहुँचाओ और किसी प्रकार के प्रतिफल की आशा न रक्खो।

परोपकार करना मनुष्य का मुख्य धर्म है, उसी का संसार में जन्म सफल है। मनुष्य की तो गणना ही क्या—स्वयं ईश्वर ने भी परोपकार-वश ही कई बार अवतार धारण किए और राक्षसों को मार कर पृथ्वी देवी को हलका बनाया। परोपकार

ही संसार में मनुष्य को प्रतिष्ठा दिलवाता है और उसका नाम अमर बनाता है। इसलिए परोपकार सब को करना चाहिए यही मनुष्य जीवन का मुख्य ध्येय है।

प्राकृतिक दृश्य

फाल्गुन का महीना था और प्रभात का समय ऋतुराज के आगमन के आनन्द में ऊषा ने प्राची के क्षितिज को कुंकुम से लाल कर रक्खा था। कुसुम-कुंज और लता-द्रुमों को सुसज्जित करने के लिए प्रकृति सुन्दरी ने अपने अलंकार मंजूषा को मुक्त-हस्त हो रिक्त कर डाला था। बसन्ती वायु मन्द मन्द गति से सुगन्ध वितरण कर रही थी।

ऐसे शुभ अवसर पर मैं अनेकों विचारों में मस्त था। दरवाजा खटका। नौकर, दलीप आया है बाबू जी। अनेकों विचारों से ग्रस्त होने के कारण मैंने जल्दी से पूछा कौन दलीप ? बाबूजी वही आपका पुराना मित्र ! हाँ, ध्यान आया। उसको बुलाओ। दलीप ने अन्दर प्रवेश किया। दलीप को देखते ही मैं उठ पड़ा और उसे आदर सत्कार से बैठाया। दलीप :—मित्र मोहन ! आज से स्कूलों की छुट्टियाँ हो गई हैं। कहो कहीं सैर करने का विचार किया है क्या ? अच्छा अवसर है' चलो कहीं पर घूमने चलें। मोहन बोला—मित्र मैं अभी इसी विषय पर विचार कर रहा था कि यकायक प्राकृतिक दृश्य देखने की उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हुई। इतने ही में चार पाँच मित्र और आ गए। सबने मिल कर हरिद्वार चलने के लिए परामर्श किया। कल हम लोग हरिद्वार को प्रस्थान करेंगे इससे बड़ा प्रसन्न था और "कल" की प्रतीक्षा इतना विकल कर रही थी कि एक एक मिनट घंटों सा प्रतीत होता था। दिन किसी प्रकार काट दिया। रात्रि भी एक एक तारे गिन कर काट दी।

फिर क्या था प्रातः ही रेल में बैठकर देहली की ओर चल पड़े। राह के प्राकृतिक दृश्य सब सामने आते गए। हृदय प्रसन्न होने लगा। ठंडी ठंडी वायु हृदय को विदीर्ण करने लगी। हृदय चंचल हो पड़ा। थोड़े समय बाद गाड़ी ठहरी और हम लोग उतर पड़े। दो तीन दिन विश्राम किया फिर वहाँ से प्राकृतिक दृश्यों का आनन्द लूटने के लिए पैदल ही चलना अच्छा समझा। प्रातःकाल होते ही हरिद्वार की ओर चल पड़े। राह के प्राकृतिक दृश्यों को देखकर मन कितना प्रसन्न होता था यह वर्णन करना कठिन ही है। ऐसा प्रतीत होता था कि ईश्वर ने सृष्टि के रचने में अपनी सारी मस्तिष्क शक्ति लगा दी होगी। और इन्हीं वस्तुओं को देख कर ईश्वर की महिमा प्रकट होती थी।

कहीं सरिता, तड़ाग, पोखर हैं तो कहीं बाग़ बगीचे तो कहीं वाटिकायें है। कहीं पक्षी बोल रहे हैं तो कहीं कोयल का मधुर और हृदय को लुभाने वाला कूक भी सुनाई दे जाता था। रंग-बिरंगे फूल कैसे भले मालूम होते थे। इस प्रकार छः सात दिन बाद हम सब लोग अपने निश्चित स्थान पर पहुँच गए। संध्या हो गई थी। सूर्य्य भगवान अस्ताचल को प्रस्थान कर चुके थे। मन्द मन्द वायु बह रही थी। चन्द्र भगवान निकलने वाले ही थे। रात्रि होने वाली थी। इसलिए एक सराय में ठहर गए। प्रातः-काल होते ही गङ्गा स्नान को चल दिये। गङ्गा के दोनों ओर पहाड़ों की ऊंची ऊँची श्रेणियाँ अपनी अनूठी छटा दिखा रही थीं और अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होती थीं। जलप्रपात क्या ही हृदय को मुग्ध कर रहे थे। बात की बात में दो तीन घंटे का समय मिनटों की भाँति कट गया।

दूसरे दिन प्रातः होते ही हम लोगों ने आगे की ओर प्रस्थान किया। रास्ता बात की बात में कट जाता था। चारों ओर

घूम घूम कर प्राकृतिक दृश्यें का निरीक्षण करने लगे। गङ्गा जी तथा जल-प्रपातों का कलकल शब्द संगीत से भी भला मालूम होता था। पहाड़ों के ऊपर पड़ी बर्फ हंसें की पंक्तियें को भी लज्जित कर रही थी। तोतों के झुंड के झुंड मंडराये हुए फिर रहे थे। कहीं कहीं चट्टानें पर पड़ी ओस की बूँदें मोतियें जैसी प्रतीत होती थीं। स्थान की शोभा मनमोहक तथा हृदय को प्रसन्न करने वाली थी। हम लोगें को यह स्थान स्वर्ग से भी बढ़ कर प्रतीत होने लगा चारों ओर रंग बिरंगे फूल खिल रहे थे। मैना का मधुर शब्द अनोखी स्मृति पैदा करता था। जलाशयें का ऊँचे शिखर से गिरना ऐसा मालूम होता था कि मानें चाँदी की बड़ी बड़ी शिलाएँ चट्टानें से खिसक रही हों। इन दृश्यों को देख कर सहसा यह पता लग जाता था कि ईश्वर की सत्ता किसे कहते हैं और वह कैसा प्रतापी है। इस प्रकार हमने अनेकें प्राकृतिक दृश्य देखे। पन्द्रह दिन सहसा ही कट गए। हृदय तो लौटने के लिए नहीं करता था, परन्तु छुट्टियाँ समाप्त हो चुकी थीं इसलिए लौटना ही पड़ा।

सब लोगें ने प्रातः ही दिल्ली की ओर प्रस्थान कर दिया। संध्या हुई। रास्ते में एक दम काली घटा छा गई। हाथ को हाथ नहीं सूझता था। वायु तीव्रता से चलने लगी, ठंड सताने लगी। हम लोग घबरा गए। सब वहीं पर बैठ गए और भाग्य को कोसने लगे। एक दम वायु का वेग थम गया, भारहीन बादल व्योम पर ठहरने लगे। सौदामिनी दामिनी ने दमक कर पथिकों की पैनी दृष्टि को एक वाटिका की ओर आकृष्ट किया द्वार पर पहुँचे कपाट बंद थे। कुंडी खटखटाई। "कौन?" अन्दर से आवाज आई। "पथिक हैं।" क्या चाहते हो? "आश्रय" कपाट खुले। थोड़ा सा जल पिया और विश्राम किया तथा प्रातः ही चल पड़े।

थोड़े समय बाद दिल्ली पहुँच गए। वहाँ से रेल में बैठ कर और रास्ते के प्राकृतिक दृश्यों का आनन्द लूटते हुए अपने घर पहुँचे।

प्रत्येक व्यक्ति को प्राकृतिक दृश्य देखने चाहिए। प्राकृतिक दृश्य देखने से अनेकों लाभ हैं। प्राकृतिक दृश्य देखने से मनुष्य की बुद्धि का विकास होता है। हृदय बहलाव का भी अच्छा साधन है। ईश्वर ने संसार में क्या क्या सौंदर्य पैदा किया है यह इन्हीं को देख कर ज्ञात हो सकता है। इससे सांसारिक ज्ञान भी हो जाता है। जो प्राकृतिक दृश्य नहीं देखते वह मूर्ख मनुष्य के समान हैं क्योंकि उन्हें प्राकृतिक सौन्दर्य देखने की बुद्धि नहीं है। इसलिए प्रत्येक को प्राकृतिक दृश्यों के देखने में और उनकी प्रशंसा में भाग लेना चाहिए। आप कहेंगे कि प्रशंसा से क्या तात्पर्य्य है। यही कि आपको यह बताने लगे कि इस दृश्य में और फलाँ दृश्य में क्या भेद तथा अनोखी बातें भरी हैं।

'नौ नगद न तेरह उधार'

इस कहावत का साधारण अर्थ तो यही है, कि नौ नगद अच्छे पर तेरह उधार अच्छे नहीं, अर्थात् जो चीज़ अपने हाथ में है, वह उससे अच्छी है जिसको भविष्य में प्राप्त करने की आशा हो। इसको दूसरे शब्दों में इस प्रकार भी कह सकते हैं कि जो अपने पास है उसी पर सन्तोष करना चाहिए; अनिश्चित वस्तु के लिए—मृग मरीचिका के लिए निश्चिन्त रहना बुद्धिमानी नहीं, क्योंकि सम्भव है वह वस्तु प्राप्त न हो सके, तो जो अभी प्राप्त हो सकती है, वह भी हाथ से निकल जायगी। प्रायः संसार में यही देखा जाता है, कि जो वस्तु सरलता-पूर्वक प्राप्त हो सकती है, लोग उसका विशेष मूल्य नहीं समझते—और जो वस्तु कष्ट साध्य होती है अथवा जिसका प्राप्त होना कठिन होता है, उसी के लिए व्याकुल होते हैं। परिणाम यह होता है, कि वे

इससे भी हाथ धो बैठते हैं और उससे भी ऐसे ही व्यक्तियों के हित के लिए यह कहावत बनी है। इसकी सत्यता लेन-देन के व्यवहार में भली भाँति प्रमाणित होती है।

कल्पना करो कि किसी से कहा जा रहा है "भाई या तो अभी तत्काल ५०) ले लो अथवा छः महीने पश्चात् हम तुम्हें ६०) देगें।" अब यदि वह मनुष्य बुद्धिमान् है तो अभी ५०) लेना उचित समझेगा। पर मान लीजिए कि उसने छः महीने पश्चात् ६०) लेना ही निश्चय किया, क्योंकि ऐसा करने में प्रत्यक्ष १०) का लाभ है। पर भविष्य तो उसे दृष्टिगोचर होता नहीं। यदि इस वर्ष के भीतर ही दोनों में से किसी एक की मृत्यु हो जाय, तो फिर कौन रुपये देगा और कौन लेगा? इससे तो अच्छा था कि वह आरम्भ में ५०) रु० ही लेकर सन्तोष करता—परन्तु १०) रु० के लालच ने ५०) रु० भी उसके हाथ से निकाल दिए।

एक दूसरा उदाहरण लीजिए। एक मनुष्य ४० रु० का नौकर था और वह रोज़ाना अपने घर पहुँच जाता था। एक दूसरा मनुष्य जो कि परदेशी था उससे आकर बोला कि इस नौकरी में क्या रक्खा है यदि तुम मेरे साथ चलो तो मैं तुम्हें ६०) रु० की नौकरी दिलवाऊँ। वह लालच में आगया और अपनी नौकरी छोड़कर उसके साथ हो लिया। इतने में ही उसकी जगह दूसरा आदमी ३०) रु० में ही नौकर हो गया। जिस जगह के लिए परदेशी मनुष्य ने उससे नौकरी के लिए कहा था वह अधिक दिन होने के कारण घिर गई। वह बेचारा वहाँ पहुँचा तो उसको नौकरी न मिली। और अपने पास से १०) रु० खर्च करके फिर अपने घर वापिस आ गया तब लोगों ने कहा कि देखो— "आधी त्याग सारी को धावें आधी रहें न सारी पावें"। तुम्हारा लालच ने नाश कर दिया न तो तुम इधर

के रहे न उधर के। वही बात हुई कि "चौबे छब्बे होने गये, दुबे ही रह गए"। ज़रा सोचो तो सही कि उसकी लगी नौकरी घर के घर ४०) को बुरी थी जो उसने ६०) रु० की नौकरी की इच्छा की इन महाशय के हाथ से दोनों गई या नहीं?

संसार में जितनी आजकल अशान्ति बढ़ रही है, जितना संघर्षण हो रहा है, वह इसीलिए कि लोग अपनी दशा से संतुष्ट नहीं, और उस दशा को सुधारने के लिए प्रायः ऐसे अनिश्चित उपायों से काम लेते हैं, कि व्याकुलता और निराशा के अतिरिक्त कुछ भी उनके हाथ नहीं लगता। इससे इस कहावत के अनुसार मनुष्य संसार में अपने कामों में सफलता प्राप्त कर सकता है। सदैव इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि चाहे जो कार्य हो उसमें जो बात तुरंत हो वही करना ठीक है। भविष्य की बात कौन जान सकता है। ऐसे ही व्यक्ति संसार में कार्य कर जाते हैं। इसलिए छात्रों को 'नौ नगद न तेरह उधार' वाली कहावत से शिक्षा ग्रहण करके अपने जीवन में सहायता लेनी चाहिए।

सूर और तुलसी की तुलना

सूर और तुलसी दोनों कवि हिन्दी साहित्य संसार के अनुपम रत्न हैं। यदि इन्हें हिन्दी साहित्य के जन्मदाता कहें तो इसमें तनिक भी अत्युक्ति नहीं। इन कविद्वय के कारण हिन्दी साहित्य का मस्तक बहुत ऊँचा उठ रहा है। दोनों की शैली में भेद है। दोनों ने अपना एक एक नायक चुन लिया था। एक भगवान कृष्ण का प्रेम-सखा था तो दूसरा प्रातः स्मरणीय राम का अनन्य भक्त था। सूर, सूरसागर में निमग्न थे तो तुलसी रामचरित-मानस में बिहार करते थे। सूरदास जी का तुलसी की भाँति कोई प्रबन्ध काव्य नहीं मिलता। इसलिए दोनों की तुलना में कुछ कठिनाई अवश्य होती है। परन्तु गीत काव्य दोनों

कवियों के प्राप्त हैं। उनमें भी 'विनय' दोनों लिखे हैं। विनय के अनेक पदों के भाव दोनों कवियों के बहुत ही अधिक मिलते-जुलते हैं। उदाहरण के लिए दो पदों के अंश नीचे देते हैं:—

अब हौं नाच्यौ बहुत गुपाल।
काम क्रोध को पहिर चोलना कंठ विषय की माल (सूर)
नाचत ही निसि दिवस मरयो।
बहु वासना विविध कंचुक भूषन लोभादि अरयो (तुलसी)
कहत बनाय दीप की बातें कैसे हो तम नासत (सूर)
निसि गृह मध्य दीप की बातन तम निवृत्त नहिं होई (तुलसी)

बहुत से स्थलों पर तो दोनों कवियों को एक ही भाव पाये जाते हैं। कई एक पदों में तो भाव ही नहीं, शब्दों और पद वाक्यों का भी साम्य है।

चरन-कमल बन्दौं हरि राई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे को सब कुछ दरसाई॥
बहिरो सुनै, मूक पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराई।
'सूरदास' स्वामी करुनामय बार-बार बन्दौं तेहि पाई॥ (सूर)

बिन पद चलै, सुनै बिन काना,
कर बिन कर्म करै विधि नाना।
आनन रहित सकल रस भोगी;
बिन वाणी बक्ता बड़ योगी॥ (तुलसी)

इन दोनों महाकवियों में कौन बड़ा और कौन छोटा है इस पर लेखनी चलाना सूर्य को दीपक दिखाना है। परन्तु इतना तो मानना पड़ता है कि सूर की अपेक्षा तुलसी की व्यापकता अधिक है। तुलसी ने जहाँ साहित्य के प्रत्येक अंग को पूर्ण किया है वहाँ दार्शनिक, राजनैतिक, साम्प्रदायक, धार्मिक बातों से भी अपने काव्य को भर दिया है। तत्कालीन बिखरे हिंदू

समाज को पुनः संगठित करने का अतुलनीय उद्योग किया। आपने राम को सर्वोच्च देव स्वीकार किया और उनके आगे समस्त देव-देवियों की हीनता प्रतिपादन की। परन्तु महात्मा सूरदास ने अपने काव्य में यद्यपि अन्य देवताओं के ऊपर किसी भी प्रकार छींटें नहीं फेंके।

महात्मा सूरदास सत्यता को प्रकट करने में, अनेक स्थानों में गोस्वामी तुलसीदास से बाजी मार ले गये हैं। गोस्वामी जी अपने नायक श्रीरामचन्द्र को सदैव ज्योति स्वरूप परमेश्वर मान कर, उनका कहीं भी तिरस्कार या हेयता प्रतिपादन नहीं करते, इसी कारण उनके काव्य में एक दो स्थान अनुपयुक्त से प्रतीत होते हैं, परन्तु सूरदास अपने नायक श्रीकृष्ण के अनौचित्य का प्रतिपादन करने में जरा भी नहीं हिचकिचाते, अनेक स्थलों पर इसी कारण अपने नायक श्रीकृष्ण को गोपियों द्वारा फटकार लगवा दी है, जो कि बड़ा सुन्दर शैली है।

अपने काव्य में, किसी भी क्षेत्र का सिद्धान्त प्रतिपादन करना दोनों महाकवियों का गुण है। दार्शनिक, राजनैतिक और सामाजिक सिद्धान्तों का पूर्ण योग तुलसीदास के काव्य में अधिक है, परन्तु दार्शनिक क्षेत्र के एक अंग का सर्वोत्तम प्रतिपादन बड़ी ही सुन्दर सरल और प्रशंसनीय शैली से महात्मा सूरदास ने किया है—वह है, मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का वर्णन। छोटे-छोटे बालकों से लेकर वृद्ध युवक सभी का स्वभाव सूरदास ने जान लिया था। जिन मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों को आज अन्वेषण करके नूतन सिद्ध किया जा रहा है उनमें से कितने ही अनुपम सिद्धान्त सामान्य रीति से सूर के काव्य में प्राप्त होते हैं।

सूर का कविता क्षेत्र संकुचित है और तुलसी का कविता क्षेत्र विस्तृत है, परन्तु सूर का संकुचित क्षेत्र तुलसी के विस्तृत

क्षेत्र से कुछ कम नहीं है। भाषा दोनों की सरल और सरस है।

फलतः दोनों हिन्दी साहित्य के महाकवि हैं। उनकी तुलना किसी नियम कसौटी पर पूर्ण रूप से नहीं की जा सकती। इनके अनुपम काव्य समस्त संसार की विभूति हैं।

निबन्ध लिखने के लिए कुछ चुने हुए विषय

१—मेरे सुख-दुख।
२—सूर्य।
३—महाराष्ट्र शिवा जी।
४—ताज महल।
५—कालिदास।
६—गौतम बुद्ध।
७—भारतवर्ष के लिये हिमालय पर्वत का महत्व।
८—छापाखाना।
९—नहर।
१०—स्वयंवर-प्रथा।
११—महाराणा प्रताप।
१२—होली का उत्सव।
१३—दीपमालिका।
१४—देहात की सैर।
१५—अँगरेज़ी सभ्यता से भारत वर्ष को लाभ या हानि।
१६—भूगोल के अध्ययन से लाभ।
१७—इतिहास के पढ़ने से लाभ।
१८—बेकारी।
१९—स्त्री-शिक्षा।
२०—सूर्य व चन्द्र ग्रहण।
२१—अछूतोद्धार।
२२—अहिंसा।
२३—माता पिता के प्रति बालकों का कर्त्तव्य।
२४—सूरदास का काव्य।
२५—भूषण की कविता।
२६—पालतू पशुओं का रखना।
२७—सत्य और मिथ्या।
२८—विवाहोत्सव।
२९—समाचार-पत्रों का प्रभाव।
३०—रेल।
३१—नदी-तट का कोई दृश्य।
३२—तुम्हारी दृष्टि में कौन सा पेशा अच्छा है।
३३—जल-बाढ़।
३४—डायरी रखना।
३५—पशुओं के प्रति हमारी निर्दयता।

३६—कृषि ।
३७—स्वार्थ ।
३८—पढ़ने के आनन्द ।
३९—विद्या ।
४०—धैर्य्य ।
४१—मित्रता ।
४२—उपन्यास पढ़ने के लाभ और हानि ।
४३—चाँदी ।
४४—क़लम और तलवार ।
४५—कहावतें ।
४६—धन का उचित उपयोग ।
४७—किसी घटना का वर्णन ।
४८—देशी खेल ।
४९—अतिथि सत्कार ।
५०—तुम्हारी सब से प्रिय पुस्तक ।
५१—समय की पाबन्दी ।
५२—प्रातः काल उठने के लाभ
५३—ग्राम ।
५४—केला ।
५५—प्रयाग ।
५६—भूकम्प ।
५७—बिधि कर लिखा को मेटनहारा ?
५८—एक पन्थ दो काज ।
५९—दया ।
६०—क्षमा ।
६१—ब्रह्मचर्य
६२—कपड़े की आत्म कहानी ।
६३—किसी मैच का वर्णन (S. L. C. 1927)
६४—उद्यान के आनन्द (S. L. C. 1928)
६५—विद्यार्थी जीवन का महत्व S. L. C., 1929)
६६—मनुष्य जीवन में परिश्रम का महत्व (S. L. C. 1928)
६७—सन्तोष ।
६८—विज्ञान की उपयोगिता ।
६९—उत्साह ।
७०—देशाटन के लाभ ।
७१—छुट्टियों के समय का उचित उपयोग ।
७२—नाटक या थियेटर ।
७३—देश-भक्ति ।
७४—विद्या ।